श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचित:

श्रीसिद्धान्तशिखामणि:

(हिन्दी पारायण ग्रन्थ)



डॉ. राधेश्याम चतुर्वेदी

शोधप्रकाशन ग्रंथमाला – ७१

श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचित

श्रीसिद्धान्तशिखामणी

(हिन्दी पारायण ग्रन्थ)

संपादक

काव्य–सर्वदर्शनतीर्थ, वेदान्ताचार्य, विद्यावारिधि, विद्यावाचस्पति

श्रीजगद्गुरु विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर

श्री १००८ जगद्गुरू डॉ. चंद्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी

जंगमवाडी मठ, श्रीक्षेत्र काशी, वाराणसी

हिन्दी व्याख्याकार

प्रो. डॉ. राधेश्याम चतुर्वेदी

शास्त्रचूड़ामणि विद्वान्

पूर्व आचार्य, संस्कृतविभाग, कलासङ्काय,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शैवभारती शोधप्रतिष्ठान

जंगमवाडी मठ, वाराणसी – २२१ ००१

प्रकाशक :
शैवभारती शोधप्रतिष्ठान
डी. ३५/७७, जंगमवाडी मठ
वाराणसी – २२१ ००१

प्रथमावृत्ती : २००६
द्वितीयावृत्ती : २०१४

ISBN : 978-93-82639-11-4

मूल्य : ४५०/-

अक्षरसंयोजन
शिवशक्ती कम्प्यूटर प्रोसेस
जंगमवाडी मठ, वाराणसी – २२१ ००१

मुद्रक
मित्तल ऑफसेट
कौशलेशनगर, सुन्दरपुर, वाराणसी



Shri Jagadguru Renukacharya preaches
Śivādvaita siddhānta to Agastya Maharshi

Dedication



The book is dedicated to
Shri 1008 Jagadguru
Vishveshwar Shivacharya Mahaswamiji
on the occasion of
Silver Jubilee of Punyaradhane (29-09-2014)
on behalf of all the
Jagadgurus of Jnanasimhasan Peeth



Shri 1008 Jagadguru
Dr. Chandrashekhar Shivacharya Mahaswamiji's
Silver Jubilee of Coronation - 11-11-2014

Donors of the Book

Shri K. G. Shashidhar and members of his family are staunch disciples of Kashi Peeth. The total expenditure for the publication of this book is brone by him on the occasion of his 71st birth day (29-09-2014).



Shri K. G. Shashidhar



Smt. Gayatri Shashidhar



Shri K. S. Alok



Smt. Nagashri (Siri)



Shri K. S. Atit



Master Vivan

।। ॐ नमः पञ्चजगद्गुरुभ्यः ।।

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के संस्थापक

श्रीकाशीविश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर

श्री १००८ श्री डॉ चन्द्रशेखर शिवाचार्य

महास्वामी जी का



शुभाशीर्वचन

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के ७१वें ग्रन्थपुष्प के रूप में 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या के साथ श्रीसिद्धान्तशिखामणि पारायण ग्रन्थ का शिवार्पण करते हुए हम अपार हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ० राधेश्याम चतुर्वेदी ने इस ग्रन्थ पर "ज्ञानवती" नामक हिन्दी व्याख्या लिखकर इस की उपादेयता को बढ़ा दिया है। अभी तक अनेक विद्वानों ने श्रीसिद्धान्तशिखामणि का संस्कृत, कन्नड़, मराठी, तेलुगु, तमिल, मलयालम, उड़िया, बंगला, गुजराती, भोजपुरी, अवधि, नेपाली, सिंहली, अंग्रेजी तथा रशियन आदि भाषाओं में अनुवाद किया है, लेकिन भारत की राष्ट्रभाषा में उसका अनुवाद कार्य अभी तक नहीं हुआ था।

कुछ वर्ष पहले महात्मा गान्धी काशी विद्यापीठ के कन्नड़ प्राध्यापक डॉ० शान्त शर्मा हिरेमठ ने श्रीसिद्धान्तशिखामणि के हिन्दी अनुवाद का कार्य किया था, लेकिन उनकी अकाल मृत्यु के कारण वह अनुवाद सामग्री लुप्त हो गयी है। अब पं० राधेश्याम चतुर्वेदी ने "ज्ञानवती" नामक हिन्दी व्याख्या लिखकर उस क्षति की पूर्ति

की है। पण्डित चतुर्वेदी जी ने श्रीसिद्धान्तशिखामणि के मूल श्लोकों की व्याख्या लिखते हुए कुछ विशिष्ट स्थलों पर जहाँ तत्त्वप्रदीपिकाख्य संस्कृत व्याख्या में विशेष बातें लिखी गयी हैं, उनको भी अपनी 'ज्ञानवती' व्याख्या में समाविष्ट किया है।

जगह-जगह उद्धरणों के मूल स्थान को ढूँढ़कर उसे नीचे टिप्पणी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। श्रीसिद्धान्तशिखामणि सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के शक्तिविशिष्टाद्वैत वेदान्ताचार्य परीक्षा में एवं काशी हिन्दुविश्वविद्यालय के धर्मागम आचार्य परीक्षा में पाठ्यपुस्तक के रूप में स्वीकृत हुआ है। अब पं० राधेश्याम चतुर्वेदी के द्वारा लिखित 'ज्ञानवती' व्याख्या के साथ प्रकाशित होने के कारण यह ग्रन्थ उक्त कक्षा के छात्रों के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो रहा है। इसलिए आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी भूरि-भूरि प्रशंसा के पात्र हैं।

हम कामना करते हैं कि प्रोफेसर राधेश्याम चतुर्वेदी स्वस्थ रहकर आजीवन संस्कृत साहित्य की सेवा करते हुए राष्ट्रिय साहित्य की समृद्धि में योगदान देते रहे। उसी प्रकार हमारी आकांक्षा है कि भगवान् विश्वनाथ माता अन्नपूर्णा एवं श्री जगद् गुरु विश्वाराध्यजी की असीम कृपा आपके समस्त परिवार के ऊपर सदैव बनी रहे।

इस ग्रन्थ का प्रथम संसकरण २००६ में तत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत व्याख्या के साथ प्रकाशित हुआ था। अब हम इसे दिनांक ७.७.२०१४ से ११.११.२०१४ तक काशीपीठ में होने वाले **''पीठारोहण रजत महोत्सव''** के उपलक्ष्य में पारायण ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित करने जा रहे हैं। इसमें पारायण सम्बन्धि न्यास, ध्यान, माहात्म्य और फलश्रुति संयोजन कर इस ग्रंथ को पारायण का स्वरूप दिया गया है। श्रद्धालु भक्तगण इस ग्रंथ का विधवत् पारायण कर अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

इस ग्रंथ के मुद्रण कार्य में अपना अमूल्य योगदान के दिये हुए चिदानन्द ओ. हिरेमठ (खसगी), डॉ. जी. सी. केण्डदमठ तथा इस ग्रंथ के मुद्रण दानी-भक्तों को भी अनंत मगंलाशीर्वाद।

दि. २५.९.२०१४ *इत्याशीषः*



प्रस्तावना

भारतीय धर्मपरम्परा में वीरशैव धर्म एक सनातन धर्म माना जाता है। इस धर्म के संस्थापक पाँच आचार्य हैं। उन्हें श्रीजगद्‌गुरु पञ्चाचार्य कहा जाता है। सिद्धान्तशिखामणि एक वीरशैव धर्म ग्रन्थ है, अतः इस प्रसङ्ग में जगद्‌गुरु रेणुकाचार्यजी एवं पञ्चाचार्य का संक्षेप में परिचय देते हुए श्री जगद्‌गुरु रेणुकाचार्यजी एवं श्रीसिद्धान्तशिखामणि के बारे में विस्तृत विवरण आवश्यक प्रतीत हो रहा है। हम आगे चलकर उपर्युक्त विषय पर यथासम्भव प्रकाश डालेंगे। उससे जिज्ञासु लोगों की जिज्ञासा का प्रचुर मात्रा में समाधान हो सकेगा।

भारतीय धर्मदर्शनों में वीरशैव धर्मदर्शन का एक विशिष्ट स्थान है। इसकी स्थापना रेणुक, दारुक, घण्टाकर्ण, धेनुकर्ण एवं विश्वकर्ण नामक पाँच प्रमुख शिवगणों ने शिव के आदेशानुसार की। इन्हीं पाँच शिवगणों को श्रीजगद्‌गुरु पञ्चाचार्य कहते हैं। ये पञ्चाचार्य भूलोक में क्रमशः आन्ध्रप्रदेश के कोल्लीपाकी क्षेत्र में सोमनाथ, मध्यप्रदेश के उज्जैन में स्थित वट क्षेत्र के सिद्धेश्वर, आन्ध्रप्रदेश के श्रीशैल क्षेत्र के मल्लिकार्जुन एवं उत्तरप्रदेश के काशी क्षेत्र के विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंगों से प्रकट हुए। उन्होंने धर्मस्थापना के निमित्त रम्भापुरी (कर्नाटक), उज्जैन (मध्यप्रदेश एवं कर्नाटक), ओखीमठ (उत्तराञ्चल) तथा काशी (उत्तर प्रदेश)क्षेत्रों में पाँच धर्मपीठों की स्थापना की। ये पाँच पीठ वीरशैव धर्म के राष्ट्रिय पीठ में माने जाते हैं। इन पाँचों पीठों के आचार्यों ने पाँच महर्षियों को सूत्र रूप में वीरशैव धर्म–दर्शन का उपदेश दिया। इनमें रम्भापुरी पीठ के श्री जगद्‌गुरु रेणुकाचार्य जी ने महर्षि अगस्त्य जी को पडविडि–सूत्र का, उज्जैन पीठ के जगद्‌गुरु दारुकाचार्य जी ने दधीचि महर्षि को वृष्टि–सूत्र का, हिमवत् केदार पीठ के जगद्‌गुरु घण्टाकर्णाचार्य जी ने व्यास महर्षि को लम्बनसूत्र का, श्रीशैलपीठ के जगद्‌गुरु धेनुकणाचार्य जी ने सानन्द महर्षि को मुक्तागुच्छ–सूत्र और काशी पीठ के जगद्‌गुरु विश्वकर्णाचार्य जी ने महर्षि दुर्वासा को पञ्चवर्ण–महासूत्र का उपदेश दिया।

पञ्चाननमुखोद्‌भूतान पञ्चाक्षरमनूपमान्।
पञ्चसूत्रकृतो वन्दे पञ्चाचार्यान् जगद्‌गुरून्।।

(पञ्चमुख सदाशिव के पाँच मुखों से आविर्भूत होकर न, म, शि, वा एवं य इन पञ्चाक्षरों के समान स्वरूप वाले पाँच सूत्रों की रचना करने वाले जगद्‌गुरु पञ्चाचार्यों को नमस्कार) यह परम्परागत श्लोक सुप्रसिद्ध है।

इनमें काशी पीठ के जगद्गुरु विश्वकर्णाचार्य जी ने द्वारा महर्षि दुर्वासा के उपदिष्ट पञ्चवर्णमहासूत्र को भाष्य और हिन्दी व्याख्या के साथ ईसवी सन् २००५ में काशी जङ्गमवाडी मठ के शैवभारती शोधप्रतिष्ठान के द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है। इस शोधसंस्था के निदेशक राष्ट्रिपण्डित व्रजवल्लभ द्विवेदी जी ने अत्यन्त परिश्रम से हिन्दी अनुवाद के साथ उसका सम्पादन किया है। आशा है अन्य आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट अवशिष्ट चार सूत्रों का संशोधन और सम्पादन भी शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

रम्भापुरी पीठ के जगद्गुरु के द्वारा महर्षि अगस्त्य को पडविडि-सूत्र के साथ आगमोक्त वीरशैव सिद्धान्त का जो विस्तार से उपदेश किया गया था, उसका संग्रह श्री शिवयोगी शिवाचार्य ने किया है। यही ग्रन्थ आज श्रीसिद्धान्त-शिखामणि के नाम से प्रसिद्ध है।

श्रीसिद्धान्तशिखामणि वीरशैव धर्म दर्शनों का प्रतिपादक एक अद्वितीय संस्कृत ग्रन्थ माना जाता है। जैसे वेदान्त-प्रस्थानत्रयी में उपनिषदों की सारभूत भगवद्गीता भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा उपदिष्ट होने पर भी वह महर्षि व्यास के द्वारा लिपिबद्ध की गयी, उसी प्रकार जगद्गुरु रेणुकाचार्य जी के द्वारा महर्षि अगस्त्य जी को उपदिष्ट वीरशैव सिद्धान्त को शिवयोगी शिवाचार्य नामक सुप्रसिद्ध वीरशैव आचार्य ने रेणुकागस्त्यसंवाद के रूप में लिपिबद्ध किया। जिस प्रकार भगवद्गीता सभी उपनिषदों का सारसर्वस्व है, उसी प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि कामिकादि वातुलान्त २८ सिद्धान्तागमों का सारभूत है।

इक्कीस परिच्छेदों में उपनिबद्ध श्रीसिद्धान्तशिखामणि में प्रायः १४०० श्लोक हैं। इस ग्रन्थ के पहले परिच्छेद से लेकर चौथे परिच्छेद तक मङ्गलाचरण, कवि का वंशवर्णन, कैलास-पर्वत-वर्णन, जगद्गुरु रेणुकाचार्य जी के लिङ्गावतार का वर्णन और महर्षि अगस्त्य जी के आश्रम आदि का वर्णन किया गया है। इक्कीसवें परिच्छेद में विभीषण की प्रार्थना के अनुसार श्रीलङ्का में जगद्गुरु रेणुकाचार्य जी के द्वारा जीन करोड़ शिवलिङ्गों की युगपत् स्थापना करने की महिमा वर्णित है। इस ग्रन्थ के पञ्चम परिच्छेद से बीसवें परिच्छेद तक के भाग में वीरशैव धर्म-दर्शन का षट्स्थल सिद्धान्त एक सौ (१०१) एक अवान्तर स्थलों के रूप में बहुत ही विस्तार से प्रतिपादित किया गया है।

श्रीसिद्धान्तशिखामणि ही ऐसा पहला ग्रन्थ है, जिसमें वीरशैव षट्स्थल सिद्धान्त को एकोत्तरशत स्थलों के रूप में शास्त्रोक्त रीत्या प्रतिपादित किया गया है। अन्य शैवागमों में षट्स्थलों का केवल नामोल्लेख तथा उनके सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया गया है, लेकिन श्री शिवयोगी शिवाचार्य जी ने आगमोक्त षट्स्थल सिद्धान्त को आधार मानते हुए उन षट्स्थलों को १०१ स्थलों में विस्तृत करके एक अपूर्व एवं अद्भुत पद्धति से उनका विवेचन किया है। अतः षट्स्थलों के एकोत्तरशत स्थलों के रूप में प्रथम विवेचक श्री शिवयोगी शिवाचार्य ही माने जाते हैं।

ग्रन्थनाम रहस्य– श्रीरेणुकागस्त्यसंवादात्मक इस ग्रन्थ का 'श्रीसिद्धान्त-शिखामणि' नामकरण किया गया है। इसका रहस्य यह है कि कामिकादि वातुलान्त शिवोपदिष्ट २८ शैवागम सिद्धान्तागम के नाम से प्रसिद्ध है।[१] इन सिद्धान्तागमों के उत्तर भाग में वीरशैव सिद्धान्त प्रतिपादित है। इस तरह सिद्धान्तागमों के उत्तर भाग में प्रतिपादित वीरशैव सिद्धान्त को श्री शिवयोगी शिवाचार्य ने अपनी विशिष्ट रचनाशैली में संगृहीत किया है। यह संगृहीत सिद्धान्त शिखामणि, अर्थात् शिरोरत्न के समान होने के कारण इसे 'सिद्धान्तशिखामणि' कहा जाता है। इसी अर्थ का समर्थन करते हुए ग्रन्थकार ने स्वतः कहा है–

> **सर्वेषां शैवतन्त्राणामुत्तरस्वान्निरुत्तरम्।**
> **नाम्ना प्रतीयते लोके यत्सिद्धान्तशिखामणिः।।**

अतः आगम प्रतिपादित अनेक सिद्धान्तों में वीरशैव सिद्धान्त एक शिखामणिसदृश होने के कारण प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रतिपादित है। इसीलिए इस ग्रन्थ को श्रीसिद्धान्तशिखामणि कहा गया है।

ग्रन्थकार और उनका काल– ग्रन्थकार श्री शिवयोगी शिवाचार्य ने इस ग्रन्थ के प्रथम परिच्छेद में श्लोक सं० १३-२० तक अपने वंश का वर्णन किया है। इस वर्णन से यह ज्ञात होता है कि इनके वंश में बहुत पहले शिवयोगी नामक एक महान् योगी उत्पन्न हुए थे उनके वंश वंश में मुद्ददेव नामक आचार्य हुए। उनके सिद्धनाथ नामक एक सुपुत्र थे। उनको पुनः शिवयोगी नामक पुत्र उत्पन्न हुए। यह शिवयोगी ही इस ग्रन्थ के रचयिता शिवयोगी शिवाचार्य हैं।

(ग्रन्थकार का वंशवृक्ष)

शिवयोगी



मुद्ददेव



सिद्धनाथ



शिवयोगी (सिद्धान्तशिखामणि के रचयिता)

इस वंशवर्णन से शिवयोगी शिवाचार्य जी के देश और काल के बारे में स्पष्ट रूप से कुछ भी पता नहीं चलता। १७वीं शताब्दी में वर्तमान कर्नाटक के मरितोण्टदार्य नामक एक विद्वान् ने इस ग्रन्थ पर तत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत व्याख्या लिखी। उन्होंने अपने

१. सिद्धान्तशब्दः पङ्कजादिशब्दवद योगरूढ्या शिवप्रणीतेषु कामिकादिषु दशाष्टादशतन्त्रेषु प्रसिद्धः (रत्नत्रयम्, पृ. ५)।

व्याख्यान की अवतरणिका के प्रारम्भ में– 'अत्र कलिकालप्रवेशानन्तरं लोकहितार्थं रेणुकगणेश्वर इति प्रसिद्धो रेवणसिद्धेश्वरः कुम्भसम्भवाय वीरशैवशास्त्रमुपदिष्टवान्। तदनन्तरं रेवणसिद्धेश्वरदृष्टिगर्भसम्भूत–सिद्धरामेश्वरसम्प्रदायप्रसिद्धः सकलनिगमागमपारगः शिवयोगीश्वर इत्यभिधानवान् कश्चिन्माहेश्वरस्तद्रेणुकागस्त्यसंवादं निर्विघ्नेन स्वशिष्यान् बोधयितुं स्वमनसि कृतसंकल्पसिद्धान्तश्रेष्ठनिगमागमैक्यगर्भीकारलक्षणस्वेष्टदेवतानमस्काररूपं मङ्गलं शिष्यशिक्षार्थं सप्तभिः श्लोकैर्निबध्नाति'[१] इस अवतरणिका में ग्रन्थकार शिवयोगी शिवाचार्यजी को श्रीसिद्धरामेश्वरजी के सम्प्रदाय से सम्बद्ध, अर्थात् उनका वंशज माना गया है। लेकिन मरितोण्टदार्यजी की यह उक्ति तर्कसङ्गत नहीं प्रतीत होती।

महाराष्ट्र प्रान्त के सोलापुर में १२वीं शताब्दी में श्री सिद्धरामेश्वर नामक एक महान् शिवयोगी आचार्य हुए। उनके पिता का नाम मुद्दगौडा था। यहाँ पर शिवयोगी शिवाचार्य ने अपने पूर्ववंशजों में एक का नाम मुद्ददेव कहा है। उधर मुद्दगौडा का पुत्र सिद्धराम था। यहाँ मुद्ददेव को मुद्दगौडा समझकर और सिद्धनाथ को सिद्धराम समझकर मरितोण्टदार्यजी के मन में भ्रम पैदा हो गया होगा। वस्तुतः सोलापुर के श्रीसिद्धरामेश्वर के वंश के साथ श्री शिवयोगी शिवाचार्यजी का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। कर्नाटक के वीरशैव विद्वान् डा. ज. च. नि.[२] और एन. आर. करिबसव शास्त्री[३] आदि विद्वानों ने श्री मरितोण्टदार्यजी की विचारसरणि को विसंगत माना है।

ग्रन्थ के कालनिर्णय में दासगुप्त की अनवधानता– डॉ. एस. एन. दासगुप्त भारतीय दर्शनशास्त्र के बहुत बड़े इतिहासज्ञ माने जाते हैं। इन्होंने (A History of Indian Philosophy, Vol.No.5, Page No.44) में श्रीसिद्धान्त–शिखामणि के काल के बारे में लिखते समय कहा है– 'श्रीसिद्धान्तशिखामणि में श्री बसवेश्वर जी के नाम का उल्लेख होने से यह ग्रन्थ श्री बसवेश्वर के बाद का तथा श्रीकरभाष्य में श्रीसिद्धान्तशिखामणि का उल्लेख होने से यह श्रीमपति पण्डिताराध्य जी से पहले की रचना हो सकती है।' किन्तु श्री दासगुप्त जी के मत की अपेक्षा इन दो व्यक्तियों की युक्तियों के आधार पर भी सिद्धान्तशिखामणि का काल श्रीकरभाष्य की अपेक्षा प्राचीन मानना अधिक युक्त है। लेकिन यह ग्रन्थ वसवेश्वर के बाद का है, यह कथन निराधार है, क्योंकि श्रीसिद्धान्तशिखामणि के मूल श्लोकों में कहीं पर भी श्री बसवेश्वर का उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु श्री मरितोण्टदार्यकृत तत्त्वप्रदीपिका व्याख्या की अवतरणिका में वीरभद्राचार एवं बसवेश्वराचार का प्रतिपादन किया गया है।[४]

---

१. सि.शि., पृष्ठसंख्या १–२

१. कन्नडमणिकान्तिपीठिका, पृष्ठ–१६ से २० (ई. सन् १९५१)।

२. सिद्धान्तशिखामणि, कन्नड प्रस्तावना, पृष्ठ– ५, (ई. सन् १९२१)।

३. सि.शि., ९–३६, तत्त्वप्रदीपिकाव्याख्या, पृष्ठ १८५ (वीरशैव साहित्य संशोधन मंडल), सोलापुर प्रकाशन, (ई. १९९०)।

इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीसिद्धान्तशिखामणि की तत्त्वप्रदीपिकाव्याख्या के कर्ता श्रीमरितोण्टदार्य श्री बसवेश्वर के परवर्ती थे, न कि मूल लेखक शिवयोगी शिवाचार्य। श्रीदासगुप्त जी सम्भवतः सिद्धान्तशिखामणि के काल के निर्णय के सन्दर्भ में मूलग्रन्थ तथा उसकी व्याख्या में भेद को न समझने के कारण अनवधानता कर बैठे।

यहाँ पर एक तथ्य समझ लेना चाहिये कि महात्मा बसवेश्वर ने अपने एक वचन में श्रीसिद्धान्तशिखामणि के–

प्रसादाद् देवताभक्तिः प्रसादो भक्तिसम्भवः ।
यथैवाङ्कुरतो बीजं बीजतो वा यथाऽङ्कुरः ।।

इस श्लोक को प्रमाण के रूप में उद्धृत किया है।[१] यह श्लोक श्रीसिद्धान्त-शिखामणि के नवम परिच्छेद का ३६वाँ श्लोक है। इसके अतिरिक्त १२वीं शताब्दी के चन्नबसवेश्वर आदि सन्तों ने जातिवाद के निराकरण प्रसङ्ग में–

शिवभक्तिसमावेशे क्व जातिपरिकल्पना ।
इन्धनेष्वग्निदग्धेषु को वा भेदः प्रकीर्त्यते ।।

(सि.शि. ११.५५)

सिद्धान्तशिखामणि के इस श्लोक को प्रमाण रूप में उद्धृत किया है। अतः श्रीशिवयोगीशिवाचार्य १२वीं शताब्दी से पहले ही विद्यमान थे, यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है।

इसके अतिरिक्त श्रीपति पण्डिताराध्य विरचित श्रीकरभाष्य में[२] श्रीसिद्धान्त-शिखामणि का सप्रमाण उल्लेख होने के कारण इस ग्रन्थकार का समय श्रीपति पण्डिताराध्य से पूर्व मानना पड़ेगा। श्रीपति पण्डिताराध्यजी के कार्यकाल के बारे में भारतीय दर्शनशास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय पण्डित बलदेव उपाध्यायजी[३] ने ख्रीष्ट सन् १०६० ई० माना है और श्रीकरभाष्य में श्री रामानुजाचार्य जी का तथा उनके श्रीभाष्य का उल्लेख होने के कारण श्रीपति जी श्री रामानुजाचार्य से परवर्ती सिद्ध होते हैं। भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति स्वर्गीय स्वर्गीय डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् जी ने रामानुजाचार्य का काल ख्रीष्ट सन् १०२७ ई० माना है।[४]

---

१. बसवेश्वर के वचन भाग (१) पृष्ठ, १०७ कर्नाटक विश्वविद्यालय प्रकाशन, ई. सन् १९७६

२. ब्रह्मसूत्र श्रीकरभाष्य, १-१-१

३. भारतीय दर्शन, पृष्ठ-४६१ चौखम्बा ओरियंटालिया, ई. सन् १९७६

१. Indian Philosophy, Vol. No.2, Page No. 665, Published D. R. Bhagi, Bombay 1977 A.D.

काशीपीठ के पूर्व जगद्गुरु वीरभद्र शिवाचार्य जी[1] तथा श्री टी. एस. नारायण शास्त्री जी[2] ने श्रीकरभाष्य का काल प्राचीन शिलाशासनों के आधार पर क्रमशः ख्रीष्ट सन् १०६४ ई० तथा १०७२ ई० माने हैं। इन सभी विद्वानों के विचारों से श्रीपति पण्डिताराध्य जी का काल निश्चित रूप से ११ वीं शताब्दी सिद्ध होता है। इनके द्वारा लिखित श्रीकरभाष्य में उल्लिखित श्रीसिद्धान्तशिखामणि के रचयिता श्रीशिवयोगी शिवाचार्य जी को उससे भी पूर्ववर्ती अवश्य मानना चाहिये। इसके अतिरिक्त श्रीसिद्धान्तशिखामणि में श्रीशिवयोगि शिवाचार्य ने कहा है–

येन रक्षावती जाता शिवभक्तिः सनातनी।
बौद्धादिप्रतिसिद्धान्तमहाध्वान्तांशुमालिना।।

इस श्लोक में बौद्ध आदि प्रतिसिद्धान्तों से शिवभक्तों की रक्षा के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की ऐसा इनके उपर्युक्त वचन से सिद्ध होता है। भारत में बौद्ध धर्म के प्रबल प्रचार का समय ६००–८०० ईस्वी माना जाता है। अतः श्रीसिद्धान्तशिखामणि का रचनाकाल भी ६००–८०० ईस्वी मानना चाहिये। इस प्रकार सिद्धान्तशिखामणि का रचनाकाल लगभग ८वीं शताब्दी मानने में कोई अनौचित्य नहीं है।

शिवयोगी शिवाचार्य का देश विचार– श्रीसिद्धान्तशिखामणि के रचनाकार श्रीशिवयोगी शिवाचार्य ने अपना वंशवर्णन करते समय कहीं भी अपने गाँव या प्रदेश या प्रदेश का नाम निर्देशन नहीं किया है। अतः उनके देश के बारे में निश्चित रूप से कहना कठिन है। तथापि मैसूर के वे. पं. काशीनाथ शास्त्रीजी और डॉ. ज. च. नि. महोदय ने 'शिवयोगी शिवाचार्य जी कर्नाटक प्रदेश के रहे, तत्रापि बीजापुर जिले के सालोटगी ग्राम निवासी रहे' इस प्रकार उनके स्थान का प्रतिपादन किया है।[3]

श्रीसिद्धान्तशिखामणि के टीकाकार– वीरशैवों के धर्मग्रन्थ के रूप में प्रख्यात श्रीसिद्धान्तशिखामणि के ऊपर संस्कृत, कन्नड, हिन्दी, मराठी, तेलुगु तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनेक विद्वानों ने व्याख्याएँ लिखी हैं। वीरशैव धर्म-दर्शन के किसी और संस्कृत ग्रन्थ की इतनी भाषाओं में व्याख्या नहीं है। इससे इस ग्रन्थ की महत्ता और लोकप्रियता सिद्ध होती है।

१७वीं शताब्दी में वर्तमान सोसले रेवणाराध्य नामक कन्नड विद्वान् ने इस ग्रन्थ के ऊपर 'सिद्धार्थबोधिनी' नामक कन्नड व्याख्या की रचना की। उसके बाद १७वीं शताब्दी में श्री मरितोण्टदार्यजी ने 'तत्त्वप्रदीपिका' नामक संस्कृत व्याख्या की रचना की। तत्पश्चात्

---

१. श्रीकरभाष्य चतुःसूत्रीपीठिका, पृष्ठ–४, जङ्गमवाडी मठ, वाराणसी प्रकाशन, ई. सन् १९७५
२. 'The Indian Review' Vol. No. May 1915, Page No. 5
३. सिद्धान्तशिखामणि प्रस्तावना, पृष्ठ–७, काशीनाथ ग्रन्थमाला, मैसूर, ई. सन् १९७२.

मैसूर के आस्थानविद्वान् लिं. एम्. एल्. करिबसव शास्त्रीर जी, मैसूर के ही लिं. पं. काशीनाथ शास्त्री जी, एम्. एल्. नागण्णा जी, बीजापुर के ज्ञानयोगाश्रम के संस्थापक श्री मल्लिकार्जुन स्वामीजी आदि २० (बीसवीं) वीं शताब्दी के विद्वानों ने कन्नड भाषा में अपनी-अपनी शैली में व्याख्या लिखी है।

कर्नाटक के चित्रदुर्ग के एस्. एम्. सिद्धय्या नामक विद्वान् ने श्रीसिद्धान्त-शिखामणि के ऊपर कन्नड भाषा में 'भामिनीषट्पदी' नाक कन्नड छन्द में पद्य रूप में व्याख्या लिखी है। यह एक विलक्षण कृति है। बंगलोर विश्वविद्यालय के भूतपूर्व संस्कृतविभाध्यक्ष डॉ. एम्. शिवकुमार स्वामी जी ने १९६८ ईस्वी में श्रीसिद्धान्तशिखामणि के चुने हुए श्लोकों पर अंग्रेजी अनुवाद करके इसे 'श्रीरेणुकगीता' के नाम से प्रकाशित किया है। अभी वही विद्वान् मरितोण्टदार्य जी की व्याख्या के साथ मूल सम्पूर्ण ग्रन्थ का अंग्रेजी भाषा में विस्तृत अनुवाद लिख रहे हैं। इसका प्रकाशन सम्भवतः ई. सन् २००६-२००७ में जंगमवाडी मठ के शैवभारती शोधप्रतिष्ठान के द्वारा होगा।

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ के कन्नड भाषा के प्राध्यापक लिङ्गैक्य श्री ष. ब्र. डॉ. श्रीपति पण्डिताराध्य शिवाचार्य हिरेजेवरगी (शान्तशर्मा हिरेमठ) ने श्रीसिद्धान्तशिखामणि की 'भावमञ्जूषा' नामक हिन्दी व्याख्या लिखी थी, लेनिक उनकी अकालमृत्यु के कारण वह सामग्री लुप्त हो गई। उसका प्रकाशित न होना खेद की बात है। सम्प्रति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के पूर्व आचार्य पं. राधेश्याम चतुर्वेदी ने श्रीसिद्धान्तशिखामणि पर 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या लिखकर हमारे शैवभारती शोधप्रतिष्ठान को प्रकाशनार्थ समर्पित में उसका शिवार्पण करके हम अपार हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। श्रीसिद्धान्त-शिखामणि के राष्ट्रभाषा में अनूदित होने से उत्तरभारतीय जनता के लिए इसका बहुत महत्त्व होगा। इसलिए पं. राधेश्याम चतुर्वेदी प्रशंसा के पात्र हैं।

कर्नाटक के सुप्रसिद्ध संशोधक एवं बहुत बड़े साहित्यरचनाकार डॉ. ज. च. नि. (निडुमामिडि संस्थान के श्री ष. ब्र. डॉ. चन्नबसवराज देशिकेन्द्र महास्वामी जी) महोदय ने श्रीसिद्धान्तशिखामणि ग्रन्थ के ऊपर 'जीवनसिद्धान्त' के नाम से विस्तृत विवेचनात्मक व्याख्या लिखी है, जो छः भागों में १९६९-१९७० ईस्वी में प्रकाशित होकर कर्नाटक में विद्वन्मान्य हो गयी है।

हम अपने पूर्वाश्रम में श्रीसिद्धान्तशिखामणि के ऊपर कन्नड भाषा में प्रवचन करते रहे। धीरे-धीरे उस ग्रन्थ के १०१ स्थलों पर अलग-अलग प्रवचन ग्रन्थ प्रकाशित करने की इच्छा हुई। 'श्रीसिद्धान्तशिखामणिप्रवचनप्रभे' नाम से ई.सन् १९८९ तक इसके छः भाग प्रकाशित हो गये। काशी जंगमवाडी मठ के पीठाधीश्वर बनने के पश्चात् हमने अवशिष्ट सभी स्थलों पर प्रवचन लिखकर पूरे १०१ स्थलों को २ बृहद् भागों में (१९४९ पृष्ठ) ई. सन् २००० में छपवाकर पहली बार प्रकाशित कराया।

कन्नड भाषा में प्रकटित प्रवचनशैली के ये दो भाग अतिशय लोकप्रिय होने के कारण अभी तक उसके तीन संस्करण निकल चुके हैं। २००६ ईस्वी में इसका चतुर्थ संस्करण प्रकाशित हो गया है। इन दोनों भागों के संकलनकार्य में काशी जंगमवाडी मठ के वरिष्ठ शोधछात्र और बबलेश्वर बृहन्मठ के पट्टाध्यक्ष श्री ष.ब्र. डॉ. महादेव शिवाचार्य एवं हिप्परगी व एडूर मठाध्यक्ष श्री ष.ब्र. डॉ. सिद्धराम पण्डिताराध्य शिवाचार्य स्वामी जी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, अतः वे भी साधुवाद के पात्र हैं।

श्री सिद्धान्तशिखामणि पर आधृत हमारे प्रवचनों का सोलापुर के मराठी वीरशैव साहित्य के बहुत बड़े विद्वान् डॉ. शे. दे. पसारकर ने संग्रह करके मराठी भाषा में उनका अनुसाद किया। उन मराठी प्रवचनों का संग्रह 'जन्म हा अखेरचा' नाम से प्रकाशन हुआ है। उसके भी अभी तक तीन संस्करण निकल चुके हैं। इस तरह श्रीसिद्धान्तशिखामणि में प्रतिपादित वीरशैव दार्शनिक सिद्धान्त को लोगों को समझाने के लिए अनेक विद्वानों ने विभिन्न भाषाओं में टीका, व्याख्यान और प्रवचनादि लिखकर वीरशैव साहित्य के संवर्धन में अपना बहुत बड़ा योगदान किया है।

श्रीसिद्धान्तशिखामणि पर आधृत शोधप्रबन्ध– एक दार्शनिक ग्रन्थ होने के कारण श्रीसिद्धान्तशिखामणि के ऊपर एक समीक्षात्मक अध्ययन करने की इच्छा हमारे मन में हुई। १९७३ ईसवी में वेदान्ताचार्य परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के तत्कालीन वेदान्तविभागाध्यक्ष स्वर्गीय पं. देवस्वरूप मिश्र के मार्गदर्शन में 'श्रीसिद्धान्तशिखामणेर्दर्शनान्तरीय-सिद्धान्तैः सह समीक्षा' विषय पर अनुसन्धान कार्य १९७४ में प्रारम्भ हुआ। ई. सन् १९८४ में अनुसन्धान कार्य पूरा हुआ। बाद में ई. सन् १९८९ में शैवभारती भवन जंगमवाडी मठ के द्वारा इसका प्रकाशन हुआ। इसके प्रकाशन के लिए केन्द्र सरकार के मानवसंसाधनविकास मन्त्रालय के शिक्षा विभाग के द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त हुई थी। 'सिद्धान्तशिखामणि-समीक्षा' नामक यह शोध-प्रबन्ध सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के वेदान्त विभाग में शक्तिविशिष्टाद्वैत वेदान्ताचार्य की एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृतविद्या-धर्मविज्ञान संङ्काय के धर्मागम विभाग की आचार्य परीक्षा के लिए पाठ्यग्रन्थ के रूप में स्वीकृत हुआ है।

काशी जंगमवाडी मठीय जगद्गुरु विश्वाराध्य गुरुकुल के शोधछात्र श्री. ष. ब्र. डॉ. सिद्धराम पण्डिताराध्य शिवाचार्य (सिद्धराम देव हिप्परगी) ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृतविद्या-धर्मविज्ञान सङ्काय के वेदान्त विभाग में प्रोफेसर पण्डित सुधांशुशेखर शास्त्री जी के मार्गदर्शन में श्रीसिद्धान्तशिखामणि एवं श्रीमद्भगवद्गीता का तुलनात्मक अध्ययन कर डाक्टरेट उपाधि प्राप्त की। इस शोधप्रबन्ध में श्रीसिद्धान्तशिखामणि एवं श्रीमद्भगवद्गीता के तात्त्विक सिद्धान्तों की तुलना की गयी है।

श्रीसिद्धान्तशिखामणि पर राष्ट्रिय शास्त्रसङ्गोष्ठी– दिनांक १५ अक्टूबर से १७ अक्टूबर १९९७ तक काशी जंगमवाडी मठ में 'श्रीसिद्धान्तशिखामणि के अवविध आयामों पर विचार विमर्श' नामक एक राष्ट्रस्तरीय शास्त्रसंगोष्ठी का आयोजन हुआ था। उसमें पूरे भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों से बीस प्रमुख विद्वानों ने भाग लिया था। इस गोष्ठी में विद्वानों के निबन्धवाचन तथा उसके ऊपर चर्चाएँ हुई। इन सारे विषयों को 'सिद्धान्तशिखामणि मीमांसा' नामक शोध ग्रन्थ के रूप में जंगमवाडी मठ के शैवभारती शोधप्रतिष्ठान के द्वारा ईसवी सन् २००० में प्रकाशित किया गया। इस प्रकार अनेक विद्वानों ने श्रीसिद्धान्तशिखामणि ग्रन्थ के ऊपर व्याख्यान, प्रवचन, संशोधन आदि कार्य करके दार्शनिक क्षेत्र में इसकी महत्ता को समझाया है।

श्री जगद्गुरु रेणुकाचार्यजी की लिङ्गोद्भव लीला– शिव के आदेशानुसार वीरशैव धर्म के संस्थापक श्री जगद्गुरु पञ्चाचार्य भूलोक में शिवलिंग से प्रकट हुए। यह विषय शिवागमों में प्रतिपादित है। श्रीसिद्धान्तशिखामणि के तृतीय एवं चतुर्थ परिच्छेद में श्री जगद्गुरु रेणुकाचार्य जी की लिंगोद्भव लीला वर्णित है। उसके अनुसार एक बार कैलास में भगवान् शिव की सभा चल रही थी। तब भगवान् शिव ने ताम्बूल प्रसाद देने के लिए रेणुक गणेश्वर का आह्वान किया। उस आह्वान से प्रसन्न रेणुक गणेश्वर शीघ्रता में पास में बैठे हुए दारुक गणेश्वर को लांघ कर शिवजी के पास पहुँच गये। इसे देखकर क्रुद्ध शिवजी ने रेणुक गणेश्वर को भूलोक में जन्म लेने के लिए आदेश दे दिया।

उसे समय रेणुक गणेश्वर ने भगवान् शिवजी से प्रार्थना की कि– 'हे भगवन्! आपके आदेश से मैं भूलोक जाने को तैयार हूँ लेकिन सामान्य मनुष्यों जैसे मुझे जन्म न लेना पड़े, आप ऐसी कृपा करें।' इस प्रार्थना से सन्तुष्ट शिवजी ने कहा– 'हे रेणुक! तुम बिल्कुल भयभीत न हो। भूलोक के त्रिलिङ्ग देश (आन्ध्र प्रदेश) में विद्यमान सुप्रसिद्ध श्रीशैल क्षेत्र की उत्तर दिशा में 'कोल्लिपाक' नामक एक क्षेत्र है। वहाँ मैं सोमेश्वर लिङ्ग के नाम से विद्यमान हूँ। तुम उस शिवलिङ्ग में प्रकट हो जाओ। जब तुम्हें मानुष भाव का स्पर्श नहीं होगा। इस प्रकार तुम लिङ्गोद्भव होकर सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिए मेरे द्वारा उपदिष्ट वेद-वेदान्तसम्मत शिवाद्वैत सिद्धान्त अर्थात् वीरशैव सिद्धान्त की स्थापना करोगे।' शिव के आदेशानुसार रेणुक गणेश्वर उस सोमेश्वर शिवलिङ्ग से दिव्य देहधारी होकर प्रकट हुए। उसी घटना को जगद्गुरु रेणुकाचार्यजी की लिङ्गोद्भव लीला कहते हैं।

मार्कण्डेय महर्षि को यम के भय से मुक्त करने के लिए जैसे शिव एक स्थावर लिङ्ग से प्रगट हुए थे एवं प्रह्लाद को अनुगृहीत करने के लिए नृसिंह भगवान् जैसे राजमहल के खम्बे से प्रगट हुए थे, उसी प्रकार जगद्गुरु रेणुकाचार्य जी लोकोद्धार के

लिए श्री सोमेश्वर शिवलिङ्ग से प्रगट हुए। जन्म और प्राकट्य में बहुत बड़ी भिन्नता है। जन्म होने के लिए जन्म से पहले जनक और जननी की सहविद्यमानता नितान्त जरूरी होती है, किन्तु प्रकट होने के लिए जननी-जनकों की आवश्यकता नहीं होती। जो लोग योगसिद्ध होते हैं, उनका अस्तित्व पहले से ही विद्यमान होता है। वे जहाँ चाहे वहाँ प्रकट होने की क्षमता रखते हैं। श्री जगद्गुरु रेणुकाचार्य शिव के ही समान अणिमादि अष्ट सिद्धियों के धनी थे। अतः उनको भूलोक में शिवलिंग से प्रकटा होना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

महर्षि पतंजलि– 'ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत् तद्धर्माभिघातश्च' (यो.सू. ३.४५) के योगसूत्र में और 'यथा परमाणुत्वं प्राप्तो वज्रादीनामप्यतः प्रविशति भोजवृत्ति में कहा गया है कि योगसामर्थ्य के द्वारा अणिमादि अष्ट सिद्धियों को प्राप्त योगी अणुरूप धारण करके अत्यन्त कठिन से कठिन वज्रादि में भी प्रविष्ट होकर पुनः प्रकटा हो सकता है।

ऐसी अलौकिक घटनाएँ सामान्य जनता के लिए असम्भव जैसी लगती है, पर योगसिद्धों के लिए यह सहज घटना मानी जाती है। काशी में विशुद्धानन्द नामक एक दिव्य योगी २०वीं शताब्दी में हुए थे। महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज जी उनके परमशिष्य रहे। एक बार योगसामर्थ्य की चर्चा करते हुए विशुद्धानन्दजी ने 'जात्यन्तरपरिणाम' इस विषय पर प्रकाश डालते हुए कहा कि एक जाति की वस्तु को दूसरी जाति में परिवर्तित किया जा सकता है। इसे सुनकर पं. गोपीनाथ कविराज के– यह कैसे सम्भव होगा? ऐसा तर्क प्रस्तुत करने पर विशुद्धानन्द जी ने अपने हाथ में स्थित एक गुलाब के फूल को योगसामर्थ्य से उनकी (गोपीनाथ की) इच्छा के अनुसार लाल बन्धूक कुसुम के रूप में परिवर्तित करके दिखाया। इस विषय की चर्चा पं. गोपीनाथ कविराज जी ने कल्याण मासिक के योगाङ्क के पृष्ठ ७४८ में 'सूर्यविज्ञान' नामक लेख में की.है।

काशी के प्रसिद्ध तैलङ्ग स्वामी जी ने २८० वर्ष तक जीवित रहकर अनक लीलाएँ की हैं। उनकी लीलाओं के बारे में श्री राजेन्द्रप्रसाद पाण्डेय नामक लेखक ने २८/०१/१९८३ में यहाँ के प्रसिद्ध दैनिक 'आज' अखबार में एक लेख लिखा था। उसे अनुसार एक ब्रिटिश अधिकारी तैलङ्ग स्वामीजी को नङ्गे घूमने की वजह से जेल में बन्द कर दिया। लेकिन दूसरे दिन ताला बन्द रहने के बावजूद तैलङ्ग स्वामी जीबाहर निकल आये थे। इस तरह सारे देश में योग की चमत्कारिक घटनाएँ घटती आयी हैं। अतः साक्षात् शिव के सान्निध्य में रहने वाले एक शिवगण श्रीरेणुक गणेश्वर की शिव के समान अणिमादि अष्टसिद्धि से युक्त होने के कारण लिङ्गोद्भव लीला का सहज सम्भवनीय घटना है।

श्रीजगद्गुरु रेणुकाचार्य द्वारा त्रिकोटी शिवलिङ्ग स्थानलीला– श्रीसिद्धान्तशिखामणि के अन्तिम २१वें परिच्छेद स्थापन-लीला का वर्णन आया है। उस परिच्छेद का सार यह है कि लङ्काधिपति रावण ने नवकोटि लिङ्ग की स्थापना करने का सङ्कल्प किया था। अपने जीवन काल में ही उसने छः कोटि लिङ्गों की स्थापना की थी। श्रीराम के साथ युद्ध करते-करते स्वर्ग को प्राप्त कर रहे रावण ने अपने छोटे भाई विभीषण को बुलाकर अपने शेष संकल्प को पूरा करने का दायित्व सौंपा। एक ही मुहूर्त में तीन कोटि शिवलिङ्गों की स्थापना करने के लिए विभीषण बहुत दिन तक चिन्तित रहे।

उसी समय श्री जगद्गुरु रेणकाचार्य जी महर्षि अगस्त्य को शिवाद्वैत सिद्धान्त का उपदेश करने के बाद व्योम मार्ग से श्रीलङ्का नगरी आ पहुँचे। श्री जगद्गुरु रेणुकाचार्य जी के श्रीलङ्का में पधारने का समाचार सुनकर विभीषण उनके पास आए और उन्हें गौरव के साथ अपने राजमहल में ले गये। वहाँ पर उनकी वैभव के साथ पादपूजा करके उनको अपने ज्येष्ठ भ्राता रावण के सङ्कल्प को सुनाया। उसक समय जगद्गुरु रेणुकाचार्य जी ने रावण के सङ्कल्प को पूर्ण करने के लिए एक ही समय में तीन कोटि गुरु-रूप धारण करके तीन कोटि शिवलिङ्गों की स्थापना की।

इस तहर जगद्गुरु रेणुकाचार्य अपनी योगसिद्धि से अपने ही जैसे तीन करोड़ आचार्यों के रूप धारण करके अपनी महिमा को दिखाया।

इस तरह श्री जगद्गुरु रेणुकाचार्य ने भूलोक में सोमेश्वर लिङ्ग से आविर्भूत होकर महर्षि अगस्त्य को शिवाद्वैत सिद्धान्त का उपदेश दिया। बाद में श्रीलङ्का में त्रिकोटि शिवलिङ्गों की स्थापना करके अपनी महती शक्ति का प्रदर्शन किया। अवतार का प्रयोजन पूर्ण होने के पश्चात् रेणुकाचार्य पुनः उसी सोमेश्वर शिवलिङ्ग में अन्तर्हित हो गये।

इस प्रकार श्री जगद्गुरु रेणुकाचार्य ने लोककल्याण एवं वीरशैव धर्म की स्थापना के लिए अवतीर्ण होकर लोगों को अपनी महिमा का भान कराया और महर्षि अगस्त्य को शिवाद्वैत सिद्धान्त का ज्ञान किया। वह ज्ञान श्री शिवयोगी शिवाचार्य के द्वारा संगृहीत होकर आज श्रीसिद्धान्तशिखामणि के रूप में सबके लिए सुलभ हो गया है। यह ग्रन्थ वीरशैव धर्म का प्रमुख आकर ग्रन्थ माना जाता है।

श्रीजगद्गुरुचन्द्रशेखरशिवाचार्य महास्वामीजी
जंगमवाडी मठ, वाराणसी

***

भूमिका

शैव-वीरशैवधर्म एवं दर्शन– अद्भुत विश्वसृष्टि का रहस्य, इसके स्रष्टा, उसके साक्षात्कार इत्यादि के विषय में भारतीय मनीषा सुदूर अतीत अथवा भारतीय मान्यता के अनुसार अनादिकाल से जिज्ञासु रही है। विश्व के सर्वप्राचीन अथवा अपौरुषेय ग्रन्थ ऋग्वेद का नारदीय सूक्त (ऋ. १०.१२९.१), श्वेताश्वतर उपनिषद् का प्रथम मन्त्र इत्यादि इस तथ्य के अकाट्य प्रमाण है। अपनी सीमित अथवा खण्ड दृष्टि से जिस मनीषी ऋषि ने जैसा समझा उसने उसी रूप में इसके रहस्य के उद्घाटन की चेष्टा की। इस चेष्टा के द्विविध आयाम संसार में प्रचलित हुए। ऐसा नहीं है कि जिस ऋषि ने जैसा वर्णन किया, उसकी ज्ञातृत्वक्षमता उतनी ही थी, बल्कि जिज्ञासु एवं अधिजिगीषु जनों की पात्रता को दृष्टि में रखकर ऋषियों ने अपने उद्गार का प्रचार-प्रसार किया। इन विविध एवं सीमित वर्णनों की पृष्ठभूमि में एक पूर्ण एवं असीम चित्सत्ता नित्य विराजमान रहती है, यह तथ्य सर्वसम्मत है।

चरम सत्य को, बौद्धिक स्तर पर तर्क-वितर्क के साथ, समझने का प्रयास दर्शन कहलाता है और मानसिक स्तर पर शरीर की विविध चेष्टाओं के साथ उस तक पहुँचने की प्रक्रिया धर्म कहलाती है। गहन विचार करने पर प्रतीत होता है कि दर्शन एवं धर्म एक ही वस्तु के दो आयाम हैं। ज्ञान और क्रिया अथवा दर्शन और धर्म दोनों परस्पर पूरक हैं। इतना अवश्य है कि क्रिया ऋजु पथ है और दर्शन वक्र मार्ग। इसके पीछे क्रमशः उनकी स्थूलता और सूक्ष्मता कारण है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ना मानव का स्वभाव है और उसके लिये श्रेयस्कर भी। इसीलिए गृहस्थाश्रम में जिन योग आदि स्थूल कृत्यों के स्थूल आचरण का नियम है, वानप्रस्थ में उन्हीं के सूक्ष्म रूप में मनन और निदिध्यासन का विधान है–

'सोऽकामयत मेध्यं म इदं स्याद् आत्मन्वी अनेन स्यामिति। ततोऽश्वः समभवत्। यत्तदश्ववत्तन्मेध्यमभूदिति तदेवाश्वमेधस्याश्वमेधत्वम्। एष ह वा अश्वमेधं वेद य एवमेवं वेद.........।' (बृ.उ. १.२.७)।

भारत वसुन्धरा पर शैव और वैष्णव दोनों धारायें अपने धर्म और दर्शन रूपी दोनों आयामों के साथ प्रवाहित होती रही है। वैष्णवी धारा का मूल आधार वेद एवं शैवी धारा का आगम था। अपने मूल रूप में दोनों स्वतन्त्र होती हुई भी कालक्रम एवं मानवीय स्वभाव के कारण मिश्रित हो गयी और परवर्ती समय से मिश्रणों का मिश्रण हुआ एवं नये

नये सम्प्रदाय आविर्भूत हुए। इनमें द्वैत, द्वैताद्वैत एवं अद्वैत के भेद से त्रिविध स्वरूपों का दर्शन मुख्य रूप से होता है। द्वैत से अद्वैत की परम्परा उत्तर से दक्षिण तक प्रचलित थी। सिन्धु घाटी के प्रागैतिहासिक अवशेषों से यह तथ्य सुप्रमाणित है कि उत्तरभारत में वैदिक आर्यसभ्यता के प्रचलन से पूर्व जो लोग वहाँ के निवासी थे, वे शैव-वीरशैव धर्मावलम्बी थे। मोहेनजोदड़ो एवं हडप्पा की खुदाई भी यह सिद्ध करती है कि उस अतिप्राचीन काल में लिङ्गपूजा, इष्टलिङ्गपूजा, मातृशक्तिपूजा और पशुपति-शिव-पूजा, जो कि शैव धर्म के मुख्य अङ्ग है, भारतवासियों के मध्य सुप्रचलित थी। उपर्युक्त खुदाई में मिली भगवान् पशुपति की त्रिनेत्र एवं त्रिमुख प्रतिमा वर्तमान त्रिमूर्ति शिव का ही रूप है। उक्त मूर्ति से अभिव्यक्ति होने वाली ज्ञानमुद्रा तथा अर्धोन्मीलित नेत्र वाली एक योगी की मूर्ति से सङ्केतित शाम्भवी मुद्रा[1] इस बात के स्पष्ट प्रमाण है कि आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व शैव और वीरशैव योगसाधना का प्रचुर प्रचलन था। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस सुदूर अतीत में केवल शैव-वीरशैव धर्म ही नहीं, वरन् तत्सम्बद्ध दर्शन का भी प्रचुर प्रसार रहा। यद्यपि ऋग्वेद में इन्द्र को प्रधान देवता माना गया है, किन्तु यजुर्वेद में रुद्र को प्रधान कहा गया है। कृष्णयजुर्वेद के चतुर्थ काण्ड का पञ्चम प्रपाठक इसमें प्रमाण है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि यद्यपि वेदों में रुद्र का वर्णन है, तथापि वेद में प्रभाव बौद्धों के योगाचार, वज्रयान, कालचक्रयान, पाशुपत, शैवसिद्धान्त, नाथसम्प्रदाय पर पड़ा। महात्मा बुद्ध के योग-गुरु अराड और उद्रक शैवी योगसाधना के अनुयायी रहे। दक्षिण भारत की आलवार और नायनार नामक सन्त परम्परा भी शैवसाधना से प्रभावित प्रतीत होती है। निष्कर्ष यह है कि शैव धर्म हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक प्रचलित था।

श्रीसिद्धान्तशिखामणि : एक दर्शनग्रन्थ– जीव, जगत् और मोक्ष के विषय में किया जाने वाला विचार अथवा चिन्तन 'दर्शन' कहलाता है। जीव का स्वरूप क्या है? जगत् को उत्पत्ति का कारण क्या है? जीव का जगत् के साथ सम्बन्ध क्या है? मोक्ष का स्वरूप और उसकी प्राप्ति का उपाय क्या है? इत्यादि बिन्दु दर्शन में विचारणीय होते हैं। रेणुक-अगस्त्य-संवाद के माध्यम से उपर्युक्त बिन्दुओं पर उत्कृष्ट विचार प्रस्तुत ग्रन्थ में किये गये हैं। जो कर्मफलों का भोक्ता, अल्पज्ञ, किञ्चित्कर्ता, अनादि शरीरवान्, अनादि बद्ध, अविद्योपाधि के कारण मोह में बँधा हुआ है, उसे जीव कहते हैं। ब्रह्मैक्यज्ञान से

---

१. वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव ।
एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव ।।
अन्तर्लक्ष्या बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जिता ।
सा प्रोक्ता शाम्भवी मुद्रा सर्वशास्त्रेषु गोपिता ।।
(हठयोगप्रदीपिका, ४.३५-३६)

भूमिका

शैव-वीरशैवधर्म एवं दर्शन– अद्भुत विश्वसृष्टि का रहस्य, इसके स्रष्टा, उसके साक्षात्कार इत्यादि के विषय में भारतीय मनीषा सुदूर अतीत अथवा भारतीय मान्यता के अनुसार अनादिकाल से जिज्ञासु रही है। विश्व के सर्वप्राचीन अथवा अपौरुषेय ग्रन्थ ऋग्वेद का नारदीय सूक्त (ऋ. १०.१२९.१), श्वेताश्वतर उपनिषद् का प्रथम मन्त्र इत्यादि इस तथ्य के अकाट्य प्रमाण है। अपनी सीमित अथवा खण्ड दृष्टि से जिस मनीषी ऋषि ने जैसा समझा उसने उसी रूप में इसके रहस्य के उद्घाटन की चेष्टा की। इस चेष्टा के द्विविध आयाम संसार में प्रचलित हुए। ऐसा नहीं है कि जिस ऋषि ने जैसा वर्णन किया, उसकी ज्ञातृत्वक्षमता उतनी ही थी, बल्कि जिज्ञासु एवं अधिजिगीषु जनों की पात्रता को दृष्टि में रखकर ऋषियों ने अपने उद्गार का प्रचार-प्रसार किया। इन विविध एवं सीमित वर्णनों की पृष्ठभूमि में एक पूर्ण एवं असीम चित्सत्ता नित्य विराजमान रहती है, यह तथ्य सर्वसम्मत है।

चरम सत्य को, बौद्धिक स्तर पर तर्क-वितर्क के साथ, समझने का प्रयास दर्शन कहलाता है और मानसिक स्तर पर शरीर की विविध चेष्टाओं के साथ उस तक पहुँचने की प्रक्रिया धर्म कहलाती है। गहन विचार करने पर प्रतीत होता है कि दर्शन एवं धर्म एक ही वस्तु के दो आयाम हैं। ज्ञान और क्रिया अथवा दर्शन और धर्म दोनों परस्पर पूरक हैं। इतना अवश्य है कि क्रिया ऋजु पथ है और दर्शन वक्र मार्ग। इसके पीछे क्रमशः उनकी स्थूलता और सूक्ष्मता कारण है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ना मानव का स्वभाव है और उसके लिये श्रेयस्कर भी। इसीलिए गृहस्थाश्रम में जिन योग आदि स्थूल कृत्यों के स्थूल आचरण का नियम है, वानप्रस्थ में उन्हीं के सूक्ष्म रूप में मनन और निदिध्यासन का विधान है–

'सोऽकामयत मेध्यं म इदं स्याद् आत्मन्वी अनेन स्यामिति। ततोऽश्वः समभवत्। यत्तदश्ववत्तन्मेध्यमभूदिति तदेवाश्वमेधस्याश्वमेधत्वम्। एष ह वा अश्वमेधं वेद य एवमेवं वेद..........।' (बृ.उ. १.२.७)।

भारत वसुन्धरा पर शैव और वैष्णव दोनों धारायें अपने धर्म और दर्शन रूपी दोनों आयामों के साथ प्रवाहित होती रही है। वैष्णवी धारा का मूल आधार वेद एवं शैवी धारा का आगम था। अपने मूल रूप में दोनों स्वतन्त्र होती हुई भी कालक्रम एवं मानवीय स्वभाव के कारण मिश्रित हो गयी और परवर्ती समय से मिश्रणों का मिश्रण हुआ एवं नये

नये सम्प्रदाय आविर्भूत हुए। इनमें द्वैत, द्वैताद्वैत एवं अद्वैत के भेद से त्रिविध स्वरूपों का दर्शन मुख्य रूप से होता है। द्वैत से अद्वैत की परम्परा उत्तर से दक्षिण तक प्रचलित थी। सिन्धु घाटी के प्रागैतिहासिक अवशेषों से यह तथ्य सुप्रमाणित है कि उत्तरभारत में वैदिक आर्यसभ्यता के प्रचलन से पूर्व जो लोग वहाँ के निवासी थे, वे शैव-वीरशैव धर्मावलम्बी थे। मोहेनजोदड़ो एवं हडप्पा की खुदाई भी यह सिद्ध करती है कि उस अतिप्राचीन काल में लिङ्गपूजा, इष्टलिङ्गपूजा, मातृशक्तिपूजा और पशुपति-शिव-पूजा, जो कि शैव धर्म के मुख्य अङ्ग है, भारतवासियों के मध्य सुप्रचलित थी। उपर्युक्त खुदाई में मिली भगवान् पशुपति की त्रिनेत्र एवं त्रिमुख प्रतिमा वर्तमान त्रिमूर्ति शिव का ही रूप है। उक्त मूर्ति से अभिव्यक्ति होने वाली ज्ञानमुद्रा तथा अर्धोन्मीलित नेत्र वाली एक योगी की मूर्ति से सङ्केतित शाम्भवी मुद्रा[१] इस बात के स्पष्ट प्रमाण है कि आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व शैव और वीरशैव योगसाधना का प्रचुर प्रचलन था। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस सुदूर अतीत में केवल शैव-वीरशैव धर्म ही नहीं, वरन् तत्सम्बद्ध दर्शन का भी प्रचुर प्रसार रहा। यद्यपि ऋग्वेद में इन्द्र को प्रधान देवता माना गया है, किन्तु यजुर्वेद में रुद्र को प्रधान कहा गया है। कृष्णयजुर्वेद के चतुर्थ काण्ड का पञ्चम प्रपाठक इसमें प्रमाण है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि यद्यपि वेदों में रुद्र का वर्णन है, तथापि वेद में प्रभाव बौद्धों के योगाचार, वज्रयान, कालचक्रयान, पाशुपत, शैवसिद्धान्त, नाथसम्प्रदाय पर पड़ा। महात्मा बुद्ध के योग-गुरु अराड और उद्रक शैवी योगसाधना के अनुयायी रहे। दक्षिण भारत की आलवार और नायनार नामक सन्त परम्परा भी शैवसाधना से प्रभावित प्रतीत होती है। निष्कर्ष यह है कि शैव धर्म हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक प्रचलित था।

श्रीसिद्धान्तशिखामणि : एक दर्शनग्रन्थ– जीव, जगत् और मोक्ष के विषय में किया जाने वाला विचार अथवा चिन्तन 'दर्शन' कहलाता है। जीव का स्वरूप क्या है? जगत् को उत्पत्ति का कारण क्या है? जीव का जगत् के साथ सम्बन्ध क्या है? मोक्ष का स्वरूप और उसकी प्राप्ति का उपाय क्या है? इत्यादि बिन्दु दर्शन में विचारणीय होते हैं। रेणुक-अगस्त्य-संवाद के माध्यम से उपर्युक्त बिन्दुओं पर उत्कृष्ट विचार प्रस्तुत ग्रन्थ में किये गये हैं। जो कर्मफलों का भोक्ता, अल्पज्ञ, किञ्चित्कर्ता, अनादि शरीरवान्, अनादि बद्ध, अविद्योपाधि के कारण मोह में बँधा हुआ है, उसे जीव कहते हैं। बह्मैक्यज्ञान से

---

१. वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव ।
एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव ।।
अन्तर्लक्ष्या बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जिता ।
सा प्रोक्ता शाम्भवी मुद्रा सर्वशास्त्रेषु गोपिता ।।
(हठयोगप्रदीपिका, ४.३५-३६)

रहित ये जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार देव-पशु-पक्षी-मनुष्य आदि अनेक योनियों में प्रमाण करते रहते हैं। इंसके स्वरूप के विषय में ग्रन्थकार ने चार्वाक से लेकर बौद्ध मत तक की चर्चा करते हुए सिद्धान्त रूप में कहा है कि यह आत्मा शरीर-इन्द्रिय-बुद्धि से भिन्न है। यह नित्य आत्मा कर्मवशात् ब्राह्मण आदि देह धारण कर त्रिताप की विशाल अग्नि में जलता रहता है। जिस शरीर का आश्रय कर वह भोग भोगता है, वह भी मलायतन एवं महादुःखवर्धक है। नित्यानित्यवस्तुविवेक के द्वारा वह शरीर के मोह का त्याग कर वैराग्य के द्वारा स्वरूप की प्राप्ति रूप मोक्ष का लाभ करता है।

जगत् की उत्पत्ति के विषय में यहाँ कहा गया है कि यह चरचरात्मक जगत् महादेव से उत्पन्न है। जिस प्रकार लूता अपने द्वारा रचित जाल का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण बनती है, उसी प्रकार महादेव शिव इस जगत् के उपादान एवं निमित्त दोनों कारण हैं। जैसे समुद्र में उत्पन्न होने वाले फेन-लहर-बुदबुद आवर्त आदि समुद्र से भिन्न नहीं होते अथवा तन्तुओं से उत्पन्न पट तन्तुओं से पृथक् नहीं होता, उसी प्रकार यह जगत् शिव से उत्पन्नं होकर शिव से भिन्न नहीं है। ग्रन्थकार ने अनेक उदाहरणों के द्वारा प्रकारान्तर से वेदान्त के विवर्तवाद, सांख्य के सत्कार्यवाद, शाक्त दृष्टि आदि का समर्थन किया है किन्तु इसे मायाविकल्प से उत्पन्न मानकर हेय कहा गया है, अर्थात् इस़ जगत् को शिव से अतिरिक्त मानने की भावना का त्याग बतलाया गया है।

मोक्ष के विषय में ग्रन्थकार का मत है कि शिवत्वलाभ ही मोक्ष है। मुक्ति के चार प्रकार शास्त्रों में वर्णित है- १. सालोक्य, २. सामीप्य, ३. सारूप्य और ४. सायुज्य। श्रीसिद्धान्तशिखामणि में सायुज्य मुक्ति की चर्चा है।[१] यह मुक्ति अन्य सम्प्रदायों की भाँति जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति नाम से दो प्रकार की कही गयी है।[२] श्रीसिद्धान्तशिखामणि का जीवन्मुक्ति का स्वरूप अद्वैत वेदान्त सम्मत मुक्ति जैसा है, किन्तु इसमें आगमशास्त्र का भी पुट प्रतीत होता है। चूँकि शैवागम संसार को उतना ही सत्य मानता है, जितना कि शिव, अतः संसार का निराकरण सम्भव नहीं। निराकरण केवल अहन्ता और ममता का करना होता है। आत्मा अपने विशुद्ध एवं मूल रूप से सदा मुक्त है। अनादि अज्ञान के कारण आबद्ध जीव शिव के साक्षात्कार के बाद देहवान् रहता हुआ भी देहरहित हो जाता है। भेदबुद्धि बन्धन का कारण होती है।[३] अभेदबुद्धि ही मुक्ति है। जीवनकाल में ऐसा होने पर योगी जीवन्मुक्त माना जाता है। यह अवस्था सुषुप्त्यवस्थासदृश है, जिसमें स्वरूप के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखायी देता। यह स्थिति सुखस्वरूपता होती हुई उस शिव की स्फरत्ता से युक्त होती है। वेदान्त में जीव की स्थिति प्रकाश या आनन्द रूप है, किन्तु जीव

१. सि.शि. ९।३५-३६
२. सि.शि. १७।७९-८०
३. सि.शि. १८।४१-४२

को उसका अनुभव नहीं होता। रेणुकाचार्य संविद् को उल्लासरूपी और मुक्त को संविद-उल्लादर्शी कहते हैं[1], अर्थात् जीव को मुक्तावस्था में अपनी आनन्दरूपता का विमर्श होता रहता है। ऐसी दशा प्राप्त करने के लिये योगी को चिदाकाश स्वरूप शिवतत्त्व के अन्दर स्वयं को विलीन कर देना पड़ता है। यही सायुज्य मुक्ति है, जो सर्वोत्कृष्ट है

श्रीसिद्धान्तशिखामणि : एक आगम ग्रन्थ– आगम शास्त्र के चार पाद कहे गये हैं– विद्या (ज्ञान), क्रिया, योग और चर्या। श्रीसिद्धान्तशिखामणि में न्यूनाधिक मात्रा में चारों पादों का संव्यूहन मिलता है। क्रिया के विषय में कहा गया है कि शिवयोगी को चाहिये कि वह अन्य समस्त क्रियाओं का त्याग कर केवल लिङ्गपूजा रूपी क्रिया करे। यज्ञ, अग्निहोत्र, दुश्चर तप ये सब लिङ्गपूजा के क्षुद्र अंश के तुल्य हैं। जो योगी लिङ्गार्चन करता है वह समस्त क्रियाओं को करने वाला हो जाता है। यहाँ तक कि ब्रह्मा आदि भी जो अपने पदों पर प्रतिष्ठित है, उसके मूल में उनके द्वारा विधीयमान लिङ्गार्चन ही है।[2] शिव ही साक्षात् परमतत्त्व है, इसीलिये उन्हीं के सन्दर्भ में क्रिया करने का विधान है। शिवसमावेश के लिये क्रिया एक आवश्यक कर्तव्य है। जिस प्रकार अरणि में स्थित अग्नि को प्रकट करने के लिये घर्षण क्रिया अनिवार्य होती है, उसी प्रकार अन्तःस्थ शिव के प्रकाश के लिये लिङ्गार्चन क्रिया आवश्यक है। यह क्रिया आगमशास्त्र का ज्ञान होने के बाद ही की जानी चाहिये। शिवरहस्य में कहा गया है–

न क्रियारहितं ज्ञानं न ज्ञानरहिता क्रिया।
अपश्यन्नन्धको दग्धोऽगच्छन् पङ्गुश्च दह्यते।।

इसलिये गुरु आदेश लेकर (न कि केवल ग्रन्थ का अध्ययन मात्र कर) महेश्वर का लिङ्गार्चन करना चाहिये।

यद्यपि पूजाकाल में भगवान् शिव लिङ्ग में परिच्छिन्न हो जाते हैं, किन्तु उस काल में भी शिव को सर्वव्यापी समझना चाहिये क्योंकि सर्वगामित्व उनका स्वभाव है और स्वभाव 'स्व' से पृथक् नहीं होता। चूँकि यह संसार आत्मरूपी शिव से उत्पन्न है[3], अतः वह अपने उपादान से भिन्न नहीं हो सकता। अज्ञानवश रज्जु में सर्पत्व अथवा आकाश में गन्धर्वनगरत्व की भाँति शिव में जगत् का आभास होता है। शिव सर्वव्यापी होते हुए भी कैलाश, मन्दर, सुमेरु और भक्तों के हृदय में विशेष रूप से रहते हैं। क्रिया की सीमा स्थूल तक है, भाव की सीमा सूक्ष्म तक है, किन्तु ज्ञान स्थूल और सूक्ष्म दोनों के अतीत होता है। शिवपूजा का प्रारम्भ स्थूल मूर्ति अर्थात् लिङ्ग से होता है, फिर मन में उसकी

१. सि.शि. १८।६८
२. सि.शि. १५।३३-३६
३. तै.उ. २।१

सूक्ष्म रूप से भावना होती है। लेकिन उससे भी परे अखण्ड ज्ञान रूप में उनका भजन ही मोक्षदायक होता है। अतः क्रिया से विद्या अथवा ज्ञान की ओर चलना चाहिये।

जहाँ तक योग प्रश्न है प्रस्तुत ग्रन्थ में दो प्रकार के योगों की चर्चा है– १. जपयोग और २. भक्तियोग। नादतत्व या शब्दब्रह्म का साक्षात् करने के लिये जप का एक सरल सदृढ़ और सुन्दर उपाय है। 'तज्जपस्तदर्थभावनम्' जप की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। महर्षि पतञ्जलि इस जप को स्वाध्याय की संज्ञा देते हैं और इसको क्रिया योग के रूप में निर्धारित करते हैं।१ सिद्धान्तशिखामणि में जिस मन्त्र के जप का विधान है, वह है– पञ्चाक्षरी मन्त्र 'नमः शिवाय'। कोई-कोई इसे षडक्षरी भी कहते हैं। शिव पद में चार अक्षर श् इ व् अ हैं। इनमें से 'श' अथर्ववेद का, 'इ' यजुर्वेद का, 'अ' ऋक् एवं साम का तथा 'व' व्याकरण का प्रतीक है। इस प्रकार शिव पद वेद और वेदाङ्ग दोनों का वाचक है, अतः 'शिव' पदस्थ शकार पञ्च ब्रह्म का और वकार माया का वाचक है, अतः 'शिव' पद सम्पूर्ण सृष्टि का वाचक है। इस पञ्चाक्षरी मन्त्र का जिसको ज्ञान हो जाता है, उसे अन्य मन्त्रों को जपने की आवपश्यकता नहीं होती। पञ्चाक्षर में पञ्चमहाभूत, पञ्चतन्मात्र, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ, पञ्चब्रह्म, पञ्चकृत्य आदि सब समाहित हैं। ग्रन्थ में जप के वाचिक, उपांशु और मानस भेदों की चर्चा करने के पश्चात् इसका महत्त्व बतलाते हुए कहा गया है–

यावन्तः कर्मयज्ञाद्या व्रतदानतपांसि च ।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।[२]

श्रीसिद्धान्तशिखामणि में भक्तियोग की विशद चर्चा मिलती है। भक्ति के विषय में श्रीमद्भागवत् महापुराण का कथन है–

उश्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं राक्ष्यमात्मनिवेदनम् ।।[३]

शिवयोगिशिवाचार्य ने नवम परिच्छेद के प्रारम्भ में 'विष्णोः' के स्थान पर 'शम्भोः' लिखकर उक्त श्लोक को उद्धृत किया है।

उत्तम भक्त के क्रिया-कलापों की चर्चा भी भागवत में मिलती है–

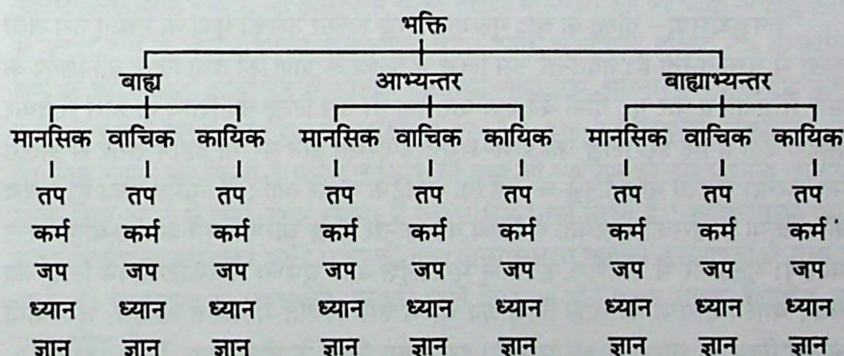
वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।

---

१. तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः (यो.सू. ३।१)
२. सि.शि. ८।३०
३. भा. म. पु. ७।५।२३

स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ।।[१]

इस भक्ति के दो प्रकार सिद्धान्तशिखामणि में वर्णित है– १. बाह्य भक्ति और २. आभ्यन्तर भक्ति। शिवलिङ्ग की नाना उपचारों से पूजा बाह्य भक्ति कहलाती है। यह सर्वसाधारण के लिये है। आभ्यन्तर पूजा का सामर्थ्य केवल वीरशैवों में ही होता है। इसमें प्राण को लिङ्ग में और लिङ्ग को प्राण में प्रतिष्ठित कर शिव के अतिरिक्त किसी अन्य का ध्यान न करने का विधान है। शाम्भवी मुद्रा अथवा शाम्भव योग के द्वारा इस भक्ति के पुनः तीन प्रकार बतलाये गये हैं– १. मानसिक, २. वाचिक और ३. कायिक। शिव के रूप आदि का ध्यान उनकी पूजा आदि का चिन्तन मानसी भक्ति है। जप आदि वाचिकी एवं बाह्य शिवलिङ्ग पूजा, शैव मन्दिर आदि में जाकर दर्शन इत्यादि करना कायिकी भक्ति है। एक बाह्याभ्यन्तर पूजा होती है, जो तीसरी है। इसमें मन को ही महेश्वर में लगा देना पड़ता है, फलतः समस्त प्रकार की पूजायें स्वयं होने लगती हैं। शिखामणिकार ने भक्ति के पाँच आयाम बतलायें हैं– तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान। शिव के लिये देह को शुष्क बनाना तप है, न कि कृच्छ्र चान्द्रायण, सान्तपन आदि। शिव की पूजा की कर्म है, न कि याग आदि। पञ्चाक्षर मन्त्र अथवा प्रणव का जप ही जप है। वेद के अन्य सूक्तों आदि का पाठ न कर केवल रुद्राष्टाध्यायी एवं रुद्र मन्त्रों का ही पाठ करने का विधान है। शिव के रूप गुण आदि का ही ध्यान करना चाहिये न कि आत्मा का। इसी प्रकार केवल शैवशास्त्रों का न कि वैष्णव आदि अन्य शास्त्रों का अध्ययन ज्ञान कहा जाता है। इस प्रकार भक्ति का भेद-प्रसार इस प्रकार समझना चाहिये–



तप आदि पांच प्रकारों के अनुष्ठान को शिवयज्ञ कहा गया है। जो इस पञ्चयज्ञ से शिव की अहर्निश पूजा करता है, वही भक्तियोगी है।

१. भा.पु. १०।१०।३८

आगमशास्त्र का चतुर्थ पाद चर्या है। चर्या का तात्पर्च है– आचरण। शिवयोगी को कैसा आचारण करना चाहिये, इसका विशद वर्णन रेणुकाचार्य ने किया है। सच पूछा जाय तो श्रीसिद्धान्तशिखामणि विशेष रूप से चर्याग्रन्थ है। वीरशैव मत किंवा समस्त आगमानुयायी जनों के लिये ज्ञान की अपेक्षा चर्या का अधिक महत्त्व है, क्योंकि चर्या के पथ का पथिक होने पर पामर जन भी अन्ततोगत्वा शिवसायुज्य प्राप्त कर सकते हैं और अपामर अर्थात् शास्त्रज्ञानी जन भी विना चर्या के शिव सायुज्य नहीं प्राप्त कर सकते। इस प्रकार चर्या पामर अपामर दोनों के लिये अनिवार्य है।

दीक्षा– चर्या का प्रथम क्रम दीक्षा है। दीक्षा का लक्षण निम्नलिखित है–

दीयते च शिवज्ञानं क्षीयते पाशबन्धनम् ।
यस्मादतः समाख्याता दीक्षेतीयं विखक्षणैः ।।[१]

यह दीक्षा तीन प्रकार की है– वेधा दीक्षा, २. मन्त्र दीक्षा और ३. क्रिया दीक्षा। प्रथम दीक्षा में गुरु शिष्य के ऊपर दृष्टि डालते हुए अपने हाथ को उसके शिर पर रखते हैं और शिष्य को शिवसमावेश प्राप्त हो जाता है। मन्त्र दीक्षा में गुरु शिष्य के कान में पञ्चाक्षर मन्त्र का उपदेश करते है। मन्त्र का मनन करने पर त्राण करने वाली यह दीक्षा मान्त्री दीक्षा कहलाती है। क्रिया दीक्षा का वर्णन विस्तार से इस ग्रन्थ में मिलता है। इसमें किसी शुभ मुहूर्त में आचार्य ऋत्विजों के साथ मिलकर शिष्य का अभिषेक कर दक्षिण कर्ण से पञ्चाक्षरी मन्त्र का उपदेश देता है। तत्पश्चात् पञ्चाक्षर मन्त्र का न्यास विनियोग आदि बतलाता है।

लिङ्गधारण– दीक्षा के बाद गुरु एक लिङ्ग लाकर उसकी पूजा के पश्चात् उसे शैवी कला से युक्त करता है। तदनन्तर उस लिङ्ग में शिष्य के प्राण की तथा लिङ्ग की शिष्य के प्राण में स्थापना कर गुरु दोनों को एक कर देता है। उस लिङ्ग को शिष्य के हाथ में देकर आदेश देता है कि इस लिङ्ग को प्राण–सङ्कट उपस्थित होने पर भी अपने शरीर से अलग मत करना। यह तो बाह्य लिङ्ग के, जो कि स्फटिक पत्थर आदि से निर्मित होता है, धारण की प्रक्रिया है। इसकी सहायता से शिष्य को आन्तर लिङ्ग धारण करने का अभ्यास करना चाहिये। मूलाधार में स्वर्णिम, हृदय में मूंगासदृश और भ्रूमध्य में स्फटिकोपम लिङ्ग का ध्यान बतलाया गया है। बाह्य लिङ्ग का धारण उसी स्थिति में करना चाहिये, जब योगी आन्तर लिङ्ग के धारण में असमर्थ हो। इस प्रकार लिङ्ग के तीन प्रकार हैं– १. स्थूल, २. सूक्ष्म और ३. परात्पर। स्फटिक आदि से निर्मित बाह्य लिङ्ग, जिसे शिर, कण्ठ, हृदय या बाहु आदि में धारण किया जाता है। प्राणलिङ्ग को सूक्ष्म कहते हैं। जो परात्पर लिङ्ग है,

---

१. सि. शि. ६।११

वह तृप्ति लिङ्ग कहलाता है। स्थूल लिङ्ग का धारण नाभि के नीचे नहीं करना चाहिये। अपने बायें उसकी पूजा उसके हाथ पर रख कर करनी चाहिये।

भस्मधारण— लिङ्ग-धारण के अनन्तर भस्म-धारण भी शिवयोगी के लिये अनिवार्य क्रिया है। 'भस्म' शब्द 'भास' धातु से मनिन् प्रत्यय जोड़कर बना है। इसका अर्थ होता है— भासन अर्थात् प्रकाशन कराने वाला। जो शिव का भासन कराता है, वह पञ्चाक्षरी मन्त्र ही वास्तविक भस्म है। उसके प्रतीक के रूप में मन्त्र न्यास ध्यान आदि से उत्पन्न स्थूल भस्म का धारण करने की विधि सिद्धान्तशिखामणि में वर्णित है। भस्म को विभूति, भसित आदि पाँच संज्ञायें हैं और उनके अपने-अपने विशिष्ट अर्थ हैं। ये भस्म कपिल कृष्ण आदि पाँच वर्णों वाली नन्दा आदि पाँच गायों से उत्पन्न है एवं इनकी उत्पत्ति में सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान नामक पञ्चब्रह्म कारण हैं। इस भस्म का नित्य धारण करना चाहिये। इसकी धारण त्रिपुण्ड्र रूप में करने का विधान है। त्रिपुण्ड्र का अर्थ है— अनामिका मध्यमा तर्जनी के द्वारा भस्म की तीन तिर्यक् रेखायें बनाना। इसके धारण के अङ्ग हैं— शिर, ललाट, दोनों कान, गला, दोनों भुजायें, हृदय, नाभि, पीठ, दोनों हाथ, दोनों कोहनी एवं दोनों मणिबन्ध, (=कलाइयाँ)। इनके धारण से मनुष्य रुद्र के समान महान् हो जाता है।

रुद्राक्षधारण— भस्म-धारण के पश्चात् रुद्राक्ष-धारण का भी विधान इस ग्रन्थ में वर्णित है। रुद्राक्ष की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि त्रिपुरदाह के प्रस्तावकाल में भगवान् रुद्र ने तीसरे नेत्र को उन्मीलित कर तीनों पुरों को देखा। उस समय क्रोध के कारण उनमें तीनों नेत्रों से जो आँसू गिरे वे ही रुद्राक्ष बन गये। रुद्र की अक्ष अर्थात् आँख से उत्पन्न होने के कारण इनका नाम रुद्राक्ष पड़ा। उनके सूर्यात्मक दक्षिण नेत्र से कपिल वर्ण के बारह, बायें चन्द्र नेत्र से सोलह श्वेत तथा ललाटस्य अग्निमय नेत्र से दश कृष्ण वर्णों के रुद्राक्ष उत्पन्न हुये। इस प्रकार रुद्राक्ष १२+१६+१०=३८ अड़तीस प्रकार के होते हैं। जिस रुद्राक्ष को किसी ने धारण न किया हो तथा जो स्वर्णिम हो उसे पहनना चाहिये। भिन्न-भिन्न अङ्गों में भिन्न-भिन्न संख्या में रुद्राक्ष धारण का विधा है।[१] रुद्राक्षधारण करने वाला शिवभक्त ब्रह्महत्या आदि महापापों तथा अन्य समस्त पातकों उपपातकों से मुक्त हो जाता है। मृत्युकाल में रुद्राक्ष को पीसकर पानी के साथ पीने वाला मनुष्य रुद्रलोक को प्राप्त होता है।

मन्त्रजप— पञ्चाक्षर मन्त्र का जप एक अन्य चर्या हैं। जप के वाचिक, उपांशु और मानस तीनों प्रकार के जप को जपयज्ञ कहा गया है। यह भी कहा गया है कि सारे कर्मयज्ञ

---

१. शि. सि. ७।५२-५८

अथवा व्रतदान आदि जपयज्ञ की सोलहवीं कला के तुल्य भी नहीं होते। आणव, मायीय एवं कार्म पाशों से मुक्ति के लिये जप करना चाहिये। अप्‌भक्षण, वायु-भक्षण या अन्य व्रत करने वाले भी इनके द्वारा शिवलोक को प्राप्त नहीं कर सकते। यह महामन्त्र एक बार उच्चरित होकर भी सर्वसिद्धि-प्रदायक होता है। पञ्चाक्षर मन्त्र का उच्चारण कर शिवलिङ्ग पर पुष्प फेंकने से एक सहस्र वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है। वशिष्ठ, वामदेव आदि ऋषिगण इस मन्त्र के जप से सिद्ध हो गये। शतानन्द मुनि ने नरक को स्वर्ग बना दिया। ब्रह्मा आदि के अन्दर सृष्टि आदि करने का सामर्थ्य इसी मन्त्र के कारण है।

उपर्युक्त चर्याविधि के अतिरिक्त अन्य प्रकार की बहुत सी चर्याओं का वर्णन सिद्धान्तशिखामणि में मिलता है। यदि यह कहा जाय कि सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रकारान्तर से चर्या-वर्णन-प्रधान ग्रन्थ है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। गुरु का महत्त्व, गुरु के प्रति कर्तव्य, लिङ्ग का महत्त्व, लिङ्गधारण की महत्ता, शिवयोगी की महिमा, शिवार्चन का माहात्म्य इत्यादि अनेक विषय हैं, जिन पर ग्रन्थकार ने प्रचुर प्रकाश डाला है। आचार्य अभिनवगुप्त ने आगमशास्त्र को प्रक्रिया-शास्त्र एवं अनुभव-शास्त्र कहा है। क्रिया, प्रक्रिया, साधना, अनुष्ठान इत्यादि प्रारम्भिक स्तर के विषय हैं। बिना क्रिया के कुछ भी नहीं किया जा सकता। क्रिया का जैसे-जैसे उत्कर्ष होता है, भगवत्कृपा वैसे-वैसे प्रभूतमात्रा में भक्त को अनुगृहीत करती है। इसी बीच भक्त को अनेक प्रकार के दिव्य अनुभव होने लगते हैं तथा साधक दिव्यशक्तियों से समन्वित होता जाता है। साधना-क्रम में एक अवसर ऐसा आता है, जब प्रक्रिया या क्रिया को करना नहीं पड़ता, वह अपने आप होने लगती है। जप ध्यान आदि की यह अवस्था उच्च कोटि की होती है। अन्त में 'यद् यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्' की स्थिति आ जाती है और साधक को अलग से कुछ नहीं करना पड़ता। वह स्वयं शिवत्व का अनुभव करता है और उसके समस्त कृत्य शिव के हो जाते हैं। उपनिषदों में वर्णित 'आत्मरतिः आत्मक्रीडः' इत्यादि वचन इसी अवस्था के द्योतक हैं। गणेशपुरी (महाराष्ट्र) के शिवस्वरूप सन्त भगवान् नित्यानन्द कभी-कभी अपने द्वारा अपनी ही पूजा करते थे- 'ॐ गन्धं समर्पयामि आत्मने नमः, ॐ पुष्पं समर्पयामि आत्मने नमः' इत्यादि कहकर अपने ही हाथों से अपने ही ऊपर गन्ध पुष्प आदि चढ़ाते थे। सिद्धान्तशिखामणि के अट्ठारहवें परिच्छेद से लेकर बीसवें परिच्छेद तक का वर्णन शिवयोगी की साधना का चरम उत्कर्ष सङ्केतित करता है।

जनसामान्य की अवधारणा है कि आगमशास्त्र प्रायः वेद-विरोधी हैं। आंशिक रूप से यह अवधारणा सत्य है। ब्राह्मण आदि ग्रन्थों का जटिल कर्मकाण्ड एवं उसके अधिकारी का विशिष्ट वर्ण, अवस्था आदि से युक्त होना इत्यादि ऐसे जो भी नियमनिर्देश हैं, उनसे तन्त्रशास्त्र सहमत नहीं है। यह शास्त्र अत्यन्त उदार है। शैवी साधना, शिवायुज्य का अधिकार मानव मात्र को है- ऐसा आगमशास्त्र की दृढ़ मान्यता है। यहाँ तक कि जिस

स्त्री को यज्ञ करने की अधिकार वेदों में निषेध है, आगम में उसे लिङ्गार्चन का पूरा अधिकार है। उसके लिये कहा गया है–

लिङ्गार्चनरतायास्तु ऋतौ नार्या न सूतकम् ।
तथा प्रसूतिकायाश्च सूतकं नैव विद्यते ।।
(सि. शि. ९।४४)

इसीलिये परवर्ती काल (११वीं शती या उसके बाद) में वेदों एवं आगमों में एक प्रकार का सामञ्जस्य स्थापित करने का अभियान चला और आचार्य अभिनवगुप्तपाद को कहना पड़ा–

गर्भाधानादितः कृत्वा यावदुद्वाहमेव च ।
तावत्तु वैदिकं कर्म पश्चाच्छैवे ह्यनन्यभाक् ।।

सिद्धान्तशिखामणि के ग्रथन के मूल में सामञ्जस्य की भावना निहित है। ग्रन्थकार शिवयोगी शिवाचार्य ने सांख्य, योग, पाञ्चरात्र, वेद एवं पाशुपत की प्रामाणिकता को एक समान माना है और इनमें भी वेद को सर्वप्रधान कहा है। वेद के प्रामाण्य से शेष सांख्य योग आदि का प्रामाण्य है–

सांख्यं योगः पाञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा ।
एतानि मानभूतानि नोपहन्यानि युक्तिभिः ।।

तथा–

वेदाः प्रधानं सर्वेषां सांख्यादीनां महामुने ।
वेदानुसारणादेषां प्रामाण्यमिति निश्चितम् ।।
(सि. शि. ५।४-५)

रेणुकाचार्य ने कहीं-कहीं ऐसे श्लोकों का ग्रथन किया है कि वे उपनिषत् या गीता के श्लोकों की प्रतिच्छायारूप प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ–

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
जन्तुर्मरणजन्मभ्यां परिभ्रमति चक्रवत् ।।
(सि. शि. ५।६३)

यह श्लोक गीता के श्लोक को ही पूर्वार्ध के रूप में उद्धृत किया है। इसी प्रकार 'पृथिव्याद्यष्टमूर्तित्वमीश्वरस्य प्रकीर्तितम्' (सि. शि. १०।४९) वचन बृहदारूण्यक उपनिषद् के 'यस्य पृथिवी शरीरम्' से लेकर 'यस्यात्मा शरीरम्' (३।७।३-३।७।२३) को,

तथा–

नित्यं भासि तदीयस्त्वं या ते रुद्र शिवा तनूः ।
अघोराऽपापकाशीति श्रुतिराह सनातनी ।।

(सि. शि. १०।५९)

मैं शुक्लयजुर्वेद वाजसनेयिसंहिता के १६।२ मन्त्र को ही उद्धृत कर दिया गया है। इसी प्रकार तैत्तिरीय उपनिषद्, ब्रह्मबिन्दूपनिषत्, श्वेताश्वर उपनिषत् आदि श्रुतियों के प्रतिच्छाया वचन प्रस्तुत ग्रन्थ में पदे-पदे देखे जा सकते हैं। निष्कर्ष यह है कि शवयोगी शिवाचार्य ने इस ग्रन्थ में वेदोपनिषद्गीता सम्मत उपदेश किया है।

श्रीसिद्धान्तशिखामणि : एक महाकाव्य– दर्शनशास्त्र एवं आगमशास्त्र का ग्रन्थ होने के साथ-साथ श्रीसिद्धान्तशिखामणि एक महाकाव्य भी है। इक्कीस परिच्छेदों में उपनिबद्ध यह ग्रन्थ 'सर्गबन्धों महाकाव्यम्' के निकष पर उत्कृष्ट कोटि का महाकाव्य सिद्ध होता है। इसके नायक रेणकाचार्य हैं। जो धीरोदत्त नायक के गुणों से भी उच्च स्तर के गुणों से युक्त है। वे अविकत्थन अर्थात् आत्मश्लाघारहित हैं। उन्होंने अगस्त्य और विभीषण की प्रशंसा की अपनी नहीं। क्षमा उनके अन्दर इतनी कि शिव के द्वारा अभिशप्त होने पर उनको क्रोध नहीं हुआ, प्रत्युत उन्होंने विनम्रता के साथ शिव से शापोद्धार की याचना की। शिव के प्रिय गणेश्वर होने के कारण गाम्भीर्य और महत्ता से युक्त होना उनका स्वभाव ही था। दृढ़ व्रत ऐसे कि शिव के आदेश के पालन का सङ्कल्प लेकर महामुनि अगस्त्य को आदेश देकर उन्होंने वीरशैव सिद्धान्त का प्रचार-प्रसार किया तथा विभीषण के निवेदन पर एक साथ तीन करोड़ शरीर धारण कर तीन करोड़ शिवलिङ्गों की लङ्का में स्थापना की।

इस महाकाव्य में शान्त रस अङ्गी है। सम्पूर्ण ग्रन्थ के अध्ययन के समय आद्योपान्त निर्वेद भाव उदित होता रहता है। गुरु, शिष्य, शिवभक्ति, लिङ्ग, संसार, कष्ट, लिङ्गार्चन, समर्पण आदि अनेक विषय पाठक के मन में सांसारिकता के प्रति वैरस्य एवं शिव के प्रति अर्चन एवं समर्पण के भावों का सृजन करते हैं। नायक के व्यक्तित्व का वर्णन, नायिका वर्णन, प्रकृति वर्णन इत्यादि महाकाव्य के अनिवार्य विषय होते हैं। ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में शिवस्तुति, शक्तिस्तुति के माध्यम से नायम-नायिका का वर्णन किया है। रघुवंश महाकाव्य की सरणि का अनुसरण करते हुए शिवयोगी ने ग्रन्थकार के (अर्थात् अपने) वंश का वर्णन किया है। शिव नामक परब्रह्म का द्वितीय परिच्छेद में विशेष कर एवं तृतीय में श्लोक से ९ से २३ तक पन्द्रह श्लोकात्मक कुलक से वर्णन किया गया है। इसी प्रकार भवानी का २४ से लेकर ३५ श्लोक तक १३ श्लोकों से सौन्दर्य-वर्णन है। तृतीय परिच्छेद के प्रारम्भ में ही प्रकृति वर्णन भी है।

जहाँ तक अलङ्कारों का प्रश्न है, इसमें अनेक अलङ्कारों का प्रयोग दृष्ट होता है। कुछ उदाहरण यहाँ निम्नलिखित हैं–

नाभिस्थानावलम्बिन्या नवमौक्तिकमालया ।
गङ्गयेव कृताश्लेषमौलिभागावतीर्णया ।। (३.२२)

मालोपमा–

अर्थहीना यथा वाणी पतिहीना यथा सती ।
श्रुतिहीना यथा बुद्धिर्भावहीना तथा क्रिया ।। (१६.१९)

शिवानन्दं समासाद्य को वाऽन्यमुपतिष्ठते ।
गङ्गामृतं परित्यज्य कः काङ्क्षेन्मृगतृष्णिकाम् ।। (१३.०७)

रूपक–

त्रैलोक्यसम्पदालेख्यसमुल्लेखनभित्तये।
सच्चिदानन्दरूपाय शिवाय ब्रह्मणे नमः।। (१.१)

ज्ञानचन्द्रसमुद्भूतां परमानन्दचन्द्रिकाम्।
पश्यन्ति परमाकाशे मुक्तिरात्रौ महाधियः।। (१९.१४)

उपर्युक्त कुछ उद्धरण इस तथ्य के प्रमाण हैं कि परम आलङ्कारिक शिवयोगी शिवाचार्य ने इस महाकाव्य में यथासम्भव यथोचित एवं यथास्थान अलङ्कारों का समावेश किया है।

छन्द के प्रसङ्ग में मुख्य वक्तव्य यह है कि इस महाकाव्य में अनुष्टुप् (श्लोक) छन्द का ही मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है। जैसा कि महाकाव्य की शैली होती है, प्रत्येक परिच्छेद के अन्त में छन्द बदल दिये गये हैं। अन्तिम पद्य बड़े छन्दों में लिखा गया है। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

परिच्छेद	अन्तिम पद्य का छन्द
१.	मालिनी
२.	वंशस्थ
३.	शार्दूलविक्रीडित
४.	वसन्ततिलका
५.	शार्दूलविक्रीडित
६.	वंशस्थ
७.	वंशस्थ
८.	मालिनी
९.	वंशस्थ

१०.	वंशस्थ
११.	वंशस्थ
१२.	वंशस्थ
१३.	वंशस्थ
१४.	वंशस्थ
१५.	शार्दूलविक्रीडित
१६.	पुष्पिताग्रा
१७.	शार्दूलविक्रीडित
१८.	वंशस्थ
१९.	शार्दूलविक्रीडित
२०.	अनुष्टुप् (श्लोक)
२१.	शार्दूलविक्रीडित

इस ग्रन्थ का प्रणयन वैदर्भी शैली में हुआ है। प्रायः समासरहित पद, कोमल वर्णों का प्रयोग आदि वैदर्भी रीति की विशेषतायें हैं। इस रचना में मूर्धन्य एवं वर्ग के द्वितीय चतुर्थ वर्णों का प्रयोग अत्यन्त अल्प मात्रा में किया गया है। अतः यह रचना प्रासादगुण वाली है। इसमें श्रुतिकटुत्व, दूरान्वय, क्लिष्टता, सन्देह इत्यादि दोष नहीं हैं। ग्रन्थ के अध्ययन के समय अध्येता के मन में शान्त रस मिश्रित भक्ति की धारा प्रवाहित होती रहती है। यह ग्रन्थ यथार्थतः वीरशैव सिद्धान्तों की शिखामणि है।

श्रीसिद्धान्तशिखामणि के व्याख्यान एवं सम्पादन में जिनका आशीर्वाद सहज स्नेहमयी प्रेरणा एवं योगदान रहा है, उनमें सर्वप्रथम श्रीजगद्गुरु विश्वाराध्य सिंहासनाधीश्वर श्री १००८ जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी का नाम स्मरणीय है। रघुवंश महाकाव्य की 'आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः' इत्यादि वचन को चरितार्थ करने वाले व्यक्तित्व के धनी स्वामी जी की इस प्रकाशन में सहृदय साशीर्वाद आदेशात्मक प्रेरणा रही, अतः मैं उनको शतशः प्रणाम करता हूँ। शैव भारती शोध प्रतिष्ठानम् (जंगमवाड़ी मठ) के निदेशक आचार्य स्व. पण्डित व्रजवल्लभ द्विवेदी जी मेरे गुरुकल्प हैं। उनके निष्कारण करुणामय स्नेह से निरन्तर अभिषिक्त मैं इस प्रकाशन के प्रति उनका कृतज्ञ हूँ और हृदय से उनका आधमर्ण्य स्वीकार करता हूँ। अक्षर संयोजन-कला के मर्मज्ञ प्रिय श्री चिदानन्द ओ. हिरेमठ (खसगी) ने पूर्ण निष्ठा के साथ अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किया, एतदर्थ वे हमारे आशीर्वाद के पात्र हैं। इसके मुद्रण के लिये मित्तल ऑफसेट् सुन्दरपुर वाराणसी को भी मैं हृदय से आशीर्वाद देता हूँ। अन्त में इस अविमुक्त वाराणसी

क्षेत्र के अधिष्ठाता भगवान् भूतभावन और भगवती अन्नपूर्णा के चरणों में सर्वविधया नमन करते हुए मानवसुलभ त्रुटियों, न्यूनताओं के लिये सुधी पाठकवृन्द से निवेदन करता हूँ कि वे इन पर ध्यान न देकर ग्रन्थस्थ विशेषताओं को हृदयङ्गम करें–

'सूर्पवद् दोषमुत्सृज्य गुणं गृह्णन्ति साधवः ।'

नवरात्रि
सं.२०७१

विनयावत
राधेश्याम चतुर्वेदी

***

विषय-संक्षेप

प्रथम-तृतीय परिच्छेद– ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये प्रथम परिच्छेद में प्रथम बारह श्लोकों तक मङ्गलाचरण के पश्चात् शिवयोगी शिवाचार्य का वंश-वर्णन है। शिवयोगी (प्रथम) के पुत्र मुद्ददेव उनके पुत्र सिद्धनाथ, सिद्धनाथ के पुत्र शिवयोगी (द्वितीय) हुए। ये वीरशैव के प्रवर्तक हुये। इन्होंने श्रीसिद्धान्तशिखामणि की रचना की।

ब्रह्म सच्चिदानन्दरूप परिच्छेदातीत एवं सनातन है। सृष्टि के पहले यह विश्व उसमें लीन रहता है। उसकी शक्ति भी उसमें समवाय सम्बन्ध से नित्य वर्तमान रहती है। उस परमेश्वर ने ब्रह्मा की सृष्टि कर उन्हें समस्त विद्याओं से अलंकृत किया एवं सृष्टि का उपाय बतलाया तथा शिव जी ने ही सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् प्रमथगणों को उत्पन्न किया। उनमें से रेणुक और दारुक ये दो गण शिव के अत्यन्त प्रिय हुये। वे सदा अन्तःपुर के द्वार पर रहकर भगवान् शिव की सेवा किया करते थे।

एक बार भगवान् शिव कैलास पर्वत पर विराजमान थे। भगवती उमा तथा उनका परिवार भी साथ में शोभायमान था। सरस्वती, वेद, अन्य दिव्य कन्यायें, अन्य स्त्रियाँ, विद्येश्वर, नन्दी आदिगण, प्रमथगण उनकी सेवा कर रहे थे। साथ ही ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवगण; वशिष्ठ आदि ऋषिगण; द्वादश आदित्य, अष्ट वसु, एकादश रुद्र, राक्षस, दानव आदि उनकी सपर्या में निरत थे। भगवान् शिव भी क्रमशः सबको अपने कृपाकटाक्ष से कृतकृत्य कर रहे थे। इसी बीच भगवान् शिव ने रेणुक को प्रसाद के रूप में ताम्बूल देने के लिये बुलाया। रेणुक ने शिव का आह्वान सुनकर साभिमान होकर दारुक को लाँघ कर शिव के पास जाने की धृष्टता की। भगवान् शिव ने इस कुत्सित आचरण को देखकर रेणुक से कहा– हरे दुर्बुद्धे! शिवभक्तों का उल्लंघन परम अनर्थ का कारण होता है। अतः मनुष्यवत् आचरण करने के अपराध के कारण तुम मनुष्य हो जाओ। भयभीत रेणुक ने शिव से प्रार्थना की कि उसे मनुष्ययोनि से जन्म न लेना पड़े। रेणुक की प्रार्थना से प्रसन्न भगवान् शिव ने कहा– श्रीशैल के उत्तर भाग में त्रिलिङ्ग देश (= सम्भवतः तैलङ्गाना) में सोमेश्वर नाम का मेरा एक शिव लिङ्ग है। उससे तुम्हारा प्राकट्य होगा और तुम वेद-वेदान्तसम्मत वीरशैव शास्त्र की भूलोक में स्थापना करोगे। ऐसा कहकर भगवान् अपने अन्तःपुर में चले गये और रेणुक ने इस धरती पर अवतार लिया।

चतुर्थ-पञ्चम-परिच्छेद– जब सोमेश्वर महादेव से रेणुक का प्रादुर्भाव हुआ तो तैलङ्गाना देश के समस्त प्राणी अत्यन्त तेजस्वी उनको देखकर अत्यन्त विस्मित हुए।

उनका सम्पूर्ण शरीर भस्मोद्धूलित था। मस्तक पर त्रिपुण्ड्र सुशोभित था। कटिप्रदेश में कन्था बाँधे वे हाथों में योगदण्ड, भस्मपात्र एवं कमण्डलु लिये हुए थे। 'आप कौन हैं?'– ऐसा लोगों के पूछने पर उन्होंने कहा– 'मैं भगवान् शिव का सहचर रेणुक हूँ। किसी कारण से यहाँ शिवलिङ्ग से मेरी उत्पत्ति हुई। जैन, बौद्ध, चार्वाक आदि नास्तिक दर्शनों का खण्डन कर वीरशैवसिद्धान्त की स्थापना करना मेरे अवतार का प्रयोजन है।' ऐसा कहकर रेणुकाचार्य आकाशमार्ग से मलय पर्वत पर आ गये और वहाँ अगस्त्य के आश्रम में पधारे। वह आश्रम अत्यन्त रमणीय तथा तपस्वियों से परिपूर्ण ब्रह्मलोक के समान था। उस आश्रम के मध्य चन्दनवृक्ष के नीचे महर्षि अगस्त्य बैठे हुए थे। पिङ्गजटाधारी त्रिपुण्ड्राङ्कित मस्तक वाले अगस्त्य के चारों ओर तपस्वी एवं मुनिलोग विराजमान थे। रेणुकाचार्य को आया हुआ देखकर दिव्यचक्षु से अगस्त्य ने जान लिया कि वे कौन है और किस प्रयोजन से वहाँ आये हैं। लोपामुद्रा के द्वारा लाये गये जल आदि से रेणुक की पूजा कर अगस्त्य दूसरे आसन पर बैठ गये।

इसके पश्चात् अगस्त्य और रेणुकाचार्य के बीच इस प्रकार संवाद हुआ–

रेणुकाचार्य ने कहा– हे मुनिवर! आप महातेजस्वी है, इसलिये आपके नित्य नियम आदि में विघ्न की रञ्चमात्र भी सम्भावना कैसे हो सकती है? आपने विन्ध्याचल को झुका दिया, समुद्र का जल सोख कर उसे कीचड़ बना दिया, वातापी राक्षस को अपनी जठराग्नि में जला दिया; पूर्वकाल में स्वामी कार्त्तिकेय ने आपको शिवधर्म का उपदेश दिया, अतः आप परम शिवभक्त है।

अगस्त्य ने कहा– मैं सदा मुनियों के आदर का पात्र रहा। मैं आपको रेणुक नामक गणेश्वर के रूप में जानता हूँ। मेरे ऊपर कृपा करने के लिये आप इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं। मैं आपके मुख से श्रुतिसम्मत शैवसिद्धान्त सुनना चाहता हूँ। अनेक आगमों के श्रवण के कारण मेरे मन में संशय उत्पन्न हो गया। अतः हे दिव्ययोगिन्! आप मुझे उक्त सिद्धान्त सुनाकर कृतकृत्य कीजिये।

अगस्त्य के वचन को सुनकर आचार्य रेणुक ने कहा– हे अगस्त्य! मैं आपको शिवज्ञान का उपदेश करूँगा। मनीषियों के रुचिभेद के अनुसार सांख्य, योग, पाञ्चरात्र, वेद, पाशुपत आदि अनेक सिद्धान्त प्रचलित हैं। ये सब प्रामाणिक दर्शन हैं। इनका खण्डन नहीं करना चाहिये। यह शैवतन्त्र उक्त सभी दर्शनों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। शैव, पाशुपत, सोम और लाकुल भेद से आगम चार प्रकार के हैं। इनमें शैवागम वाम, दक्षिण, मिश्र और सिद्धान्त भेद से चार प्रकार का है। वाम आगम शक्तिप्रधान, दक्षिणागम भैरवप्रधान, मिश्रागम सप्तमातृकापरक और सिद्धान्त वेदप्रधान है। अतः शिवोपदिष्ट कामिकादि वातुलान्त आगमों की अपेक्षा वीरशैवमत अधिक प्रामाणिक है।

वीरशैव एवं वीरमाहेश्वर पद का अर्थनिर्वचन करने के बाद वीरशैव के छः भेद बतलाये गये हैं। वे हैं– भक्त स्थल, माहेश्वर स्थल, प्रसादी स्थल, प्राणलिङ्गी स्थल, शरण स्थल और ऐक्य स्थल। उनके पश्चात् भक्त स्थल के अवान्तर पन्द्रह भेद बतलाये गये हैं। उनके नाम हैं– पिण्ड स्थल, पिण्डज्ञान स्थल, संसारहेय स्थल, गुरुकारुण्य स्थल, लिङ्गधारण स्थल, विभूतिधारण स्थल, रुद्राक्षधारण स्थल, पञ्चाक्षरजप स्थल, भक्तमार्गक्रिया स्थल, उभय स्थल, त्रिविध सम्पत्ति स्थल, चतुर्विध साराय स्थल, सोपाधिदान स्थल, निरुपाधिदान स्थल और सहजदान स्थल। शिवभक्त को चाहिये कि इन स्थलों का प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करे।

पिण्ड स्थल में पिण्ड अर्थात् शरीर, पिण्डज्ञान स्थल में शरीर का स्वरूप, संसारहेय में संसार एवं सांसारिक वस्तुओं का त्याज्य होना बतलाया गया है।

षष्ठ-सप्तम- परिच्छेद– षष्ठ परिच्छेदस्थ गुरुकारुण्य स्थल में गुरु का वैशिष्ट्य बतलाकर शिष्य को गुरु के पास जाने की बात कही गयी है। तत्पश्चात् दीक्षा की परिभाषा, उसके तीन प्रकार, मांसपिण्ड को मन्त्रपिण्ड के रूप में सुसंस्कृत करना बतलाया गया है। लिङ्गधारण स्थल में शिष्य के प्राण का लिङ्ग के साथ सामरस्य, लिङ्गधारण का प्रयोजन, उसके धारक, अन्तर्लिङ्गधारण, बाह्यलिङ्गधारण, लिङ्गधारण में श्रुति प्रमाण का वर्णन किया गया है।

सप्तम परिच्छेद के भस्मधारण स्थल में भस्म के विभूति आदि पाँच नामों की अन्वर्थकता, उनके रूप, विनियोग, भस्मनिर्माण की नाना प्रक्रियायें, स्नान के सात प्रकार, भस्म स्नान, त्रिपुण्ड्र धारण, त्रिपुण्ड्र धारणीय अङ्गों का और त्रिपुण्ड्रधारी जीव का वर्णन है। रुद्राक्ष धारण स्थल में रुद्राक्षों की उत्पत्ति, धारणीय रुद्राक्ष के लक्षण, किस अङ्ग में कितने रुद्राक्ष धारण करने चाहिये, रुद्राक्ष धारण का फल इत्यादि का वर्णन प्रस्तुत है।

अष्टम-दशम परिच्छेद– अष्टम परिच्छेद में पञ्चाक्षरी विद्या का वर्णन किया गया है। जिस प्रकार शिव से बढ़कर कोई दूसरा तत्त्व नहीं है, उसी प्रकार पञ्चाक्षर (नमः शिवाय) से बढ़कर दूसरा मन्त्र नहीं है। 'शिव' नामक दो अक्षर परब्रह्म के प्रकाशक हैं। ॐकार के साथ इसे षड़क्षर मन्त्र भी कहा जाता है। इसके पश्चात् पञ्चाक्षर जप का विधान, जप के भेद, जपयज्ञ का माहात्म्य, मानस जप की श्रेष्ठता, समन्त्रक शिवपूजन की विधि और उसका माहात्म्य, पञ्चाक्षरी जप का फल, जप करने वाले आचार्यों की महिमा का वर्णन कर परिच्छेद समाप्त किया गया है।

नवम परिच्छेद का विषय भक्तिमार्ग-क्रिया है। इसमें भक्ति के नव भेद, बाह्य और आभ्यन्तर की दृष्टि से भक्ति के दो प्रकार, भक्ति का अनेक जन्मलभ्यत्व, मनो-वाक्-काय भेद से पुनः भक्ति के तीन प्रकार, पुनः तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान के भेद से

पाँच प्रकार का शिवयज्ञ, वीरशैव मार्ग से दीक्षित भक्त के लिये नियम, लिङ्गी और अलिङ्गी के भेद एवं कर्त्तव्य, दानों में अन्न-जल-दान की श्रेष्ठता का वर्णन किया गया है। इसके अनन्तर उभयस्थल में शिव और गुरु में अभेद की चर्चा की गयी है। तदनन्तर उल्लिखित त्रिविधसम्पत्ति स्थल में गुरु, लिङ्ग और जङ्गम शिवयोगी का विविध आयामों की दृष्टि से वर्णन प्रस्तुत है। चतुर्विधसराय स्थल में शिव का चरणामृत, उनको अर्पित बिल्वपत्र, माला, अन्न के ग्रहण का फल बतलाया गया है। अन्त में सोपाधि, निरुपाधि एवं सहज संज्ञक तीन प्रकार के दानों की महिमा बतलायी गयी है।

दशम परिच्छेद का विषय माहेश्वर स्थल है। इसमें माहेश्वर की प्रशंसा, लिङ्गनिष्ठा, पूर्वाश्रय निरास, अद्वैत निराकरण, आह्वान वर्जन, अष्टमूर्ति निराकरण, सर्वगतत्व का खण्डन, शिव और भक्त दोनों की शिवता- इस प्रकार नव भेदों की चर्चा है। जो महेश्वर को सर्वश्रेष्ठ समझता है, वही माहेश्वर है। वह परस्त्री-परद्रव्य पराङ्मुख शिव के लिये प्राण-त्याग इत्यादि करने वाला होता है। इस माहेश्वर के द्वारा विधीयमान लिङ्गनिष्ठा का स्वरूप यह है कि भक्त उक्त माहेश्वर लिङ्ग को ही सब कुछ समझता है। वह प्राण-सङ्कट होने पर भी लिङ्ग-पूजा का पहाव्रत नहीं छोड़ता। उसे वेदोक्त अग्निहोत्र आदि कर्म नहीं करने पड़ते। वह पूर्व स्वीकृत धर्मों का त्याग कर देता है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की धारण का परित्याग करने वाला वह लिङ्ग को पूज्य और अपने को पूजक समझता हुआ द्वैतभाव से रहता है। उसे शिव का आह्वान नहीं करना चाहिये, क्योंकि लिङ्ग के रूप में शिव सदा उसके साथ हैं। पृथ्वी आदि आठ तत्त्व शिव से भिन्न है। इसीलिये वह सर्वगत होते हुए भी लिङ्ग में विशेष रूप से अधिष्ठित रहते हैं। भिन्न रूप में उनकी पूजा करते हुए भी पूजक को यह भावना करनी चाहिये कि शिव सर्वव्यापी है। ऐसा होते हुए भी वे अपने भक्तों के हृदय में विशेष रूप से स्थित होकर भासते हैं।

एकादश-त्रयोदश परिच्छेद- एकादश परिच्छेद में मुख्य प्रसादीस्थल है। दूसरा गुरुमाहात्म्य इसके बाद लिङ्गप्रशंसा, जङ्गमगौरव, भक्तमाहात्म्य, शरणकीर्तन और शिवप्रसादमाहात्म्य- इस प्रकार इसमें सात स्थल (= उपपरिच्छेद) है। प्रसादीस्थल में मन की निर्मलता, निर्मलता की प्राप्ति के उपाय, निर्मलता से लाभ की चर्चा की गयी है। गुरुमाहात्म्य में गुरु और शिव में अभेद एवं ऐसी धारणा से लाभ का वर्णन है। तीसरे स्थल में लिङ्ग का स्वरूप, ब्रह्म ही लिङ्ग है, परमा शक्ति उसकी पीठ है, दोनों का समायोग विश्वलिङ्ग है। इसकी उपासना में परम ऐश्वर्य मिलता है। शिवयोगी लोग जङ्गमलिङ्ग होते हैं। कामादि दोषरहित शिवज्ञानी शिवचिन्तनपरायण ही वास्तविक जङ्गमलिङ्ग है। भक्तमाहात्म्य परिच्छेद में भक्त का लक्षण, शिव एवं भक्त में अभेद एवं उनका वैशिष्ट्य बतलाया गया है। शरणस्थल में शरण की महिमा, शरणार्थी का स्वरूप, शिवप्रपत्ति का

महत्त्व बतलाया गया है। प्रसादमहत्त्व-स्थल का विषय शिव-प्रसाद का स्वरूप, उसकी महिमा का वर्णन कर परिच्छेद का उपसंहार किया गया है।

द्वादश परिच्छेद प्राणलिङ्गीस्थल के नाम से उद्धृत है। इसमें पाँच अवान्तर स्थल है- प्राणलिङ्ग, प्राणलिङ्गार्चन, शिवयोगसमाधि, लिङ्गनिजस्थल तथा अङ्गलिङ्गस्थल। प्राण और अपान के समाघात से कन्द के मध्य से उठी हुई ज्योति को प्राणलिङ्ग कहा जाता है, जो बाह्य लिङ्ग को छोड़कर चित् लिङ्ग का परामर्श करता है, प्राणलिङ्गी कहा जाता है। ऐसे प्राणलिङ्ग की हृदयकमल में अर्चना प्राणलिङ्गार्चन है। इसके लिए क्षमा, विवेक, सत्य आदि गुणों का उपचार के रूप में प्रयोग होता है। शिवयोगसमाधि स्थल में समाधिस्थ का लक्षण, बहिर्वासना के अपसारण के उपाय का वर्णन है। लिङ्गनिजस्थल में लिङ्गस्वरूप की चर्चा, लिङ्ग का महत्त्व तथा अपना उसी रूप में ध्यान करने की बात कही गयी है। अङ्गलिङ्गीस्थल में यह बतलाया गया है कि ज्ञानरूपी अङ्ग और ज्ञेयरूपी लिङ्ग ये दोनों जिसके पास हैं, वह अङ्गलिङ्गी कहा जाता है। जो इन दोनों से शून्य है, उसकी मुक्ति नहीं होती।

त्रयोदश परिच्छेद में शरणस्थल, तामसनिरसनस्थल, निर्देशस्थल एवं शीलसम्पादन स्थल क़ी बात की है। पतिव्रता स्त्री की भाँति जो शिव को पति और अपने को पत्नी समझता हुआ तथा अन्य आराध्य देवताओं के प्रति विमुख है, उसे शरणस्थलवान् कहा जाता है। गुरु के द्वारा इस भक्त के अन्दर जब वर्तमान समस्त तमोभाव निरस्त कर दिये जाते हैं, तो वह तामसनिरासक कहा जाता है। जिसका ज्ञान तमोमिश्रित है, उसको मुक्ति नहीं मिलती। इसलिये जो शम-दम आदि से युक्त है, वह सात्त्विक महायोगी कहलाता है। इसी प्रकार शिवमय प्रपञ्च में सर्वत्र द्वेष भावना रखने वाला राजस एवं सर्वत्र असत्य भावना रखने वाला तामस शिवयोगी होता है। इनमें प्रथमकोटि का योगी सर्वोत्तम है। ऐसा व्यक्ति जिस ज्ञान को बतलाता है वह ज्ञान निर्देश कहलाता है। ऐसा निर्देश देने वाला ही वास्तविक गुरु है, वही शिवत्वलाभ कराने में समर्थ है। शिवतत्व की जिज्ञासा, उनके प्रति स्थिर भावना शील के नाम से अभिहित होती है। इस प्रकार शिवैक्यज्ञान, शिवध्यान, शिवप्राप्ति के लिये उत्कण्ठा यह सब शील कही जाती है। ऐसा भक्त ही शिवलिङ्गैक्यवान् कहा गया है।

चतुर्दश-षोडश परिच्छेद- चतुर्दश परिच्छेद में ऐक्य, आचार सम्पत्ति आदि चार स्थल है। शरणवान् भक्त प्राणलिङ्ग के योग से अतिशय सुख को प्राप्त कर शिव के साथ ऐक्य वाला हो जाता है। विषयानन्द-पराङ्मुख वह शिवानन्द के सागर में निमज्जन करता रहता है। उसको संसार का भान नहीं होता, क्योंकि भेदरूपी बिल में सोने वाले

संसाररूपी सर्प के लिये शिवैक्यभावना बाधक औषधि है। जो शिवैक्यभाव को प्राप्त है, उसे कर्मफलों का भोग नहीं करना पड़ता। इस दशा में ब्राह्मण-चाण्डाल, पापी-पुण्यात्मा एक समान हो जाते हैं। उसके कर्मबीज शिवज्ञानाग्नि से दग्ध हो जाते हैं। उसके गमन आदि समस्त कर्म शिवाराधन हो जाते हैं। वह इस विश्व को शिवमय देखता है। शिव और विश्व दोनों में उसे परस्पर आधाराधेयभाव की प्रतीति होती रहती है। शिव में लीन उसका निराकुल हृदय जब वृत्तिशून्य हो जाता है, तो वह मुक्त हो जाता है। गुरु, शिव और शिष्य का एक रूप में स्मरण सहभोजन कहा जाता है। जो ऐसा नहीं समझता वह विश्वभोजक नहीं है। जब वह पराहन्ता रूप पावक में इदन्ता का होम कर देता है तो उसे विश्वहोमी कहते हैं। समस्त विश्व को 'अहम्' रूप में देखना पूर्णाहन्ता कही जाती है।

पञ्चदश परिच्छेद– दीक्षागुरु, शिक्षागुरु आदि नव स्थलों का वर्णन किया गया है। जो शिवज्ञान दे और त्रिविध मल का क्षय करे, उसे दीक्षा कहते हैं। उस विषय में गुरु दीक्षागुरु कहा जाता है। 'गु' अर्थात् गुणातीत, 'रु' अर्थात् रूपातीत, जो इसका ज्ञान कराये वह गुरु कहलाता है। जो शास्त्र के अर्थ को समझकर उसको संग्रह करे तथा स्वयं आचरण करे और दूसरों को उस दिशा में प्रेरित करे, उसे आचार्य कहते हैं। जो समस्त वस्तुओं में अखण्ड चैतन्य की अभिव्यक्ति करता है, वह गुरु विश्वभासक होता है। जो दीक्षागुरु है। वही शिष्य का बोधक होने से शिक्षागुरु भी है। इस प्रकार ज्ञानदीपिका से शिष्य के हृदय को प्रकाशित करने वाला गुरु दुर्लभ होता है, जो व्यक्ति शिवरूपानुसन्धायी ज्ञान को देता है, वह ज्ञानगुरु के नाम से अभिहित होता है। सूर्य केवल बाह्य अन्धकार दूर करता है, किन्तु ज्ञानगुरु बाह्य और आभ्यन्तर दोनों अन्धकारों का नाशक है। ज्ञानगुरु के विशेष ज्ञान के द्वारा सारी क्रियायें जिसमें लीन हो जाती हैं, उसे क्रियालिङ्ग कहते हैं। योगी लोग समस्त क्रियायों का त्याग कर केवल लिङ्गपूजा में तत्पर रहते हैं, इस कारण क्रियालिङ्ग का विशेष महत्त्व है। ऐसा करते-करते एक स्थिति ऐसी आती है, जब क्रिया और भाव दोनों लिङ्ग में लीन हो जाते हैं। इसे भावलिङ्ग कहा जाता है। इस दशा में परमेश्वर भक्त के भावमात्र से प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार आन्तर भावपूजा सर्वोत्कृष्ट है। उसे ज्ञानी जन ही करते हैं। यहाँ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि भेद समाप्त हो जाता है। परबोध ही ज्ञान का विषय बनता है। ऐसे बोध से सम्पन्न व्यक्ति को ज्ञानलिङ्गी और बोध को ज्ञानलिङ्ग कहते हैं।

भावलिङ्ग का ज्ञापक ज्ञान जिस ज्ञान में लीन हो जाता है, उस ज्ञान वाला व्यक्ति 'स्वयं' कहा जाता है। वह संसार में रहते हुए भी परानन्द में लीन रहता है। शिव का ध्यान, शिव का ज्ञान, भिक्षा एवं एकान्त वास, ये ही उसके कर्म होते हैं। ऐसा स्वयं लिङ्गयुक्त साधक जब काम, क्रोध आदि से रहित सर्वत्र समबुद्धि वाला होकर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'

की भावना करता है रहता है, तो उसे 'चर' कहते हैं। वह जब स्वयंमात्र होकर सर्वत्र स्वयं को ही देखता है, तो उसका ऐसा बोध परबोध कहा जाता है। वह वर्ण, आश्रम, धर्म आदि से परे होकर अपने को ही सर्वोत्कृष्ट समझता है। ऐसा शिवयोगी अपने दर्शन-स्पर्शन से अज्ञानियों को भी मुक्त कर देता है। वह निरञ्जन एवं जीवन्मुक्त होकर भी सामान्य जनवत् व्यवहार करता है।

षोडश परिच्छेद— माहेश्वर के वर्णन से अलंकृत है। इस माहेश्वर स्थल में नव खण्ड हैं। उनके नाम— क्रियागम, भावागम, ज्ञानागम, सकाय, अकाय, परकाय, धर्माचार, भावाचार और ज्ञानाचार हैं। क्रियागम स्थल में शिवपूजा की चर्चा है। जिस प्रकार बिना अरणिमन्थन के अग्नि प्रकट नहीं होती, उसी प्रकार बिना पूजा के शिव का साक्षात्कार नहीं होता। इसलिये गुरु का आदेश लेकर परमेश्वर की पूजा करनी चाहिये। उनकी पूजा से समस्त देव पूजित होते हैं। ज्ञान और क्रिया दोनों दो पङ्खों के समान हैं। एक से भी विहीन यह जीवरूपी पक्षी मोक्षाकाश में विचरण नहीं कर सकता। ऐसा अभ्यास करते-करते भावशुद्धि हो जाती है। इस स्थिति में सर्वत्र पूर्ण माहेश्वर की ही भावना होती है। भाव ही वह चक्षु है, जिससे शिव को देखा जा सकता है। ऐसा भक्त परम ज्ञानी हो जाता है। ज्ञानरहित कर्म बन्धन का कारण होता है। ज्ञान ही मुक्ति देता है और वह शास्त्र के अभ्यास, गुरु के उपदेश, सत्सङ्ग आदि से प्राप्त होता है। देह तथा कर्म के अभिमान से रहित योगी का शरीर आत्मसदृश होता है। उसके द्वारा यह लोक सकाय कहा जाता है, क्योंकि बिना शरीर के योगी संसारी जनों को सन्मार्ग पर नहीं ला सकता। मूर्ति के माध्यम से देवता की पूजा की भाँति देह के माध्यम से ही योगी भी लोक में पूज्य होता है। तपस्या इत्यादि समस्त कार्य का सम्पादन योगी शरीर से ही करता है, अतः उसे शरीर का त्याग नहीं करना चाहिये। सशरीर होते हुए भी वह, शरीर आदि के प्रति भेद-बुद्धि एवं ममत्वाभिमान से रहित होने के कारण, अकाय कहा जाता है। वह अपने को मनुष्य, देवता आदि नहीं बल्कि शिव ही सकझता है। चूँकि प्रकृति इसके वश में रहती है और माया का इसे स्पर्श नहीं रहता इसलिये यह सच्चिदानन्द-स्वरूप परकाय होता है। पराहन्ता अथवा पूर्णहन्ता को प्राप्त हुआ वह योगी अखिल विश्व को स्वात्मरूप या शिवरूप में ही देखता है। फलतः वह निरवच्छिन्न होता है। उस परकाय योगी का जो आचरण होता है, वह धर्माचार कहलाता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा, दान, पूजा, जप और ध्यान ये धर्म हैं। इनका अनुसरण करने वाला अहङ्कार-ममकार से रहित होता है। ऐसा होकर भी योगी को चाहिये कि वह धर्माचरण का त्याग न करे। उक्त धर्माचारसम्पन्न शिवयोगी का भाव ही सामान्य जनों का भावाचार होता है। भाव से मनःशुद्धि होती है और भाव की शुद्धि कर्म से होती है। इसलिये योगी को भाव का त्याग नहीं करना चाहिये। शिव-भावना

के द्वारा समस्त कार्यों को करने वाला महायोगी गुण-दोष से लिप्त नहीं होता। स्वयं को, संसार को तथा परशिव को एक समझने वाला ही वास्तविक शिवद्रष्टा है। ऐसे योगी का ज्ञानाचार ही साधारण लोगों के लिये ज्ञानाचार कहा जाता है। शिवाद्वैत-भावना ही ज्ञान है। ऐसा समझ कर जो संसार में व्यवहार करता है, वह ज्ञानाचारी कहा जाता है। वह समस्त लोगों को ज्ञान से युक्त करता है। अद्वैत भक्ति से युक्त इस शिवयोगी की समस्त क्रियायें केवल क्रियामात्र होती हैं, उनसे बन्धन या संसार की उत्पत्ति नहीं होती।

सप्तदश-अष्टादश परिच्छेद– सत्रहवाँ परिच्छेद प्रसादी स्थल के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें नव स्थल हैं। जिनके नाम हैं– कायानुग्रह, इन्द्रियानुग्रह, प्राणानुग्रह, कायार्पित, करणार्पित, भावार्पित, शिष्यस्थल, सुश्रूषास्थल और सेव्यस्थल। अपने शरीर का दर्शन कराते हुए शिवयोगी जब लोगों के ऊपर अनुग्रह करता है, तो वह कायानुग्रह कहा जाता है। ऐसा इसलिये होता है कि शिव स्वयं योगी के शरीर में आविष्ट होकर अनुग्रह करते हैं। इस प्रकार शिव एवं शिवयोगी दोनों शरीर के प्रति अनासक्त होते हैं। इन्द्रियों का परशिव से अभेद ज्ञान इन्द्रियानुग्रह कहलाता है। ऐसी स्थिति में योगी अन्तःकरण में शिव का अनुभव करते हुए कभी-कभी क्षणमात्र के लिये बाह्य पदार्थों का भी अनुभव करता है। उसे जरा-मरण का भय नहीं रहता। वह इन्द्रियों के साथ प्राण को भी मन से संश्लिष्ट कर शिवभावना करता रहता है। इन्द्रियानुग्रहसम्पन्न योगी जब प्राणवायु को निरुद्ध कर तात्पर्य को देखता है, तब वह प्राणानुग्रह कहा जाता है। तात्पर्यदर्शन का अर्थ है– परम कारण शिव में प्राण को लीन कर देना। प्राणवृत्तियों के लीन होने पर मन शान्त हो जाता है, किन्तु अपने शक्ति-संस्कार के बल से योगी शरीरयात्रा करता रहता है। वस्तुतः उसको शरीर रहते हुए भी नहीं रहता है, क्योंकि उसे निज कायाभिमान नहीं रहता। यही कायार्पित कहा जाता है। शिव के लिये स्वशरीर के अर्पण के फलस्वरूप वह योगी शिव हो जाता है। शरीर का समस्त सुख-दुःख शिव का हो जाता है। करणा!र्पित स्थल का विषय है, समस्त इन्द्रियों का शिवार्पण। विषय-सुख की अनुभवित्री इन्द्रियों का शिवार्पण करने वाली योगी करणार्पक कहा जाता है। इन्द्रियों का प्रधान मन है। उसके वशीकृत होने पर सब इन्द्रियाँ वश में हो जाती है। चित्त एवं जगत् की चिदग्नि में आहुति देने पर संसार नहीं रहता है और शिवयोगी मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार निश्चल भाव से शिव के लिये समस्त भावों का अर्पण भावार्पित कहा जाता है। मन में सदा भावनायें उत्पन्न होती रहती है। ये ही बन्धन का कारण है। 'शिवोऽहम्' की भावना चित्तस्थ अशुद्ध भावनाओं को नष्ट कर देती है। फिर भोक्ता, भोग्य और भोग यह त्रिपुटी नष्ट हो जाती है। समस्त कर्म शिवार्चन, समस्त चयन शिवकीर्तन हो जाता है– 'यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्।' परकाय शिवयोगी के द्वारा जो शासनीय होता है, वह शिष्य है। शम, दम, तप, शील,

सत्यवाक्त्व, समदृष्टि, गुरु और शिव में तुल्यभाव, ये सब उत्तम शिष्य के लक्षण हैं। शिष्य को चाहिये कि वह गुरु की आज्ञा का उल्लंघन न करे। ऐसे शिष्य को जब गुरु निर्देश करते हैं कि 'तुम शिव हो', तब वह मुक्त हो जाता है। परकाय गुरु के द्वारा उपदिश्यमान यह शिष्य जब उस गुरु की सेवा में लगा रहता है, जब उसे सुश्रूषु कहते हैं। शिष्य केवल सेवा ही नहीं करता, वह प्रश्न-प्रतिप्रश्न भी करता रहता है कि कौन सा परमतत्त्व ज्ञेय है? किसके साक्षात्कार से मुक्ति होती है– इत्यादि। उत्तर में गुरु कहता है– 'शिव ही ज्ञेय है। तुम शिव हो। शिव का श्रवण-चिन्तन-मनन करो। इससे मुक्तिलाभ होगा।' गुरु के इस प्रकार के उपदेशामृत का पान कर सुश्रूषु शिष्य जब शिवतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब वह सेव्य कहा जाता है। गरु के उपदेशानुसार आचरण करने से वह गुरुवत् पूज्य हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि वह शिष्य भी अपने दृष्टिपात से सामान्य जनों को मोक्षमार्ग पर ले जाने में समर्थ हो जाता है और ले भी जाता है।

अष्टादश परिच्छेद– अठारवाँ परिच्छेद प्राणलिङ्गस्थल वाला है। इसमें आत्मस्थल, अन्तरात्मस्थल, परमात्मस्थल, निर्देहागमस्थल, निर्भावागमस्थल, नष्टागमस्थल, आदिप्रसादस्थल, अन्त्यप्रसादस्थल एवं सेव्यप्रसादस्थल है। सेव्यस्थल जब जीवभाव का त्याग कर तत्त्व के रूप में भावना का विषय होता है, तब इसे आत्मा कहते हैं। यह आत्मा बाल के अग्रभाग का शतांश रूप है। प्राक्तन कर्मरूपी पाश से आबद्ध होकर यह जीव होता है तथा अहङ्कार से सम्बद्ध होने के कारण शरीरवान् बनता है। अपने मूल रूप में यह निर्देह एवं निर्मल है। यह अनाम और अरूप है। देहधारी होकर यह पुष्करपलाश के सदृश देह से असंसक्त है। ऐसी स्थिति में भी यह योग के बल से शिव का साक्षात्कार करता रहता है। यह अन्तरात्मा ही निर्मल होकर परमात्मा हो जाता है। शिव ही सर्वव्यापी एवं उत्कृष्टतम आत्मतत्त्व होने के कारण परमात्मा है। वह अपनी धूमावती आदि शक्तियों के द्वारा विश्व में पञ्चकृत्य करता हुआ स्थित है। परमात्मस्थल के बाद निर्देहागमस्थल का वर्णन है। अहन्त्व और ममत्व दोनों का निरास होने के बाद देह के स्थूलत्व आदि धर्म का योगी को भान नहीं होता। ऐसा योगी निर्देह कहा जाता है। यद्यपि सामान्य लोगों की दृष्टि में वह सदेह रहता है किन्तु यथार्थतः वह देहभावना एवं देहविकार से परे रहता है। सर्वव्यापी परमात्मा के साथ अभिन्न होने पर वह परिच्छिन्न देहकर्मों से प्रभावित हो ही नहीं सकता। यह शिवयोगी निर्देहतत्त्व के परिणामस्वरूप राग-द्वेष आदि भावों से रहित हो जाता है। 'अहम्' और 'ब्रह्म' ये दो भाव हैं। चिदाकाश में दोनों के एक होने पर निर्भाव की स्थिति होती है। वाणी और मन की सीमा से परे शून्य चिदाकाश में अपने अस्तित्व का लय करने वाले योगी के लिये भावना की कल्पना असम्भव है। ऐसी स्थिति में जब उसका ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय रूप त्रिपुटीभाव नष्ट हो जाता है, तब उसे नष्टागम कहते हैं।

त्रिपुटी की स्थिति द्वैतता में रहती है। अद्वैत होने पर उसे स्व का भी भान नहीं होता, फिर त्रिपुटी या त्रिपुटीमय प्रपञ्च और उसके भान की क्या बात! अद्वैत भावना के अनन्तर शिवयोगी के लिये शिवत्व पद की प्राप्ति अवशिष्ट रहती है। उसके लिये शिव की कृपा आवश्यक होती है। जिस प्रकार सूर्य को देखने के लिये सूर्य की किरणें आवश्यक होती हैं, उसी प्रकार शिवपद प्राप्त करने के लिये शिव की कृपारूपी किरण अनिवार्य होती है। शिवत्व का साक्षात्कार और संसारत्व की निवृत्ति एक ही बात है। संसार की निवृत्ति का दूसरा नाम 'अन्त्य' है। संसार मायाकृत है। इसका अन्त चिदाकाश-दर्शन से होता है। चिद्व्योम में प्रतिष्ठित होने पर संसार नहीं रहता। यह दशा सबके सेव्य शिवरूपी गुरु की प्रसन्नता से प्राप्त होती है। गुरु ही परम तत्त्व है। उसके साथ ऐक्य को प्राप्त होने के बाद कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रहता। यह स्थिति नित्यतृप्ति की होती है।

एकोनविंश-एकविंश परिच्छेद– उन्नीसवाँ परिच्छेद शरणस्थल के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें बारह भाग है। उनके नाम– दीक्षापादोदक, शिक्षापादोदक, ज्ञानपादोदक, क्रियानिष्पत्तिक, भावनिष्पत्तिक, ज्ञाननिष्पत्तिक, पिण्डाकाशस्थल, बिन्द्वाकाशस्थल, महाकाशस्थल, क्रियाप्रकाशनस्थल, भावप्रकाशनस्थल तथा ज्ञानप्रकाशनस्थल हैं। चूँकि दीक्षा के द्वारा द्वैतभाव नष्ट हो जाता है और गुरु एवं शिष्य के विषय में ऐक्यभावना हो जाती है, अतः इसे दीक्षापादोदक कहा गया है। 'पाद' का अर्थ होता है– निर्मल परमानन्द और 'उदक' का अर्थ है– ज्ञान। दीक्षा के द्वारा ज्ञान और निर्मल आनन्द अभिन्न हो जाता है। परासंवित् से युक्त शिवयोगी परानन्द को प्राप्त कर सर्वत्र अभेद का अनुभव करता है। यह ज्ञानानन्द केवल गुरुकृपा से प्राप्त होता है।

पूर्वोक्त ज्ञान का मनन और गुरुशिष्य की एकरूपता का ज्ञान इन दोनों की समरसता शिक्षापादोदक कहा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि शिवयोगी विशयानन्द से पराङ्मुख होकर निजानन्द-सागर में निमज्जन करने लगता है, क्योंकि विषयानन्द उस परानन्द की कणिकामात्र होता है। ऐसे आनन्दमय योगी की समस्त क्रियायें फल नहीं देती। वह ज्ञानी कर्म करता हुआ भी उनसे उसी प्रकार लिप्त नहीं होता– जैसे घृत आदि का स्वाद लेने वाली जिह्वा उससे लिप्त नहीं होती। जिस शिवयोगी के अन्दर प्रतीत होने वाले भाव भी कल्पित हों, वह भाव निष्पत्तिमान् होता है। यद्यपि उसका भाव से सम्बन्ध नहीं होता तथापि उसे तारक शिव के प्रति अद्वैत भावना करनी चाहिये, क्योंकि उसका वह भाव अन्य भक्तों के लिये तारक होता है। बिना भाव के ज्ञान नहीं, बिना ज्ञान के भाव नहीं। इसलिये योगी को चाहिये कि वह दोनों का आश्रयण करे। इन दोनों का कारक मन होता है। मन जब लक्ष्य को प्राप्त कर परतत्त्व में विलीन हो जाता है, जब उसका ज्ञान स्वप्नवत् हो जाता है। ऐसा ज्ञानी ज्ञाननिष्पत्तिमान् कहा जाता है। जिस प्रकार जागने पर

स्वप्न पदार्थ और उसका ज्ञान लुप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार आत्मप्रकाश होने पर संसार और उसका ज्ञान दोनों विलुप्त हो जाते हैं। ऐसी दशा में अखण्ड आनन्दस्वरूपा संवित् शेष रह जाती है।

पिण्डाकाशस्थल का स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है कि जैसे आकाश के घटावच्छिन्न, मठावच्छिन्न होने पर भी उसकी पूर्णता अक्षुण्ण रहती है, उसी प्रकार इस पिण्ड में स्थित आत्मा की पूर्णता में कोई कमी नहीं होती। परमेश्वर पराकाश के समान है। वही प्राणियों के शरीर में स्थित हृदयगुहा में भी रहता है। योगी को चाहिये कि वह परमेश्वर और जीव का पराकाश एवं पिण्डाकाश के समान अभेद ध्यान करे। सदाशिवतत्त्व से लेकर पृथ्वी तक स्थित समस्त तत्त्वों का मूलकारण व्यापक परशिव है। उसका बिन्दु के रूप में ध्यान करना चाहिये। यही बिन्द्वाकाश है। यह आकाश और आत्मा दोनों एक सदृश हैं। आकाश से उत्पन्न वायु जैसे एक होता हुआ भी सर्वत्र सब रूपों में तत्तदाकार ग्रहण करने के बाद भी उनसे परे रहता है, वैसे ही परमेश्वर भी सर्व शरीरों में जीव रूप में स्थित होकर भी इनसे परे है। यही बिन्द्वाकाश है। जिस प्रकार पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड में स्थित दोनों आकाश परस्पर अभिन्न हैं, उसी प्रकार शिवयोगी के चेतन जीवात्मा से परमात्मा का कोई भेद नहीं है। इसको महाकाशस्थल कहा जाता है। परानन्दरूपिणी संवित् ही परमाकाश है। शरीरवच्छिन्न जीव भी वही है। सिन्धु और उसकी लहरों के समान परमात्मा, जीवात्मा तथा विश्व एक और अभिन्न है। भेद का भासन उपाधि के कारण होता है। जो चिदाकाशरूपी परिपूर्ण शिव का आत्मा के रूप में अनुसन्धान करता है, वह क्रियाप्रकाशनवान् होता है। ऐसी स्थिति में योगी की अन्य क्रियायें लुप्त हो जाती हैं– ऐसा नहीं है। उसके द्वारा सम्पद्यमान तथा अन्य समस्त जागतिक क्रियाओं को वह गन्धर्वनगरवत् तुच्छ समझता है। जिस प्रकार समुद्र से तरङ्ग आदि समुद्र से भिन्न नहीं होतीं, उसी प्रकार बुद्धि आदि भाव भी शिवयोगी के चैतन्य से भिन्न नहीं होते। वे शिवमय ही होते हैं। अज्ञानतिमिर के दूर होने पर योगी की समस्त क्रियायें शिवात्मक हो जाती हैं, सारे भाव शिवात्मक हो जाते हैं। इस ज्ञान के प्रकाशन में 'तत्त्वमसि' महावाक्य में जैसे भागत्याग-लक्षणा के द्वारा अखण्ड चैतन्य का बोध होता है, वैसे ही अखण्ड शिवता का भान होता है। शिवतत्त्व ज्ञान का विषय नहीं है, उसको आत्मा से अभिन्न समझना ही ज्ञान कहलाता है। यही अद्वैत ज्ञान मोक्ष का कारण होता है। उस समय संसार नहीं रहता है।

बीसवें परिच्छेद को ऐक्यस्थल नाम दिया गया है। इसके अन्तर्गत नवस्थलों की चर्चा की गयी है। वे हैं– स्वीकृतप्रसादैक्यस्थल, शिष्टोदनस्थल, चराचरलयस्थल, भाण्डस्थल, भाजनस्थल, अङ्गालेपस्थल, स्वपराज्ञास्थल, भावाभावविनाशनस्थल तथा ज्ञानशून्यस्थल।

ज्ञानप्रकाश से सम्पन्न योगी के अन्दर जब मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ दोनों का अभाव हो जाता है, जब वह पूर्णज्ञानप्रसाद वाला हो जाता है। वैसी स्थिति में वह प्रमाता-प्रमेय-प्रमाणरूप त्रिपुटी में समवायेन वर्तमान संवित् का साक्षात्कार करता हुआ स्वस्थ हो जाता है। पूर्णज्ञानी उस शिवयोगी को संसार सर्वत्र शिवमय दिखलाई देता है। तब योगी समस्त ऐन्द्रिय विषयों का चिदग्नि में होम कर निर्मल हो जाता है एवं परानन्दमय होकर विषयों का भोग करता है। माया को ओदन कहा गया है। जैसे चावल उदरस्थ होकर रक्त आदि के रूप में परिणत होकर नश्वर शरीर को पुष्ट करता है, वैसे माया भी इस संसार में नानारूपों में प्रकट होकर इसको पुष्ट करती है। जब वह चिल्लिङ्ग में लीन हो जाती है, तब उसे शिष्ट कहते हैं। माया संसारीजनों की स्वामिनी एवं योगीजनों की किङ्करी होती है, क्योंकि महात्मा शिवयोगी चित्स्वरूपज्योतिर्लिङ्ग में निमग्न रहता है। ऐसे योगी के द्वारा भुज्यमान विषय चिदात्मा में लीन हो जाते हैं। जैसे अग्नि इन्धन को जलाकर स्वयं स्वस्थ हो जाती है, ऐसे ही शिवयोगी देहधारी होता हुआ भी निर्देही हो जाता है और चराचरात्मक जगत् में स्थित मलशक्ति का विनाशक बन जाता है। जैसे जागने पर स्वप्न जगत् अदृश्य या नष्ट हो जाता है, वैसे ही आत्मप्रबोध होने पर सम्पूर्ण संसार नष्ट हो जाता है, अर्थात् तब योगी के लिये संसार वैसा नहीं रह जाता, जैसा सामान्य संसारीजनों के लिये होता है। वाणी और मन से परे तुरीयातीत अवस्था को प्राप्त योगी चिदानन्दमय शिव के अतिरिक्त कुछ नहीं जानता।

शिवयोगी के विचाररूप परबिन्दु का दूसरा नाम भाण्डस्थल है। यह परमशिव रूप योगी की विमर्शकला है, जिसमें समस्त विश्व मयूराण्डरसन्यायेन प्रच्छन्न रहता है। यही शब्दब्रह्म है। यही पराऽहन्तारूप विमर्श है। इस विमर्शरूपी भाण्ड में सम्पूर्ण विश्व को विलीन कर योगी मुक्त रहता है। निखिल ब्रह्माण्ड का कारणभूत विमर्श जिसमें भासित होता है, उस 'अहं' में अकार शिव है, हकार शक्ति है। इस प्रकार 'अहम्' पद में शिवशक्ति दोनों समरस होकर रहते हैं। इस अहन्ता में सम्पूर्ण विश्व वटबीज में निहित वृक्ष की भाँति अव्यक्त रहता हे। अहन्तामय योगी विश्वात्मा होकर भासित होता है। अङ्गालेप का अर्थ है। वह रूप जो देशकाल आदि से अवच्छिन्न न होते हुए चिदानन्दमय होता है। जैसे धूम आदि से आकाश लिप्त नहीं होता, वैसे ही योगी भी संसार से लिप्त नहीं होता। उसके लिये विधि-निषेध आदि कुछ भी नहीं रहते। वह योगी सर्वाकार होता हुआ जीवन्मुक्त रहता है।

स्वपराज्ञस्थल में अपने और पराये के अज्ञान की बात कही गयी है। शिवयोगी ज़ब अपने को अप्रमेय चिद्वैत तत्त्व में विलीन कर देता है, तो उसे स्व एवं पर का भान नहीं होता। वह विजातीय, सजातीय और स्वगत तीनों भेदों से शून्य हो जाता है। समस्त द्वन्द्वों

से परे उसको स्वपराज्ञस्थल कहते हैं। इस प्रकार जो 'त्वम्' और 'अहम्' के भाव से शून्य हो जाता है, वह भावाभाव के लय का स्थल हो जाता है। 'अहं' भाव और 'स्व' के भाव से रहित वह जीवन्मुक्त जब चित्स्वरूप हो जाता है, तब उसके लिये सुख-दुःख आदि का न भाव होता है न अभाव। जैसे घी में घी, तेल में तेल, दूध में दूध डालने पर पार्थक्य नहीं रहता, उसी प्रकार शिवयोगी और परब्रह्म में विभाग नहीं रहता। स्वयं विभाग का भी अस्तित्व नहीं रहता। केवल चिदानन्द रूप उस तत्त्व में विशेषण सम्भव नहीं होता। कार्य-करण, शेष-शेषी आदि समस्त सम्बन्ध शून्यता को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति ज्ञानशून्यस्थल कहा जाता है।

भगवान् शिव ने भगवती पार्वती को जिस अद्वैत आनन्द शिव धर्म का उपदेश दिया था, गणेश्वर रेणुकाचार्य ने महर्षि अगस्त्य को यह उपदेश सुनाकर मौन धारण कर लिया। तत्पश्चात् मुनि अगस्त्य ने कहा– हे शिवज्ञान के महासागर! आचार्य! आपके मुख से यह निर्मल शास्त्र अवतीर्ण हुआ। इसे सुनकर मेरा चित्त अतीव प्रसन्न हो गया। मैं शिवज्योति का साक्षात्कार कर रहा हूँ। तपस्या के प्रभाव एवं शङ्कर की कृपा से विना कौन इसको सुनने का अधिकारी हो सकता है। आप मुझे कृतकृत्य करने के लिये यहाँ आये, अतः मेरा जन्म सफल हो गया। मैं पाशबन्धन से मुक्त हो गया। मेरी तपस्यायें फलीभूत हो गयी। अगस्त्य के वचन को सुनकर रेणुकाचार्य ने कहा– मुनिशार्दूल! आपके अतिरिक्त दूसरा कौन शिवशास्त्र को जानने का अधिकारी हो सकता है। इस तन्त्र के आप एकमात्र अधिकारी हैं। शिवप्रबोध का ऐसा साधन अन्यत्र कहीं नहीं है। सर्वानुग्रह शिव ने लोकमङ्गल के लिए इसका प्रवचन किया। इसे आप शिष्यों की परीक्षा करने के बाद ही उन्हें दे। अपरीक्षित अयोग्य को कभी मत दीजिये। इस शास्त्र का आप भूतल पर प्रचार-प्रसार करिये।

उपर्युक्त प्रवचन कर अगस्त्य के देखते-देखते गणेश्वर रेणुक शिव का मन में ध्यान करते हुए अन्तर्हित हो गये। तत्पश्चात् स्वेच्छा से शरीर धारण करने वाले गणेश्वर रेणुक लङ्का में पहुँच गये। सर्वागमवेत्ता उन गणेश्वर को आया हुआ देखकर विभीषण उनको अपने महल में ले गये एवं भद्र आसन पर बैठाकर पाद्य, अर्घ्य आदि समस्त उच्च उपचारों से उनकी पूजा की। फिर विभीषण स्वयं उनके आसन के पास बैठ गये। विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा– हे गणनायक! आप शिव की आज्ञा से इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए, ऐसा मैंने सुना था। मेरे सौभाग्य से साक्षात् महेश्वररूप आप मेरे घर स्वयं पधारे। इस कारण मेरी नगरी लङ्का और मैं स्वयं कृतार्थ हो गये। ऐसा सुनकर गणेश्वर ने विभीषण से कहा– हे राक्षसेन्द्र! लोग आपको समस्त शास्त्र के तत्त्वज्ञ तथा परम धर्मपरायण कहते हैं। इसीलिये कैलास जाते समय मैं आपके पास आ गया। आप मुझसे

मनोवाञ्छित वर माँगिये। विभीषण ने कहा– हे भगवन्! सुकृत जब परिपक्व हो जाता है, तब वह स्वयं फल देता है फिर भी मुझे एक वर दीजिये। मेरे भाई रावण ने युद्ध में रामशर से आविद्ध होने पर मुझे बुलाया औरा कहा– हे विभीषण! मैंने इस लङ्का में नव करोड़ शिवलिङ्गों की स्थापना का सङ्कल्प किया था। छ करोड़ की तो मैंने स्थापना कर दी। शेष तीन करोड़ की स्थापना तुम करना। हे गणेश्वर! एक साथ इतने शिवलिङ्गों की स्थापना का विधान असम्भव जान कर मैं यहाँ चिन्ताग्रस्त था। आप मेरी इच्छा पूरी कीजिये। भगवान् रेणुक ने विभीषण की प्रार्थना के अनुसार तीन करोड़ शरीर धारण कर उसी क्षण तीन कोटि शिवलिङ्गों की स्थापना कर दी। विभीषण उन गणेश्वर का ऐसा माहात्म्य देखकर विस्मित हो उनके चरणों में नत मस्तक हो गये और रेणुकाचार्य उनको अनुगृहीत कर अन्तर्हित हो गये।

पृथ्वीमण्डल पर इधर-उधर घूमते हुए तथा लोगों का कल्याण करते हुए रेणुक कोल्लिपाक्य नामक अपने पुर में आ गये। वहाँ लोगों के द्वारा पूजित होकर वे सोमेश्वर मन्दिर में आये और भक्तिपूर्वक शिव की स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् ने अपने उसी लिङ्ग से शब्द उच्चरित किये– 'हे वत्स! आओ। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ।' ऐसा सुनकर गणेश्वर रेणुक ज्योतिःस्वरूप होकर सोमेश्वर लिङ्ग में समाविष्ट हो गये।

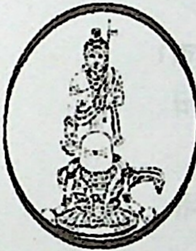
***

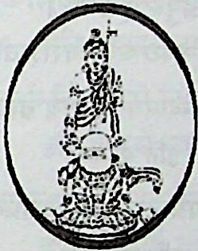
विषयानुक्रमणिका



॥ श्री जगद्गुरु पंचाचार्याः प्रसीदन्तु ॥











ॐ नमः पञ्चाचार्येभ्यो नमः
नमः पञ्चाननमुखोद्भूतेभ्यो नमः
नमः पञ्चसूत्रकर्तृभ्यो नमः
नमः पञ्चाक्षरमनुस्वरूपेभ्यो नमः
नमः शिवाद्वैतविद्यासम्प्रदायकर्तृभ्यो नमः
नमः वीरशैवमहामतसंस्थापकेभ्यो नमः
नमो जगद्गुरुभ्यः॥

।। अथ श्रीसिद्धान्तशिखामणि न्यासादिः ।।

अथ ऋष्यादिन्यासः

अस्य श्रीसिद्धान्तशिखामणिशास्त्रमहामन्त्रस्य
भगवान् श्रीशिवयोगि शिवाचार्य ऋषिः।
अनुष्टुप् छन्दः।
श्री सच्चिदानन्दस्वरूपः परशिवो देवता।

सच्चिदानन्दरूपाय शिवाय ब्रह्मणे नम
इति बीजम्।

अमृतार्थं प्रपन्नानां या सुविद्याप्रदायिनी
इति शक्तिः।

शिवज्ञानकरं वक्ष्ये सिद्धान्तं श्रुणु सादरम्
इति कीलकम्।



अथ करन्यासः

एक एव शिवस्साक्षाच्चिदानन्दमयो विभु
इति अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।

निर्विकल्पो निराकारो निर्गुणो निष्प्रपञ्चक
इति तर्जनीभ्यां नमः।

अनाद्यविद्यासम्बन्धात्तदंशो जीवनामक
इति मध्यमाभ्यां नमः।

देवतिर्यङ्मनुष्यादिजातिभेदे व्यवस्थित
इति अनामिकाभ्यां नमः।

मायी महेश्वरस्तेषां प्रेरको हृदि संस्थित

इति कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

बीजे यथाऽङ्कुरः सिद्धस्तथाऽत्मनि शिवः स्थित

इति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।



अथ अंगन्यासः

एक एव शिवस्साक्षाच्चिदानन्दमयो विभु

इति हृदयाय नमः।

निर्विकल्पो निराकारो निर्गुणो निष्प्रपञ्चक

इति शिरसे स्वाहा।

अनाद्यविद्यासम्बन्धात्तदंशो जीवनामक

इति शिखायै वषट्।

देवतिर्यङ्मनुष्यादिजातिभेदे व्यवस्थित

इति कवचाय हुम्।

मायी महेश्वरस्तेषां प्रेरको हृदि संस्थित

इति नेत्रत्रयाय वौषट्।

बीजे यथाऽङ्कुरः सिद्धस्तथाऽत्मनि शिवः स्थित

इति अस्त्राय फट्।

श्रीशिवप्रीत्यर्थे श्रीसिद्धान्तशिखामणिपाठे विनियोगः।



।। अथ श्रीसिद्धान्तशिखामणिध्यानम् ।।

स्वस्ति श्रीगणनायकेन मुनयेऽगस्त्याय तत्त्वार्थिने
शिष्याय प्रतिबोधिते भगवता श्रीरेणुकेन स्वयम्।
तात! त्वं शिवयोगिवर्यसुकृतिर्मे मानसे मन्दिरे
श्रीसिद्धान्तशिखामणे वस सदा ज्ञानप्रदीपो भव।।१।।

शरणागतदीनार्तपरित्राणैकहेतवे ।
श्रीरेणुकगणेशाय ज्ञानमुद्राय ते नमः।।२।।

अगस्त्यसंशयव्रातमहाध्वान्तांशुमालिनम् ।
वन्दे शिवसुतं देवं रेणुकाख्यं जगद्गुरुम्।।३।।

नमः शिवाचार्यवराय तुभ्यं श्रीवीरशैवागमसागराय।
विनाऽपि तैलं भवताऽत्र येन प्रज्वालितो ज्ञानमणिप्रदीपः।।४।।

यस्मिन्नागमशास्त्रतत्त्वमखिलं सम्यक् च संसूचितं
भक्तैर्वाञ्छितभुक्तिमुक्तिफलदं यत्कल्पवृक्षात्मकम्।
तं शैवागमसम्मतं निगमविद् विद्वद्भिरासेवितं
श्रीसिद्धान्तशिखामणिं प्रतिदिनं ध्यायेत् सदा सादरम्।।५।।

पूज्यश्रीशिवयोगिवर्यरचितं सिद्धान्तरत्नाकरं
सूक्ष्मं धार्मिकतात्त्विकस्थलयुतं चैकाधिकं तत् शतम्।
त्रैलोक्यं पदमादिमं परपदं सर्वान्तिमे योजितं
श्रीसिद्धान्तशिखामणिं दिनदिनं ध्यायेत् सदा शांतिदम्।।६।।



।। अथ श्रीसिद्धान्तशिखामणिमाहात्म्यम् ।।

यः पठेत् प्रयतो नित्यं श्रीसिद्धान्तशिखामणिम्।
शिवसायुज्यमाप्नोति भयशोकादिवर्जितः ।।१।।

सदाऽध्ययनशीलस्य श्रीसिद्धान्तशिखामणेः।
क्षीयन्ते सर्वपापानि पूर्वजन्मकृतानि च ।।२।।

जलस्नानाद् वरं पुंसां श्रीसिद्धान्तशिखामणौ।
ज्ञानार्णवे सदा स्नानं संसारमलनाशनम् ।।३।।

श्रीरेणुकगणाध्यक्षमुखपद्माद्विनिःसृतः ।
कण्ठपीठे सदा धार्यः श्रीसिद्धान्तशिखामणिः ।।४।।

श्रीरेणुकगणाध्यक्षवचनामृतसागरम् ।
पायं पायं सदा पुंसां पुनर्जन्म न विद्यते ।।५।।

सर्वागमव्रजोगावस्तासां दोग्धा च रेणुकः।
वत्सोऽगस्त्यः सुधीर्भोक्ता दुग्धं शिखामणिर्महान् ।।६।।

एकं शास्त्रं श्रीशिवाद्वैतसंज्ञम्
एको देवः श्रीमहादेव एव।
एको मन्त्रः शैवपञ्चाक्षरोऽयम्
कर्माप्येकं इष्टलिङ्गार्चनं हि ।।७।।

।। अथ फलश्रुतिः ।।

श्रीवेदागमवीरशैवसरणिं श्रीषट्स्थलोद्यन्मणिं
श्रीजीवेश्वरयोगपद्मतरणिं श्रीगोप्यचिन्तामणिम्।
श्रीसिद्धान्तशिखामणिं लिखयिता यस्तं लिखित्वा परान्
श्रुत्वा श्रावयिता स याति विमलां भुक्तिं च मुक्तिं पराम् ।।



श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचितः

श्रीसिद्धान्तशिखामणिः

प्रथमः परिच्छेदः

शिवस्तुति

त्रैलोक्य सम्पदालेख्य समुल्लेखनभित्तये ।
सच्चिदानन्दरूपाय शिवाय ब्रह्मणे नमः।।१।।

भावार्थ : त्रैलोक्यरूपी सम्पत्ति के लेख के चित्रण के आधार, सच्चिदानन्दरूप व्यापक शिव को नमस्कार है ।।१।।

ब्रह्मेति व्यपदेशस्य विषयं यं प्रचक्षते।
वेदान्तिनो जगन्मूलं तं नमामि परं शिवम्।।२।।

भावार्थ : वेदान्ती लोग जिसको 'ब्रह्म' व्यवहार का विषय बतलाते हैं, संसार के मूल उस परमशिव को मैं प्रणाम करता हूँ ।।२।।

यस्योर्मिबुद्बुदाभासः षट्त्रिंशत्तत्त्वसञ्चयः।
निर्मलं शिवनामानं तं वन्दे चिन्महोदधिम्।।३।।

भावार्थ : छत्तीस तत्त्वों का समूह जिसकी लहर बुदबुद तथा आभास है शिव नामक उस निर्मल चित्सिन्धु की मैं वन्दना करता हूँ ।।३।।

यद्भासा भासते विश्वं यत्सुखेनानुमोदते।
नमस्तस्मै गुणातीतविभवाय परात्मने।।४।।

भावार्थ : जिसके प्रकाश से विश्व प्रकाशित होता है, जिसके आनन्द से यह आनन्दित होता है, गुणों से परे तथा वैभव सम्पन्न उस परमात्मा को नमस्कार है ।।४।।

सदाशिवमुखाशेषतत्त्वोन्मेषविधायिने ।
निष्कलङ्कस्वभावाय नमः शान्ताय शम्भवे।।५।।

भावार्थ : सदाशिव से लेकर पृथिवी पर्यन्त समस्त तत्त्वों के उन्मेषकर्त्ता, निष्कलङ्क स्वभाव वाले शान्त शम्भु को नमस्कार है ।।५।।

स्वेच्छाविग्रहयुक्ताय स्वेच्छावर्तनवर्तिने।
स्वेच्छाकृतत्रिलोकाय नमः साम्बाय शम्भवे।।६।।

भावार्थ : अपनी इच्छा से शरीर धारण करने वाले, अपनी इच्छा से ही व्यवहार करने वाले तथा अपनी हीं इच्छाशक्ति से त्रैलोक्य की रचना करने वाले मातासहित शिव को नमस्कार है ।।६।।

यत्र विश्राम्यतीशत्वं स्वाभाविकमनुत्तमम्।
नमस्तस्मै महेशाय महादेवाय शूलिने।।७।।

भावार्थ : जिसमें ऐश्वर्य की पराकाष्ठा है, जो स्वभावत: सर्वोत्तम है त्रिशूलधारी उस महादेव महेश को नमस्कार है ।।७।।

शक्तिस्तुतिः

यामाहुः सर्वलोकानां प्रकृतिं शास्त्रपारगाः।
तां धर्मचारिणीं शम्भोः प्रणमामि परां शिवाम्।।८।।

भावार्थ : शास्त्रों के पारङ्गत विद्वान् जिसको समस्त लोकों का मूल कारण मानते हैं शिव की धर्मपत्नी उस परा शिवा को मैं प्रणाम करता हूँ ।।८।।

यया महेश्वरः शम्भुर्नामरूपादिसंयुतः।
तस्यै मायास्वरूपायै नमः परमशक्तये।।९।।

भावार्थ : जिसके कारण महेश्वर नाम रूप आदि (= गुण संख्या परिणाम आदि) से युक्त होकर शम्भु बतलाये जाते हैं अथवा जिसके कारण नाम रूप आदि से युक्त शम्भु महेश्वर बतलाये जाते हैं। मायास्वरूपा उस परम शक्ति को नमस्कार है ।।९।।

शिवाद्यादिसमुत्पन्नशान्त्यतीतपरोत्तराम् ।
मातरं तां समस्तानां वन्दे शिवकरीं शिवाम्।।१०।।

भावार्थ : जो शिव से सर्वप्रथम उत्पन्न हुई तथा शन्यतीता कला से भी परा तथा उत्तर है समस्त कलाओं अथवा समस्त सृष्टि की माता मङ्गलकारिणी उस शिवा की मैं वन्दना करता हूँ ।।१०।।

इच्छाज्ञानादिरूपेण या शम्भोर्विश्वभाविनी।
वन्दे तां परमानन्दप्रबोधलहरीं शिवाम्।।११।।

भावार्थ : जो शिव की इच्छा ज्ञान आदि (= क्रिया) रूप से विश्व की प्रकाशिका है परमानन्द प्रबोध की लहररूपा उस शिवा की मैं वन्दना करता हूँ ।।११।।

अमृतार्थं प्रपन्नानां या सुविद्याप्रदायिनी।
अहर्निशमहं वन्दे तामीशानमनोरमाम्।।१२।।

भावार्थ : अमरत्व के लिये शरण में आये हुए भक्त जनों को जो सद्विद्या देने वाली बतलायी गयी है ईशान की मनोरमा उस शिवानी की मैं रात दिन वन्दना करता हूँ ।।१२।।

ग्रंथकार का वंशवर्णन

कश्चिदाचारसिद्धानामग्रणीः शिवयोगिनाम्।
शिवयोगीति विख्यातः शिवज्ञानमहोदधिः।।१३।।

भावार्थ : आचारसिद्धों शिवयोगियों में अग्रणी शिव ज्ञान के सागर कोई शिवयोगी प्रसिद्ध थे ।।१३।।

शिवभक्तिसुधासिन्धुजृम्भणामलचन्द्रिका।
भारती यस्य विदधे प्रायः कुवलयोत्सवम्।।१४।।

भावार्थ : जिनकी शिवभक्तिरूपी सुधा के समुद्र के जृम्भण अर्थात् आनन्दोच्छलन के लिये चन्द्रिका के समान वाणी प्रायः कुवलयोत्सव (= कु = पृथिवी के वलय का उत्सव अथवा कुवलय अर्थात् कमल का उत्सव) करती थी ।।१४।।

तस्य वंशे समुत्पन्नो मुक्तामणिरिवामलः।
मुद्ददेवाभिधाचार्यो मूर्धन्यः शिवयोगिनाम्।।१५।।

भावार्थ : उनके वंश में निर्मल मुक्तामणि के समान मुद्ददेव नामक आचार्य उत्पन्न हुए जो शिवयोगियों में मूर्धन्य थे ।।१५।।

मुद्दानात्सर्वजन्तूनां प्रणतानां प्रबोधतः।
मुद्ददेवेति विख्याता समाख्या यस्य विश्रुता।।१६।।

भावार्थ : शरणागत समस्त जीवों को आनन्द देने तथा प्रणत जनों को प्रबुद्ध करने के कारण उनका मुद्ददेव नाम प्रसिद्ध हुआ ।।१६।।

तस्यासीन्नन्दनः शान्तः सिद्धनाथाभिधः शुचिः।
शिवसिद्धान्तनिर्णेता शिवाचार्यः शिवात्मकः।।१७।।

भावार्थ : उनके सिद्धनाथ नामक पुत्र हुए जो शिवात्मक एवं शिवसिद्धान्त के निर्णायक शिवाचार्य थे ।।१७।।

वीरशैवशिखारत्नं विशिष्टाचारसम्पदम्।
शिवज्ञानमहासिन्धुं यं प्रशंसन्ति देशिकाः।।१८।।

भावार्थ : आचार्यगण जिनकी प्रशंसा वीरशैवचुडामणि, विशिष्ट आचार से सम्पन्न तथा शिवज्ञान महासिन्धु के रूप में किया करते थे ॥१८॥

यस्याचार्यकुलाज्जाता सतामाचारमातृका।
शिवभक्तिः स्थिरा यस्मिन् जज्ञे विगतविप्लवा।।१९।।

भावार्थ : जिसके आचार्यकुल में उत्पन्न तथा सज्जनों के आचार की जननी शिवभक्ति उपद्रवरहित होकर जिसमें स्थित हो गयी ॥१९॥

तस्य वीरशिवाचार्यशिखारत्नस्य नन्दनः।
अभवच्छिवयोगीति सिन्धोरिव सुधाकरः।।२०।।

भावार्थ : वीरशैव शिवाचार्यों के मुकुटमणि के रूप विद्यमान उस सिद्धनाथ को समुद्र से चन्द्रमा की भाँति शिवयोगी नामक पुत्र हुये ॥२०॥

चिदानन्दपराकाशशिवानुभवयोगतः ।
शिवयोगीति नामोक्तिर्यस्य याथार्थ्ययोगिनी।।२१।।

भावार्थ : चिदानन्दसंवलित पराकाशरूपी शिवतत्त्व के अनुभव से युक्त होने के कारण जिसका 'शिवयोगी' नाम उनके अर्थ के अनुरूप ही था ॥२१॥

शिवागमपरिज्ञानपरिपाकसुगन्धिना ।
यदीयकीर्तिपुष्पेण वासितं हरितां मुखम्।।२२।।

भावार्थ : शैवागम के परिपूर्ण ज्ञान के परिपूर्ण पाक से सुगन्धयुक्त जिसकी कीर्त्तिरूपी पुष्प से सभी दिशाओं का मुख सदा वासित (= सुगन्धित) होता रहता था ॥२२॥

येन रक्षावती जाता शिवभक्तिः सनातनी।
बौद्धादिप्रतिसिद्धान्तमहाध्वांतांशुमालिना।।२३।।

भावार्थ : बौद्धों आदि के प्रतिकूल सिद्धान्त रूपी महा अन्धकार के लिये सूर्य के समान जिसके द्वारा सनातनी शिवभक्ति की रक्षा हुई ॥२३॥

स महावीरशैवानां धर्ममार्गप्रवर्तकः।
शिवतत्त्वपरिज्ञानचन्द्रिकावृतचन्द्रमाः ।।२४।।

भावार्थ : शिवतत्त्व के परिपूर्ण ज्ञानरूपी चन्द्रिका से आवृत वे शिवयोगी महावीरशैवों के धर्ममार्ग के प्रवर्त्तक हुए ॥२४॥

आलोक्य शैवतन्त्राणि कामिकाद्यानि सादरम्।
वातुलान्तानि शैवानि पुराणान्यखिलानि तु।।२५।।

भावार्थ : उन्होंने कामिक से लेकर वातुलान्त शैवतन्त्रों समस्त शैव-पुराणों का आदर के साथ अध्ययन कर वीरशैव महातन्त्र की रचना की ॥२५॥

वेदमार्गाविरोधेन विशिष्टाचारसिद्धये।
असन्मार्गनिरासाय प्रमोदाय विवेकिनाम्।।२६।।

भावार्थ : यह रचना वैदिक मार्ग का विरोध न करती हुई विशिष्ट आचार की सिद्धि, असत् मार्ग को दूर करने तथा ज्ञानी जनों के प्रमोद, के लिये की गयी ॥२६॥

सर्वस्वं वीरशैवानां सकलार्थप्रकाशनम्।
अस्पृष्टमखिलैर्दोषैरादृतं शुद्धमानसैः।।२७।।

भावार्थ : वीरशैवों के सर्वस्व, समस्त तत्त्वों के प्रकाशक तथा सम्पूर्ण दोषों से रहित इस ग्रन्थ का शुद्ध अन्तःकरण वाले विद्वानों ने आदर किया ॥२७॥

तेष्वागमेषु सर्वेषु पुराणेष्वखिलेषु च।
पुरा देवेन कथितं देव्यै तन्नन्दनाय च।।२८।।

भावार्थ : प्राचीन काल में समस्त आगमों तथा सम्पूर्ण पुराणों में वर्णित इस सिद्धान्त को भगवान् शिव ने देवी पार्वती और उनके पुत्र (= कार्त्तिकेय) को बतलाया ॥२८॥

तत्सम्प्रदायसिद्धेन रेणुकेन महात्मना।
गणेश्वरेण कथितमगस्त्याय पुनः क्षितौ।।२९।।

भावार्थ : उस शिव सम्प्रदाय में प्रसिद्ध महिमाशाली गणेशवर रेणुक ने इस शास्त्र को पृथिवी पर महर्षि अगस्त्य को बतलया ॥२९॥

वीरशैवमहातन्त्रमेकोत्तरशतस्थलम् ।
अनुग्रहाय लोकानामभ्यधात् सुधियां वरः।।३०।।

भावार्थ : मनीषियों में श्रेष्ठ शिवयोगी शिवाचार्य ने एक सौ एक स्थल (= विषय) वाले वीरशैव महातन्त्र का मनुष्यों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये वर्णन किया ॥३०॥

सर्वेषां शैवतन्त्राणामुत्तरत्वान्निरुत्तरम्।
नाम्ना प्रतीयते लोके यत्सिद्धान्तशिखामणिः।।३१।।

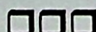
भावार्थ : समस्त शैव तन्त्रों का उत्तर अर्थात् अन्तिम होने के कारण निरुत्तर यह ग्रन्थ लोक में सिद्धान्तशिखामणि के नाम से प्रसिद्ध है। शिखा के ऊपर कोई अङ्ग नहीं होता और उसमें निबद्ध मणि सर्वोपरि होती है उसी प्रकार यह ग्रन्थ वीरशैव सिद्धान्त की चर्चा करने वाला सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है ।।३१।।

अनुगतसकलार्थे शैवतन्त्रैः समस्तैः
प्रकटितशिवबोधाद्वैतभावप्रसादे ।
विदधतु मतिमस्मिन् वीरशैवा विशिष्टाः
पशुपतिमतसारे पण्डितश्लाघनीये।।३२।।

भावार्थ : हे विशिष्ट वीरशैव लोग! समस्त शैवतन्त्रों के तत्त्व को अपने में समाहित रखने वाले शिव ज्ञान के अद्वैत भाव के आनन्द को प्रकट करने वाले पाशुपत मत के सारभूत तथा पण्डितों के द्वारा श्लाघनीय इस ग्रन्थ के अध्ययन के विषय में अपना मन लगाइये ।।३२।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ मङ्गलाचरण-श्रीशिवयोगिशिवाचार्य वंशवर्णनं नाम प्रथमः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के मंगलाचरण एवं शिवयोगि शिवाचार्य वंशवर्णन नामक प्रथम परिच्छेद की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदिकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।१।।



द्वितीय: परिच्छेद:

शिव-परब्रह्म का निरूपण

सच्चिदानन्दरूपाय सदसद्व्यक्तिहेतवे।
नम: शिवाय साम्बाय सगणाय स्वयम्भुवे।।१।।

भावार्थ : सच्चिदानन्दरूप सत् अर्थात् भाव अर्थात् पारमेश्वर स्वरूप तथा असत् अर्थात् अभाव अर्थात् जाग्रत स्वप्न प्रपञ्च अथवा प्रतिभासिक एवं व्यावहारिक प्रपञ्च की अभिव्यक्ति का कारण, स्वयम्भू गणों के सहित, साम्ब शिव को मैं नकस्कार करता हूँ ।।१।।

सदाशिवमुखाशेषतत्त्वमौक्तिकशुक्तिकाम्।
वन्दे माहेश्वरीं शक्तिं महामायादिरूपिणीम्।।२।।

भावार्थ : सदाशिव तत्त्व से पृथिवी तक समस्त तत्त्वरूपी मोतियों की शुक्तिस्वरूप महामाया आदि रूप महेश्वर की शक्ति की मैं वन्दना करता हूँ ।।२।।

अस्ति सच्चित्सुखाकारमलक्षणपदास्पदम्।
निर्विकल्पं निराकारं निरस्ताशेषविप्लवम्।।३।।

भावार्थ : (पर ब्रह्म) सत् चित् आनन्द रूप, लक्षणरहित, निर्विकल्प, निराकार और समस्त उपद्रव को निरस्त करने वाला परशिव ब्रह्म है ।।३।।

परिच्छेदकथाशून्यं प्रपञ्चातीतवैभवम्।
प्रत्यक्षादिप्रमाणानामगोचरपदे स्थितम्।।४।।

भावार्थ : वह ब्रह्म परिसीमन की वार्त्ता से रहित, प्रपञ्च से परे, वैभव वाला तथा प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाणों का अविषय है? क्योंकि अनुमान आदि प्रमाण भी प्रत्यक्षमूलक एवं परिच्छिन्न होते हैं ।।४।।

स्वप्रकाशविराजन्तमनामयमनौपमम् ।
सर्वज्ञं सर्वगं शान्तं सर्वशक्ति निरङ्कुशम्।।५।।

भावार्थ : वह स्वप्रकाश, विशेष रूप से दीप्यमान, निर्मल, निरूपमेय, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, शान्त, सर्वशक्ति सम्पन्न तथा स्वतन्त्र है ।।५।।

शिवरुद्रमहादेवभवादिपदसंज्ञितम् ।
अद्वितीयमनिर्देश्यं परं ब्रह्म सनातनम्।।६।।

भावार्थ : वह पर ब्रह्म शिव, रुद्र, महादेव, भव आदि पदों से ज्ञेय अद्वितीय अनिर्देश्य और सनातन है ।।६।।

तत्र लीनमभूत् पूर्वं चेतनाचेतनं जगत्।
स्वात्मलीनं जगत्कार्यं स्वप्रकाश्यं तदद्भुतम्।।७।।

भावार्थ : सृष्टि के पहले यह जड़ चेतन जगत् उसमें लीन था। यह जगत्रूपी अद्भुत कार्य स्वात्म अर्थात् परब्रह्म में लीन होता हुआ स्वप्रकाश्य अर्थात् स्वयं परब्रह्म के द्वारा प्रकाश्य है ।।७।।

शिवाभिधं परं ब्रह्म जगन्निर्मातुमिच्छया।
स्वरूपमादधे किञ्चित्सुखस्फूर्तिविजृम्भितम्।।८।।

भावार्थ : शिव नामक यह परब्रह्म जगत् रचना की इच्छा से किञ्चित् आनन्दमिश्रित उल्लास से युक्त स्वरूप के धारण किया ।।८।।

निरस्तदोषसम्बन्धं. निरुपाधिकमव्ययम्।
दिव्यमप्राकृतं नित्यं नीलकण्ठं त्रिलोचनम्।।९।।

भावार्थ : वह स्वरूप दोषों से असम्बद्ध उपाधिरहित, नाशरहित अर्थात् नित्य दिव्य अप्राकृत नीलकण्ठ और त्रिलोचन था ।।९।।

चन्द्रार्धशेखरं शुद्धं शुद्धस्फटिकसन्निभम्।
शुद्धमुक्ताफलाभासमुपास्यं गुणमूर्तिभिः।।१०।।

भावार्थ : मस्तक पर अर्धचन्द्र वाला, शुद्ध स्फटिक के समान स्वच्छ एवं देदीप्यमान, शुद्ध मोती जैसा तथा गुणमूर्त्तियों अर्थात् तीन मूर्त्तियों (= ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र) के द्वारा उपास्य था ।।१०।।

विशुद्धज्ञानकरणं विषयं सर्वयोगिनाम्।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसमप्रभम्।।११।।
अप्राकृतगुणाधारमनन्तमहिमास्पदम् ।

भावार्थ : विशुद्ध ज्ञान का असाधारण कारण, समस्त योगियों के ध्यान का विषय, करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान, करोड़ों चन्द्रमा के समान कान्ति वाला, प्राकृतिक गुणों से भिन्न, सर्वज्ञता तृप्ति अनादि बोध आदि गुणों का आधार तथा अनन्त महिमा वाला था ।।११।।

तदीया परमा शक्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा।।१२।।
समस्तलोकनिर्माणसमवायस्वरूपिणी।
तदिच्छयाऽभवत् साक्षात्तत्स्वरूपानुसारिणी।।१३।।

भावार्थ : उसकी सत् चित् आनन्द लक्षणों वाली परमा शक्ति जो कि समस्त लोक निर्माण की समवायरूपा है, उसकी इच्छा से उसके स्वरूप जैसी हो गयी ॥१३॥

विमर्श : परमेश्वर की शक्ति अपने मूल रूप में क्रम रहित होती हुई सर्वप्रथम मयूराण्डरसन्यायेन संसार को अपने अन्दर अपने से अभिन्न रूप में धारण करती है। तत्पश्चात् जिस प्रकार पत्र पुष्प फल शाखा आदि के पृथक् पृथक् होने पर भी 'अयमेको वृक्षः' यह स्थिति होती है उसी प्रकार वह इस विश्व को अनेक विध होते हुए भी एक रूप में प्रकाशित करती है। इसके बाद स्वेच्छा से ही कछुये के द्वारा अपने अङ्गों की भाँति इस संसार का अपने अन्दर संहरण कर लेती है। यह सब परमेश्वर अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति से करते हैं। उनकी शक्ति लौकिक दृष्टि से असम्भव को भी सम्भव बनाने वाली है।

स शम्भुर्भगवान् देवः सर्वज्ञः सर्वशक्तिमान्।
जगत्सिसृक्षुः प्रथमं ब्रह्माणं सर्वदेहिनाम्।।
कर्तारं सर्वलोकानां विदधे विश्वनायकः।।१४।।

भावार्थ : विश्वविनायक भगवान् सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् वे शम्भु संसार की रचना करने की इच्छा से युक्त होकर सबसे पहले समस्त लोकों के समस्त जीवों के कर्त्ता ब्रह्म की रचना की ॥१४॥

तस्मै प्रथमपुत्राय शङ्करः शक्तिमान् विभुः।
सर्वज्ञः सकला विद्याः सानुग्रहमुपादिशत्।।१५।।

भावार्थ : सर्वज्ञ शक्तिमान् तथा व्यापक भगवान् शङ्कर ने अपने उस प्रथम पुत्र को समस्त विद्याओं का अनुग्रहपूर्वक उपदेश किया ॥१५॥

प्राप्तविद्यो महादेवाद् ब्रह्मा विश्वनियामकात्
समस्तलोकान्निर्मातुं　　समुद्यमपरोऽभवत्।
कृतोद्योगोऽपि निर्माणे जगतां शङ्कराज्ञया
अज्ञातोपायसम्पत्तेरभवन्माययाऽऽवृतः।।१६।।

भावार्थ : विश्वनियामक महादेव से विद्या प्राप्त करने वाले ब्रह्मा समस्त लोकों की रचना करने में लग गये। शङ्कर की आज्ञा से संसार के निर्माण में प्रयत्न करने पर भी उपायों को न जानने के कारण वे माया से आवृत अर्थात् किङ्कर्त्तव्यविमूढ हो गये ॥१६॥

विधातुमखिलाँल्लोकानुपायं प्राप्तुमिच्छया।
पुनस्तं प्रार्थयामास देवदेवं त्रियम्बकम्।।१७।।

भावार्थ : समस्त लोकों की रचना के लिये उपाय प्राप्त करने की इच्छा से ब्रह्मा ने पुन: उस देवाधिदेव त्रिलोचन से प्रार्थना की ।।१७।।

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते करुणाकर।
अस्मदादिजगत्सर्वनिर्माणनविधिक्षम ।।१८।।

उपायं वद मे शम्भो जगत्स्रष्ट: जगत्पते ।
सर्वज्ञ: सर्वशक्तिस्त्वं सर्वकर्ता सनातन:।।१९।।

भावार्थ : अब उनके द्वारा की गयी प्रार्थना का प्रकार बतलाते हैं— हे देवदेवेश ! आपको नमस्कार है । हे करुणाकर ! हमसे लेकर समस्त जगत् की सृष्टि में सक्षम आपको नमस्कार है ।।१८।।

हे शम्भो ! हे संसार के स्वामी ! मुझे उपाय बतलाइये, क्योंकि आप सर्वज्ञाता सर्वशक्तिमान् सर्वकर्त्ता और सनात है ।।१९।।

'सर्वज्ञ' इत्यादि जो विशेषण है वह यहाँ उपाय के कथन में कारण हैं ।

इति संप्रार्थित: शम्भुर्ब्रह्मणा विश्वनायक:।
उपायमवदत् तस्मै लोकसृष्टिप्रवर्तनम्।।२०।।

उपायमीश्वरेणोक्तं लब्ध्वाऽपि चतुरानन:।
न समर्थोऽभवत् कर्तुं नानारूपमिदं जगत्।।२१।।

भावार्थ : इस प्रकार ब्रह्मा से प्रार्थना किये गये विश्वनायक शिव ने उनको लोकसृष्टि प्रवर्त्तक उपाय बतलाया ।।२०।।

ईश्वर के द्वारा बतलाये गये उपाय को प्राप्त कर भी चतुरानन ब्रह्मा नाना रूप वाले इस संसार की रचना करने में समर्थ नहीं हुए ।।२१।।

पुनस्तं प्रार्थयामास ब्रह्मा विह्वलमानस:।
देवदेव महादेव जगत्प्रथमकारण।।२२।।

नमस्ते सच्चिदानन्द स्वेच्छाविग्रहराजित।
भव शर्व महेशान सर्वकारणकारण।।२३।।

भवदुक्तो ह्युपायो मे न किञ्चिज्ज्ञायतेऽधुना।

भावार्थ : अब उसके प्रकार को बतलाते है— इसके पश्चात् व्याकुल चित्त वाले ब्रह्मा ने पुनः उन शिव से प्रार्थना की— हे देवाधिदेव महादेव ! संसार के प्रथम कारण आपको नमस्कार है ॥२२॥

हे सच्चिदानन्द ! स्वेच्छा से शरीर धारण करने वाले, भव शर्व महेश्वर सब कारणों के कारण आपके द्वारा बतलाया गया उपाय मेरी समझ में कुछ नहीं आता ॥२३-२४॥

सृष्टिं विधेहि भगवन् प्रथमं परमेश्वर।
ज्ञातोपायस्ततः कुर्यां जगत्सृष्टिमुमापते।।२४।।

भावार्थ : हे परमेश्वर ! हे भगवन् ! पहले आप सृष्टि करिये । हे उमापते ! उसके बाद उपाय जानकर मैं संसार की रचना करूँगा ॥२४॥

इत्येवं प्रार्थितः शम्भुर्ब्रह्मणा विश्वयोनिना।
ससर्जात्मसमप्रख्यान् सर्वगान् सर्वशक्तिकान्।।२५।।
प्रबोधपरमानन्दपरिवाहितमानसान् ।
प्रमथान् विश्वनिर्माणप्रलयापादनक्षमान्।।२६।।

भावार्थ : विश्व के कारणभूत ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये गये भगवान् शिव ने अपने समान शोभा वाले प्रथम गणों को उत्पन्न किया। वे सब सर्वगामी, सर्वशक्तिमान्, प्रबोधजनित, परमआनन्द से परिपूर्ण चित्त वाले तथा विश्व की रचना में समर्थ थे ॥२५-२६॥

तेषु प्रमथवर्गेषु सृष्टेषु परमात्मना ।
रेणुको दारुकश्चेति द्वावभूतां शिवप्रियौ: ।।२७।।

भावार्थ : परमात्मा शिव के द्वारा बनाये गये उन प्रमथगणों में रेणुक और दारुक ये दोनों शिव के प्रिय हुए ॥२७॥

सर्वविद्याविशेषज्ञौ सर्वकार्यविचक्षणौ।
मायामलविनिर्मुक्तौ महिमातिशयोज्ज्वलौ।।२८।।

भावार्थ : अब उन दोनों गणेश्वरों की महिमा का पाँच श्लोकों से वर्णन करते हैं— ये दोनों समस्त विद्याओं में पारङ्गत, सकलकार्य सम्पादन में कुशल, मायीय मल से रहित अतएव अपने महिमा से अत्यन्त ऊर्जस्वल थे ॥२८॥

आत्मानन्दपरिस्फूर्तिरसास्वादनलम्पटौ।
शिवतत्त्वपरिज्ञानतिरस्कृतभवामयौ।।२९।।

भावार्थ : आत्मानन्द के परिस्फुरण से जन्य रसास्वाद वाले तथा शिवतत्त्व के परिपूर्ण ज्ञान के कारण संसार रूपी आमय अर्थात् जनन-मरण रूपी रोग से परे थे ।।२९।।

नानापथमहाशैवतन्त्रनिर्वाहतत्परौ ।
वेदान्तसारसर्वस्वविवेचनविचक्षणौ ।।३०।।

भावार्थ : अनेक मार्ग वाले शिवाद्वय तन्त्र के परिपालन में तत्पर तथा वेदान्त सार के सर्वस्व की विवेचना करने में तत्पर थे ।।३०।।

नित्यसिद्धौ निरातङ्कौ निरङ्कुशपराक्रमौ।
तादृशौ तौ महाभागौ संवीक्ष्य परमेश्वरः।।३१।।

समर्थौ सर्वकार्येषु विश्वासपरमाश्रितौ।
अन्तःपुरद्वारपालौ निर्ममे नियतौ विभुः।।३२।।

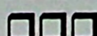
भावार्थ : नित्यसिद्ध आतङ्करहित अजेय पराक्रम वाले ऐसे भाग्यशाली इन दोनों को देखकर परमेश्वर ने इनको समस्त कार्यों को करने में समर्थ तथा परम विश्वसनीय समझा। फलतः भगवान् शिव ने इन दोनों को अन्तःपुर का द्वारपाल नियुक्त कर दिया ।।३१-३२।।

गणेश्वरौ रेणुकदारुकावुभौ विश्वासभूतौ नवचन्द्रमौलेः।
अन्तःपुरद्वारगतौ सदा तौ वितेनतुर्विश्वपतेस्तु सेवाम्।।३३।।

भावार्थ : इस प्रकार रेणुक और दारुक दोनों बालचन्द्र भासित मस्तक वाले शिव के विश्वासपात्र होकर सदा अन्तःपुर के द्वार पर खड़े होकर विश्वरक्षक भगवान् शिव की सेवा करने लगे ।।३३।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां
शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये
श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ
जगत्सृष्टिविचार-रेणुकदारूकावतरणं नाम द्वितीयः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि ग्रन्थ के जगत्सृष्टिविचार
एवं रेणुकदारुकावतरण नामक द्वितीय परिच्छेद की
आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदिकृत 'ज्ञानवती'
हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।२।।



तृतीयः परिच्छेद

रेणुकाचार्य का भूलोकावतरण

कैलासवर्णन

कदाचिदथ कैलासे कलधौतशिलामये।
गन्धर्ववामनयनाक्रीडामौक्तिकदर्पणे ।।१।।

भावार्थ : सात श्लोकों[1] में कैलास का वर्णन कर रहे हैं— इसके बाद एक बार चाँदी की शिलाओं वाले तथा गन्धर्वों की स्त्रियों की क्रीडा के लिये मोती के दर्पण के समान कैलास पर भगवान् बैठे थे ॥१॥

मन्दारवकुलाशोकमाकन्दप्रायभूरुहे ।
मल्लीमरन्दनिष्यन्दपानपीनमधुव्रते ।।२।।

भावार्थ : उस पर्वत पर कल्पवृक्ष मौलसिरी अशोक आम के वृक्ष उगे हुए थे। मोङ्गरा के मकरन्द के रसपान से वहाँ भौंरे वृहद् आकार वाले थे ॥२॥

कुङ्कुमस्तबकामोदकूलङ्कषहरिन्मुखे ।
कलकण्ठकुलालापकन्दलद्रागबन्धुरे ।।३।।

भावार्थ : दिशायें रक्तपुष्प के गुच्छों के आमोद से पूर्ण नदियों से भरी हुई थी। वह पर्वत कोकिलवृन्द की मधुर ध्वनि से मनोहर था ॥३॥

किन्नरीगीतमाधुर्यपरिवाहितगह्वरे ।
सानन्दवरयोगीन्द्रवृन्दालङ्कृतकन्दरे ।।४।।

भावार्थ : उसकी गुफायें किन्नरस्त्रियों के गीतमाधुर्य से व्याप्त थीं। कन्दरायें ब्रह्मानन्दानुभव वाले श्रेष्ठ योगिसमूह से अलंकृत थीं ॥४॥

हेमारविन्दकलिकासुगन्धिरसमानसे ।
शातकुम्भमयस्तम्भशतोत्तुङ्गविराजिते ।।५।।

भावार्थ : मानसरोवर स्वर्ण कमल की कालिकाओं के सुगन्धि रस से युक्त था। सोने से निर्मित सैकड़ों ऊँचे-ऊँचे खम्भे वहाँ विराजमान थे ॥५॥

---

१. एक पदार्थ का पाँच या उससे अधिक श्लोकों में वर्णन 'कुलक' कहलाता है।

माणिक्यदीपकलिकामरीचिद्योतितान्तरे ।
द्वारतोरणसंरूढशङ्खपद्मनिधिद्वये ।।६।।

भावार्थ : उस पर्वत का भीतरी भाग माणिक्य दीपों की कालिका की किरणों से प्रकाशमान था तथा उसके द्वार के तोरण पर शङ्ख और पद्म दो निधियाँ संलग्न थीं ।।६।।

मुक्तातारकितोदारवितानाम्बरमण्डिते ।
स्पर्शलक्षितवैडूर्यमयभित्तिपरम्परे ।।७।।

भावार्थ : वह पर्वत मोतियों से ताराङ्कित (=जटित) विशाल वस्त्रों के तम्बू से सुशोभित था। वहाँ पर दीवारों पर स्पर्श से प्रतीत होने वाली वैडूर्य[१] मणियाँ जड़ी हुई थीं अर्थात् दीवारों पर जड़ी वैडूर्य मणियों को स्पर्श से ही जाना जा सकता था, देखने से नहीं ।।७।।

सञ्चरत्प्रमथश्रेणीपदवाचालनूपुरे ।
प्रवालवलभीशृङ्गशृङ्गारमणिमण्टपे ।।८।।

भावार्थ : वहाँ पर सञ्चरण करने वाले प्रमथगणों के पैरों में बँधे घुँघरु बजते रहते थे। प्रवालों से बनी हुई बलभी (=छाजन) तथा शृङ्ग (=चोटी) से अलंकृत मणियों से निर्मित मण्डप वहाँ शोभयमान थे ।।८।।

वन्दारुदेवमुकुटमन्दाररसवासितम् ।
रत्नसिंहासनं द्विव्यमध्यस्तं परमेश्वरम् ।।९।।

भावार्थ : वन्दना में लगे हुए देवताओं के मुकुट में जटित कल्पवृक्ष के फूलों के पराग से वासित दिव्य रत्नसिंहासन पर बैठे परमेश्वर की उनके परिवार के लोग सेवा कर रहे थे ।।९।।

तमास्थानगतं देवं सर्वलोकमहेश्वरम्।
त्रय्यन्त[२]कमलारण्यविहारकलहंसकम् ।।१०।।

भावार्थ : अब परमेश्वर के स्वरूप एवं वैभव का वर्णन करते हैं— देवों से युक्त स्थान पर विराजमान समस्त देवों के स्वामी वे देव वेदान्त अर्थात् उपनिषद्रूपी कमल के समूह में विहार करने वाले राजहंस के समान थे ।।१०।।

---

१. वैडूर्य या वैदूर्य नीलम का नाम है।

२. विद्वान् लोग ऋग्यजु:साम नामक तीनों वेदों को त्रयी कहते हैं। यतो हि उनका अन्तअर्थात् अन्तिम भाग उपनिषदें हैं। अत: उन्हें वेदान्त कहा जाता है।

उदारगुणमोंकारशुक्तिकापुटमौक्तिकम् ।
सर्वमङ्गलसौभाग्यसमुदायनिकेतनम् ।।११।।

भावार्थ : वे उदारता आदि गुणों से युक्त, ओंकार रूपी शुक्ति के मोती तथा सम्पूर्ण मङ्गलकारी सौभाग्यसमुदाय के भण्डार थे ।।११।।

संसारविषमूर्च्छालुजीवसञ्जीवनौषधम् ।
नित्यप्रकाशनैर्मल्यकैवल्यसुरपादपम् ।।१२।।

भावार्थ : वे भगवान् शिव संसाररूपी विष से मूर्च्छित जीवों के लिये सञ्जीवनी अर्थात् अमृत औषध तथा नित्यप्रकाश एवं निर्मलता से युक्त कैवल्य के कल्पवृक्ष थे ।।१२।।

अनन्तपरमानन्दमकरन्दमधुव्रतम् ।
आत्मशक्तिलतापुष्यत्त्रिलोकीपुष्पकोरकम् ।।१३।।

भावार्थ : वे परमेश्वर अनन्त परमानन्द मकरन्द का सेवन करने वाले मधुप तथा अपनी शक्तिरूपी लता से पुष्टि करने वाले त्रिभुवन रूपी पुष्प की कली के समान शोभयमान थे ।।१३।।

ब्रह्माण्डकुण्डिकाषण्डपिण्डीकरणपण्डितम् ।
समस्तदेवताचक्रचक्रवर्तिपदे स्थितम् ।।१४।।

भावार्थ : ब्रह्माण्ड रूपी कुण्डिका के टुकड़ों को जोड़ने में पण्डित तथा समस्त देवतामण्डल के चक्रवर्त्ती प्रतीत हो रहे थे ।।१४।।

चन्द्रबिम्बायुतच्छायादायादद्युतिविग्रहम् ।
माणिक्यमुकुटज्योतिर्मञ्जरीपिञ्जराम्बरम् ।।१५।।

भावार्थ : वे भगवान् शङ्कर हजारों चन्द्रमा की छाया के दायाद (=सम्बन्धी) द्युति से युक्त शरीर वाले तथा माणिक्यजटित मुकुट की ज्योति की किरणों से व्याप्त वस्त्रों वाले थे ।।१५।।

चूडालं सोमकलया सुकुमारबिसाभया ।
कल्याणपुष्पकलिकाकर्णपूरमनोहरम् ।।१६।।

भावार्थ : वे कोमल बिसतन्तु के समान चन्द्रकला को चूड़ा पर धारण किये हुए तथा कल्याण रूपी पुष्पकलिका के कर्णपूर से मनोहर थे ।।१६।।

मुक्तावलयसम्बद्धमुण्डमालाविराजितम् ।
पर्याप्तचन्द्रसौन्दर्यपरिपन्थिमुखश्रियम् ।।१७।।

भावार्थ : वे मोतियों की माला से गुम्फित, मुण्डमाला से सुशोभित तथा प्रचुर चन्द्रसौन्दर्य के प्रतिस्पर्धी मुखशोभा वाले थे ॥१७॥

प्रात:सम्फुल्लकमलपरियायत्रिलोचनम् ।
मन्दस्मितमितालापमधुराधरपल्लवम् ॥१८॥

भावार्थ : उनके तीनों नेत्र प्रात:काल में खिले कमल जैसे थे तथा अधरोष्ठ पल्लव मन्द मुस्कान तथा मित भाषण से मधुर थे ॥१८॥

गण्डमण्डलपर्यन्तक्रीडन्मकरकुण्डलम् ।
कालिम्ना कालकूटस्य कण्ठनाले कलङ्कितम् ॥१९॥

भावार्थ : मकर की आकृति वाला कर्णाभरण उनके कपोल तक लटक रहा था तथा कण्ठ की नलिका कालकूट की कालिमा से कलङ्कित अर्थात् नीली हो गयी थी ॥१९॥

मणिकङ्कणकेयूरमरीचिकरपल्लवैः ।
चतुर्भिः संविराजन्तं बाहुमन्दारशाखिभिः ॥२०॥

भावार्थ : कल्पवृक्ष की शाखा के समान सुडौल तथा मणिजटित कङ्कण धारण किये हुए कर पल्लवों वाली चार भुजाओं से वे परम शोभयमान थे ॥२०॥

गौरीपयोधराश्लेषकृतार्थभुजमध्यमम् ।
सुवर्णब्रह्मसूत्राङ्कं सूक्ष्मकौशेयवाससम् ॥२१॥

भावार्थ : उनकी भुजाओं का मध्य अर्थात् वक्ष:स्थल गौरी के स्तन से संश्लिष्ट था तथा वे सुवर्ण का जनेऊ एवं सूक्ष्म रेशमी वस्त्र पहने हुए थे ॥२१॥

नाभिस्थानावलम्बिन्या नवमौक्तिकमालया।
गङ्गयेव कृताश्लेषं मौलिभागावतीर्णया ॥२२॥

भावार्थ : नाभिस्थान तक लटकती हुई मोतीवाला ऐसी लगती थी मानो शिर से उतरकर गङ्गा उनका आलिङ्गन कर रही हो ॥२२॥

पदेन मणिमञ्जीरप्रभापल्लवितश्रिया।
चन्द्रवत्स्फाटिकं पीठं समावृत्य स्थितं पुरः ॥२३॥

भावार्थ : मणिजटित जञ्जीर की कान्ति से पल्लव जैसी शोभा वाले पैर को चन्द्र के समान स्फटिक से निर्मित पीठ पर रखकर वे बैठे थे ॥२३॥

वामपार्श्वनिवासिन्या मङ्गलप्रियवेषया ।
समस्तलोकनिर्माणसमवायस्वरूपया ।।२४।।

भावार्थ : अब पारमेश्वरी शक्ति उमा का वर्णन करते हैं—

परमेश्वर के वाम पार्श्व में उमा विराजमान थी। वे मङ्गल और प्रिय वेशभूषा वाली तथा समस्त लोक की रचना की समवायिकारणरूपा थी ॥२४॥

इच्छाज्ञानक्रियारूपबहुशक्तिविलासया।
विद्यातत्त्वप्रकाशिन्या विनाभावविहीनया।।२५।।

भावार्थ : वह भवानी इच्छा ज्ञान क्रिया रूप अनेक शक्तियों से सुशोभित, शुद्ध विद्या तत्त्व की प्रकाशिका तथा शिव के साथ अविनाभाव सम्बन्धवाली थीं ॥२५॥

संसारविषकान्तारदाहदावाग्निलेखया ।
धम्मिल्लमल्लिकामोदझङ्कुर्वद्भृङ्गमालया ।।२६।।

भावार्थ : वे संसार रूपी विषजङ्गल को जलाने के लिये दावाग्नि की ज्वाला के समान शोभायमान थी। उनके वेणी में गुँथी जूही की सुगन्ध से भृङ्गमाला झङ्कार करती रहती थी ॥२६॥

सम्पूर्णचन्द्रसौभाग्यसंवादिमुखपद्मया ।
नासामौक्तिकलावण्यनाशीरस्मितशोभया ।।२७।।

भावार्थ : उनका मुखकमल पूर्णचन्द्र के सौन्दर्य को तिरस्कृत करने वाला था। नाक में लगे मोती के सौन्दर्य से उनका नाभिछिद्र मानो मन्दहास कर रहा था ॥२७॥

मणिताटङ्करङ्गान्तर्वलितापाङ्गलीलया ।
नेत्रद्वितयसौन्दर्यनिन्दितेन्दीवरत्विषा ।।२८।।

भावार्थ : वह उमा मणिजटित ताटङ्क (=कर्णाभरण) रूपी रङ्गमञ्च पर मानो अपाङ्गलीला (=कटाक्षविक्षेपण) कर रही हो। दो नेत्रों के सौन्दर्य से वे नीलकमल की कान्ति को भी तिरस्कृत कर रही थी ॥२८॥

कुसुमायुधकोदण्डकुटिलभ्रूविलासया ।
बन्धूककुसुमच्छायाबन्धुभूताधरश्रिया ।।२९।।

भावार्थ : उनका भ्रूविलास (=भौंह को टेढ़ी करना) काम के धनुष के समान वक्र था तथा ओष्ठ की शोभा बन्धूकपुष्प की छाया जैसी थी ॥२९॥

कण्ठनालजितानङ्गकम्बुबिब्बोकसम्पदा।
बाहुद्वितयसौभाग्यवञ्चितोत्पलमालया।।३०।।

भावार्थ : वह उमा कण्ठनाल से निर्गत शब्द के द्वारा कामदेव की शङ्ख की ध्वनि सम्पदा को जीतने वाली तथा दोनों भुजाओं के सौन्दर्य से नीलकमल को तिरस्कृत करने वाली थी ॥३०॥

स्थिरयौवनलावण्यशृङ्गारितशरीरया।
अत्यन्तकठिनोत्तुङ्गपीवरस्तनभारया।।३१।।

भावार्थ : उनका शरीर स्थिर यौवन के लावण्य से शृङ्गारयुक्त प्रतीत हो रहा था। वे अत्यन्त कठिन ऊँचे तथा चौड़े स्तनों के भार से युक्त अत एव नम्र थीं ॥३१॥

मृणालवल्लरीतन्तुबन्धुभूतावलग्नया।
शृङ्गारतटिनीतुङ्गपुलिनश्रोणिभारया।।३२।।

भावार्थ : उनका अवलग्न अर्थात् कटि प्रदेश कमलनाल के तन्तु के समान क्षीण था। वे शृङ्गाररूपी नदी के ऊँचे किनारों जैसे नितम्ब के भार से अलसगमना थीं ॥३२॥

कुसुम्भकुसुमच्छायाकोमलाम्बरशोभया।
शृङ्गारोद्यानसंरम्भरम्भास्तम्भोरुकाण्डया।।३३।।

भावार्थ : कुसुम्भ फूलों के रङ्ग वाले कोमल वस्त्र से वह शोभयमान थीं। उनकी जाँघें शृङ्गार उद्यान के शोभायुक्त केले के खम्भे जैसी थीं ॥३३॥

चूतप्रवालसुषुमासुकुमारपदाब्जया।
स्थिरमङ्गलशृङ्गारभूषणालङ्कृताङ्गया।।३४।।

भावार्थ : उनके पैर आम के कोमल नवीन पल्लवों के समान सुन्दर और सुकुमार थे। उनके अङ्ग स्थायी मङ्गलमय शृङ्गार वाले आभूषणों से अलङ्कृत थे ॥३४॥

हारनूपुरकेयूरचमत्कृतशरीरया।
चक्षुरानन्दलतया सौभाग्यकुलविद्यया।।३५।।

भावार्थ : उनका शरीर हार (= गले का आभारण) नूपुर (= पैर का अलङ्करण) और केयूर (= भुजाओं का आभूषण) से चमक रहा था। आँखें आनन्द की लता के समान थी। फलतः वे सौभाग्यकुलविद्या स्वरूपा थीं ॥३५॥

उमया सममासीनं लोकजालकुटुम्बया।
अपूर्वरूपमभजन् परिवाराः समन्ततः।।३६।।

भावार्थ : लोकसमूह के कुटुम्ब वाली उस उमा के साथ भगवान् शिव बैठे हुए थे। ऐसे अपूर्व रूप वाले भगवान् उमानाथ की उनके परिवार के लोग सब ओर से सेवा कर रहे थे ।।३६।।

पुंण्डरीकाकृतिं स्वच्छं पूर्णचन्द्रसहोदरम्।
दधौ तस्य महालक्ष्मीः सितमातपवारणम्।।३७।।

भावार्थ : महालक्ष्मी उनका छत्र धारण की थी जो कि कमल के आकार वाला उज्ज्वल पूर्णचन्द्रसदृश तथा श्वेत वर्ण का था ।।३७।।

तन्त्रीझङ्कारशालिन्या सङ्गीतामृतविद्यया।
उपतस्थे महादेवमुपान्ते च सरस्वती।।३८।।

भावार्थ : पास में सरस्वती वीणा की झङ्कार से युक्त सङ्गीतरूपी अमृत विद्या से महादेव की उपासना कर रही थीं ।।३८।।

झणत्कङ्कणजातेन हस्तेनोपनिषद्वधूः।
ओंकारतालवृन्तेन वीजयामास शङ्करम्।।३९।।

भावार्थ : उपनिषद् रूपी बहू झनकते हुए कङ्गनों वाले हाथों से ओंकार रूपी पङ्खे के द्वारा शङ्कर को पङ्खा झल रही थी ।।३९।।

चलच्चामरिकाहस्ता झङ्कुर्वन्मणिकङ्कणाः।
आसेवन्त तमीशानमभितो दिव्यकन्यकाः।।४०।।

भावार्थ : जिनके हाथ में चामर चल रहे थे तथा मणिजटित कङ्गन झङ्कार कर रहे थे, ऐसी इन्द्राणी आदि दिव्य कन्यायें उन परमेश्वर की सब ओर से सेवा कर रही थीं ।।४०।।

चामराणां विलोलानां मध्ये तन्मुखमण्डलम्।
रराज राजहंसानां भ्रमतामिव पङ्कजम्।।४१।।

भावार्थ : हिलते डुलते चामरों के मध्य उन शङ्कर का मुख ऐसा लग रहा था मानो घूमते हुए राजहंसों के बीच कमल स्थित हो ।।४१।।

मन्त्रेण तमसेवन्त वेदाः साङ्गविभूतयः ।
भक्त्या चूडामणिं कान्तं वहन्त इव मौलिभिः।।४२।।

भावार्थ : अङ्गरूपी[१] विभूतियों के सहित वेदपुरुष अपने उपनिषद्रूपी शिरों पर मनोहर चूड़ामणि धारण किये हुए भक्ति के साथ मन्त्रों के द्वारा उन शंकर की सेवा कर रहे थे ।।४२।।

तदीयायुधधारिण्यस्तत्समानविभूषणाः ।
अङ्गभूताःस्त्रियः काश्चिदासेवन्त तमीश्वरम्।।४३।।

भावार्थ : उन वेदों की अङ्गभूत कोई अर्थात् दिव्य स्त्रियाँ उनके अस्त्र-शस्त्रों को धारण कर उनके आभूषणों से अलंकृत होकर उन ईश्वर की सेवा कर रही थीं ।।४३।।

आप्ताधिकारिणः केचिदनन्तप्रमुखा अपि।
अष्टौ विद्येश्वरा देवमभजन्त समन्ततः।।४४।।

भावार्थ : अधिकार प्राप्त अनन्त आदि कोई अर्थात् उत्तम कोटि के आठ विद्येश्वर[२] भी चारों ओर से उनकी सेवा कर रहे थे ।।४४।।

ततो नन्दी महाकालश्चण्डो भृङ्गी रिटिस्ततः।
सेनानिर्गजवक्त्रश्च रेणुको दारुकस्तथा।।४५।।

घण्टाकर्णः पुष्पदन्तः कपाली वीरभद्रकः।
एवमाद्या महाभागा महाबलपराक्रमाः।।४६।।

निरङ्कुशमहासत्त्वा भेजिरे तं महेश्वरम्।।४६।।

भावार्थ : इसके बाद नन्दी, महाकाल, चण्ड, भृङ्गी, रिटि, षण्मुख, गणेश, रेणुक, दारुक, धेनुकर्ण, घण्टाकर्ण, पुष्पदन्त, कपाली, वीरभद्र आदि प्रमथगण जो कि महाबली महापराक्रमी स्वतन्त्र तथा महासत्त्ववान् हैं, उन महेश्वर की सेवा कर रहे थे ।।४५-४६।।

अणिमादिकमैश्वर्यं येषां सिद्धेरपोहनम्।
ब्रह्मादयःसुरा येषामाज्ञालङ्घनभीरवः।।४७।।

भावार्थ : अब उन प्रमथगणों की विशेषता बतलाते हैं उन प्रमथगणों की सिद्धि के समक्ष अणिमा[३] आदि सिद्धियाँ तुच्छ थीं। ब्रह्मा आदि देवता उनकी आज्ञा का उल्लङ्घन करने में डरते थे ।।४७।।

---

१. शिक्षा कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष वेद के ये छह अङ्ग माने गये हैं।
२. अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ और शिखण्डी - ये आठ विद्येश्वर हैं।
३. अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व (अथवा यत्रकामावसायित्व) ये आठ सिद्धियाँ हैं।

मोक्षलक्ष्मीपरिष्वङ्गमुदिता येऽन्तरात्मना।
येषामीषत्करं विश्वसर्गसंहारकल्पनम्।।४८।।

भावार्थ : वे लोग अपनी अन्तरात्मा में मोक्षलक्ष्मी के आलिङ्गन से आनन्दमय थे। अत: उनके लिये विश्व की सृष्टि एवं संहार अत्यन्त सरल कार्य था ।।४८।।

ज्ञानशक्तिः परा येषां सर्ववस्तुप्रकाशिनी[१]।
आनन्दकणिका येषां हरिब्रह्मादिसम्पदः।।४९।।

भावार्थ : उनकी परा ज्ञान शक्ति समस्त वास्तु को प्रकाशित करने वाली थी तथा विष्णु, ब्रह्मा आदि की सम्पत्तियाँ उनके पास स्थित आनन्द की कणिकायें मात्र थीं ।।४९।।

आकाङ्क्षन्ते पदं येषां योगिनो योगतत्पराः।
काङ्क्षणीयफलो येषां सङ्कल्पः कल्पपादपः।।५०।।

भावार्थ : योग में तत्पर योगी लोग उनके पदों के अभिलाषी रहते हैं। उनका संकल्प ही मनोवाञ्छित फल देने वाला कल्पवृक्ष है ।।५०।।

कर्मकालादिकार्पण्यचिन्ता येषां न विद्यते।
येषां विक्रमसन्नाहा मृत्योरपि च मृत्यवः।।५१।।

ते सारूप्यपदं प्राप्ताः प्रमथा भेजिरे शिवम्।

भावार्थ : जिनको [२]कर्म एवं काल आदि से जन्य दु:ख की चिन्ता नहीं होती। उनके पराक्रमपूर्ण कार्य मृत्यु के भी मृत्यु होते हैं। भगवान् शिव के सारूप्य पद (= सारूप्य मोक्ष) को प्राप्त वे प्रमथगण शिव की सेवा में निरत थे ।।५१।।

ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्राद्या विश्वतन्त्राधिकारिणम्।
आयुधालङ्कृतप्रान्ताः परितस्तं सिषेविरे।।५२।।

भावार्थ : ब्रह्मा, विष्णु, देवराज, इन्द्र आदि अपने-अपने शस्त्रों से सुसज्जित होकर विश्वविस्तार के अधिकारी उन भगवान् सार्वभौम शिव की सेवा करते थे ।।५२।।

आदित्या वसवो रुद्रा यक्षगन्धर्वकिन्नराः।
दानवा राक्षसा दैत्याः सिद्धा विद्याधरोरगाः।।
अभजन्त महादेवमपरिच्छिन्नसैनिकाः।।५३।।

---

१. ज्ञानशक्तिर्महेशस्य तपत्यादित्यविग्रहा । (स्व.तं.)
२. कर्म तीन प्रकार के होते हैं - सञ्चित, क्रियमाण और प्रारब्ध। वर्त्तमान शरीर प्रारब्ध कर्मों का फल होता है। सञ्चित कर्म भावी जन्मों के हेतु बनते हैं।

भावार्थ : द्वादश सूर्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, कुबेर आदि यक्ष, हाहा हूहू आदि गन्धर्व, अश्वमुख आदि किन्नर, बाण आदि दानव, रावण आदि राक्षस, तारक आदि दैत्य, आदिनाथ आदि सिद्ध, मणिभद्र आदि विद्याधर, शेषनाग आदि सर्प, असंख्य सैन्यबल से युक्त होकर महादेव की सेवा कर रहे थे ॥५३॥

वसिष्ठो वामदेवश्च पुलस्त्यागस्त्यशौनकाः।
दधीचिर्गौतमश्चैव सानन्दशुकनारदाः॥५४॥

उपमन्युभृगुव्यासपाराशरमरीचयः।
इत्याद्या मुनयः सर्वे नीलकण्ठं सिषेविरे॥५५॥

भावार्थ : वशिष्ठ, वामदेव, पुलस्त्य, अगस्त्य, शौनक, दधीचि, गौतम, सानन्द, शुकदेव, नारद, उपमन्यु, भृगु, व्यास, पराशर, मरीचि इत्यादि समस्त मुनि नीलकण्ठ की सेवा कर रहे थे ॥५४-५५॥

पार्श्वस्थपरिवाराणां विमलाङ्गेषु बिम्बितः।
सर्वान्तर्गतमात्मानं स रेजे दर्शयन्निव॥५६॥

भावार्थ : पास में स्थित परिवारों के निर्मल अङ्गों में प्रतिबिम्बित वे भगवान् शिव अपने को सबके अन्दर विराजमान दिखलाते हुए शोभायमान थे ॥५६॥

क्षणं स शम्भुर्देवानां कार्यभागं निरूपयन्।
क्षणं गन्धर्वराजानां[1] गानविद्यां विभावयन्॥५७॥

भावार्थ : भगवान् शम्भु एक क्षण के लिये कभी देवताओं के कार्यों को बतलाते तो कभी गन्धर्वों की गानविद्या को सुनते थे ॥५७॥

ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्देवैः क्षणमालापमाचरन्।
क्षणं देवमृगाक्षीणां लालयन्नृत्यविभ्रमम्॥५८॥

भावार्थ : कभी क्षण भर ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओं के साथ बातें करते तो कभी देवताओं की स्त्रियों के नृत्य की प्रशंसा करते ॥५८॥

व्यासादीनां क्षणं कुर्वन् वेदोच्चारेषु गौरवम्।
विदधानः क्षणं देव्या मुखे बिम्बाधरे दृशः॥५९॥

भावार्थ : एक क्षण में वेदोच्चारण के विषय में व्यास आदि की प्रशंसा करते तो दूसरे क्षण में देवी उमा के बिम्बसमान अधर वाले मुख को देखते ॥५९॥

---

१. 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इति सूत्रेण समासान्ताद्राजन् शब्दात् 'टच्' प्रत्ययः।

हास्यनृत्यं क्षणं पश्यन् भृङ्गिणा परिकल्पितम्।
नन्दिना वेत्रहस्तेन सर्वतन्त्राधिकारिणा।।६०।।

अमुञ्चता सदा पार्श्वमात्माभिप्रायवेदिना।
चोदितान् वासयन् कांश्चिद्विसृजन् भ्रूविलासत:।।
सम्भावयंस्तथा चान्यानन्यानपि नियामयन्।।६१।।

भावार्थ : कभी भृङ्गियों के द्वारा विहित हास्य नृत्य को देखते, तो कभी सर्वकार्याधिकारी वेत्रहस्त सदा पास में खड़े एवं आत्माभिप्राय को जानने वाले नन्दी के द्वारा बुलाये गये लोगों को ले आते तथा भौंह के सङ्केत से अन्यों को भेजते तथा किन्हीं को प्रिय वाक्यों से सन्तुष्ट करते और किन्हीं को शासित करते थे ।।६०-६१।।

समस्तभुवनाधीशमौलिलालितशासन:।
अकुण्ठशक्तिरव्याजलावण्यललिताकृति:।।६२।।

भावार्थ : उनका आदेश समस्त भुवनों के स्वामी लोगों के लिये शिरोधार्य था। उनकी आकृति स्वाभाविक सौन्दर्य से सुन्दर थी तथा शक्ति कुण्ठारहित अर्थात् अव्याहत थी ।।६२।।

स्थिरयौवनसौरभ्यशृङ्गारितकलेवर: ।
आत्मशक्त्यमृतास्वादरसोल्लासितमानस:।।६३।।

भावार्थ : उनका शरीर स्थिर यौवन की सुरभि से सुसज्जित तथा मन आत्मशक्ति रूपी अमृत के रसास्वाद के कारण उल्लासयुक्त था ।।६३।।

स्वाभाविकमहैश्वर्यविश्रामपरमावधि:।
निष्कलङ्कमहासत्त्वनिर्मितानेकविग्रह:।।६४।।

भावार्थ : स्वाभाविक महा ऐश्वर्य के विश्राम की अन्तिम सीमा तथा सवरूप के कलङ्करहित महासत्त्व के द्वारा अनेक शरीर धारण करने वाले हैं ।।६४।।

अखण्डारातिदोर्दण्डकण्डूखण्डनपण्डित:।
चिन्तामणि: प्रपन्नानां श्रीकण्ठ: परमेश्वर:।।६५।।

भावार्थ : वे परमेश्वर श्रीकण्ठ समस्त शत्रुओं की भुजाओं की खुजली को दूर करने में पण्डित, शरणागतों के लिये चिन्तामणि के समान शोभयमान थे ।।६५।।

सभान्तरगतं तन्त्रं रेणुकं गणनायकम्।
प्रसादं सुलभं दातुं ताम्बूलं स तमाह्वयत्।।६६।।

भावार्थ : ऐसे भगवान् शिव ने सभा के अन्दर बैठे हुए मुख्य गणनायक रेणुक को सुलभ प्रसादरूपी ताम्बूल देने के लिये बुलाया ॥६७॥

शम्भोराह्वानसन्तोषसंभ्रमेणैव दारुकम्।
उल्लङ्घ्य पार्श्वमगमल्लोकनाथस्य रेणुकः॥६७॥

भावार्थ : वह रेणुक शंकर के आवाहन से उत्पन्न संतोष के संभ्रम में दारुक को लाँघकर लोकनाथ के पास अर्थात् वामभाग में पहुँच गया ॥६७॥

तमालोक्य विभुस्तत्र समुल्लङ्घितदारुकम्।
माहात्म्यं निजभक्तानां द्योतयन्निदमब्रवीत्॥६८॥

भावार्थ : सर्वव्यापी परमेश्वर ने अपने भक्तों का माहात्म्य दिखलाने के लिये दारुक का उल्लङ्घन करने वाले उसे रेणुक से कहा ॥६९॥

रे रे रेणुक दुर्बुद्धे कथमेष त्वयाऽधुना।
उल्लङ्घितः सभामध्ये मम भक्तो हि दारुकः॥६९॥

भावार्थ : रे दुर्बुद्धि रेणुक! तुमने सभा के बीच मेरे भक्त इस दारुक का उल्लङ्घन क्यों किया? ॥६९॥

लङ्घनं मम भक्तानां परमानर्थकारणम्।
आयुः श्रियं कुलं कीर्तिं निहन्ति हि शरीरिणाम्॥७०॥

भावार्थ : मेरे भक्तों का लाँघना महा अनर्थ का कारण बनता है वह मनुष्यों की आयु लक्ष्मी कुल और कीर्ति को नष्ट करे देता है ॥७१॥

मम भक्तमवज्ञाय मार्कण्डेयं[1] पुरा यमः।
मत्पादताडनादासीत् स्मरणीयकलेवरः॥७१॥

भावार्थ : प्राचीन काल में यमराज मेरे भक्त मार्कण्डेय की अवज्ञा कर मेरे पैर के आघात से नष्ट हो गये ॥७२॥

भृगोश्च शङ्कुकर्णस्य मम भक्तिमतोस्तयोः।
कृत्वानिष्टमभूद् विष्णुर्विकेशो दशयोनिभाक्॥७२॥

भावार्थ : मेरे भक्त भृगु और शङ्कुकर्ण का अनिष्ट कर विष्णु विशिष्ट केश वाले हो गये अर्थात् उनके मस्तक पर बाल उग आये तथा दश बार जन्म लिये ॥७२॥

---

१. मार्कण्डेय मृकण्डु ऋषि के पुत्र थे। उनको पाँच वर्ष की अल्पायु प्राप्त थी। सप्तर्षियों के आशीर्वाद से उनको ब्रह्मा के आयुः प्रमाण से पाँच वर्ष का जीवन मिला।

मद्भक्तेन दधीचेन कृत्वा युद्धं जनार्दनः।
भग्नचक्रायुधः पूर्वं पराभवमुपागमत्।।७३।।

भावार्थ : प्राचीन काल में मेरे भक्त दधीचि के साथ युद्ध कर जनार्दन (=विष्णु) चक्र और धनुष टूट जाने पर पराजय को प्राप्त हुए ।।७३।।

कृताश्वमेधो दक्षोऽपि मद्भक्तांश्च गणेश्वरान्।
अवमत्य सभामध्ये मेषवक्त्रोऽभवत् पुरा।।७४।।

भावार्थ : अश्वमेध करने वाले दक्ष ने भी सभा के बीच मेरे भक्त गणेश्वरों का अपमान कर भेड़ का मुख प्राप्त किया ।।७४।।

श्वेतस्य मम भक्तस्य दुरतिक्रमतेजसः।
औदासीन्येन कालोऽपि मया दग्धः पुराऽभवत्।।७५।।

भावार्थ : प्राचीन काल में अनतिक्रमणीय तेज वाले मेरे भक्त श्वेत के प्रति उदासीन होने से मैंने काल को भी जला दिया ।।७५।।

एवमन्येऽपि बहवो मद्भक्तानामतिक्रमात्।
परिभूता हताश्चासन् भक्ता मे दुरतिक्रमाः।।७६।।

भावार्थ : इसी प्रकार अन्य बहुत से लोग मेरे भक्तों को अतिक्रमण के कारण पराभव को प्राप्त हुए और मारे गये । अतः मेरे भक्त अनुल्लङ्घनीय होते हैं ।।७६।।

अविचारेण मद्भक्तो लङ्घितो दारुकस्त्वया।
एष त्वं रेणुकानेन जन्मवान् भव भूतले।।७७।।

भावार्थ : हे रेणुक! तुमने बिना विचार किये मेरे भक्त दारुक का लङ्घन किया इस कारण तुम पृथ्वी पर जन्म लो ।।७७।।

इत्युक्तः परमेशेन भक्तमाहात्म्यशंसिना।
प्रार्थयामास देवेशं प्रणिपत्य स रेणुकः।।७८।।

भावार्थ : भक्तों का माहात्म्य बतलाने वाले परमेश्वर के द्वारा इस प्रकार कहा गया वह रेणुक पैरों पर गिरकर देवेश भगवान् शिव से प्रार्थना किया ।।७८।।

मानुषीं योनिमासाद्य महादुःखविवर्धिनीम्।
जात्यायुर्भोगवैषम्यहेतुकर्मोपपादिनीम्।।७९।।
समस्तदेवकैङ्कर्यकार्पण्यप्रसवस्थलीम्।
महातापत्रयोपेतां वर्णाश्रमनियन्त्रिताम्।।
विहाय त्वत्पदाम्भोजसेवां किं वा वसाम्यहम्।।८०।।

यथा मे मानुषो भावो न भवेत् क्षितिमण्डले।
तथा प्रसादं देवेश विधेहि करुणानिधे।।८१।।

भावार्थ : हे देवेश! महादुःख को बढ़ाने वाली, जन्म आयु और भोग के वैषम्य के कारणभूत कर्मों को कराने वाली, समस्त देवताओं के सेवकत्वरूपी दीनता की जन्मस्थली, दैहिक, दैविक, भौतिक तीन तापों से युक्त एवं वर्णाश्रम धर्म से नियन्त्रित मनुष्य योनि को प्राप्त कर आपके चरणकमल की सेवा से रहित मैं वहाँ कैसे रह सकूँगा? हे करुणानिधे! पृथिवीमण्डल पर मेरा मनुष्य भाव जिस प्रकार न रहे वैसी कृपा कीजिये ।।७९-८१।।

इति सम्प्रार्थितो देवो रेणुकेन महेश्वरः।
मा भैषीर्मम भक्तानां कुतो भीतिरिहेष्यति।।८२।।

भावार्थ : रेणुक के द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये गये महेश्वर ने कहा- डरो मत। मेरे भक्तों को इस जगत् में भय कहाँ ।।८२।।

श्रीशैलस्योत्तरे भागे त्रिलिङ्गविषये शुभे।
कोल्लिपाक्यभिधानोऽस्ति कोऽपि ग्रामो महत्तरः।।८३।।

भावार्थ : श्रीशैल के उत्तर भाग में स्थित तैलङ्गान देश में कौल्लिपाकी नाम वाला कोई बड़ा सा गाँव है ।।८३।।

सोमेश्वराभिधानस्य तत्र वासवतो मम।
अस्पृशन् मानुषं भावं लिङ्गात्प्रादुर्भविष्यसि।।८४।।

भावार्थ : वहाँ सोमेश्वर नाम से बसने वाले अर्थात् स्थित मेरे लिङ्ग (= सोमेश्वर महादेव) से तुम मानुषभाव का स्पर्श न करते हुए उत्पन्न होंगे अर्थात् मनुष्य देह से तुम्हारी उत्पत्ति नहीं होगी ।।८४।।

मदीयलिङ्गसंभूतं मद्भक्तपरिपालकम्।
विस्मिता मानुषाः सर्वे त्वां भजन्तु मदाज्ञया।।८५।।

भावार्थ : सब लोग आश्चर्ययुक्त होकर मेरी आज्ञा से मेरे शिवलिङ्ग से उत्पन्न मेरे भक्तों के परिपालक स्वरूप तुम्हारी सेवा करेंगे ।।८५।।

मदद्वैतपरं शास्त्रं वेदवेदान्तसंमतम्।
स्थापयिष्यसि भूलोके सर्वेषां हितकारकम्।।८६।।

भावार्थ : तुम पृथ्वीलोक पर वेदवेदान्तसम्मत तथा सबके लिये हितकारक शिवाद्वैत शास्त्र (वीरशैव सिद्धान्त) की स्थापना करोगे ।।८६।।

मम प्रतापमतुलं मद्भक्तानां विशेषतः।
प्रकाशय महीभागे वेदमार्गानुसारतः।।८७।।

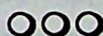
भावार्थ : हे रेणुक! तुम वेदमार्ग का अनुसरण करते हुए पृथ्वीतल पर मेरे अतुल प्रताप को और मेरे भक्तों के प्रताप को विशेष रूप से बतलाओ ॥८७॥

इत्युक्त्वा परमेश्वरः स भगवान् भद्रासनादुत्थितो
ब्रह्मोपेन्द्रमुखान् विसृज्य विबुधान् भ्रूसंज्ञया केवलम्।
पार्वत्या सहितो गणैरभिमतैः प्राप स्वमन्तःपुरं
क्षोणीभागमवातरत् पशुपतेराज्ञावशाद् रेणुकः।।८८।।

भावार्थ : ऐसा कहकर वे भगवान् परमेश्वर अपने भद्रासन से उठ खड़े हुए। केवल भौंह के इशारे से ब्रह्मा उपेन्द्र आदि देवों को विदा कर अभिमत गणों तथा पार्वती के साथ अपने अन्तःपुर को चले गये। पशुपति जी की आज्ञा से रेणुक भी पृथ्वी तल पर अवतीर्ण हुए ॥८८॥

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ कैलासवर्णनं रेणुकावतरणकारणं च नाम तृतीयः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के रेणुक भूलोकावतरण नामक तृतीय परिच्छेद की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।३।।



चतुर्थः परिच्छेदः

अथाष्टभिः सूत्रैः शिवयोगिरेणुकगणेश्वरस्य स्वरूपं वर्णयति

अथ त्रिलिङ्गविषये कोल्लिपाक्यभिधे पुरे।
सोमेश्वरमहालिङ्गात् प्रदुरासीत् स रेणुकः।।१।।

रेणुक का अवतार एवं उनके स्वरूप का वर्णन

भावार्थ : इसके बाद रेणुक तैलंगाना देश के कोल्लिपाकी नामक नगर में सोमेश्वर महादेव नामक महालिंग में प्रगट हुये ।।१।।

प्रादुर्भूतं तमालोक्य शिवलिङ्गात् त्रिलिङ्गजाः।
विस्मिताः प्राणिनः सर्वे बभूवुरतितेजसम्।।२।।

भावार्थ : तैलंगाना देश के समस्त प्राणी अत्यन्त तेजस्वी उनको शिवलिंग से प्रगट हुआ देखकर विस्मय से भर गये ।।३।।

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं साररुद्राक्षभूषणम्।
लिङ्गधारणसंयुक्तं लिङ्गपूजापरायणम्।।
जटामुकुटसंयुक्तं त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकम्।।३।।

भावार्थ : उस रेणुक का समस्त शरीर भस्म से उद्धूलित था। रुद्राक्षमाला से विभूषित था, मस्तक लिंगधारण किया हुआ था, वह लिंगपूजा में परायण भी था, जटामुकुट से संयुक्त उनका मस्तक त्रिपुण्ड्र से चिह्नित था ।।३।।

कटीतटीपटीभूतकन्थापटलबन्धुरम् ।
दधानं योगदण्डं च भस्माधारं कमण्डलुम्।।४।।

भावार्थ : वे कटिप्रदेश में वस्त्र के रूप में कन्था बाँधे, योगदण्ड धारण किये हुए भस्म पात्र तथा कमण्डलु लिये हुए थे ।।४।।

शिवाद्वैतपरिज्ञानपरमानन्दमोदितम् ।
निर्धूतसर्वसंसारवासनादोषपञ्जरम् ।।५।।

भावार्थ : शिवाद्वैत के परिपूर्ण ज्ञान से जन्य परम आनन्द, से मुदित वे समस्त संसार के समस्त वासनादोष रूपी पिंजड़े को नष्ट किये हुए थे ।।५।।

शिवागमसुधासिन्धुसमुन्मेषसुधाकरम् ।
चित्तारविन्दसंगूढशिवपादाम्बुजद्वयम् ।।६।।

भावार्थ : वे शैवागमरूपी सुधासिन्धु की वृद्धि के लिये चन्द्रमा के समान थे तथा अपने हृदयकमल में शिव के दोनों चरणकमलों को छिपाये हुए थे ।।६।।

यमादियोगतन्त्रज्ञं स्वतन्त्रं सर्वकर्मसु।
समस्तसिद्धसन्तानसमुदायशिखामणिम्।।७।।

भावार्थ : वे यम आदि[१] योगसाधनों के ज्ञाता, समस्त कार्य करने में स्वतन्त्र तथा समस्त सिद्धपरम्परा समूह के शिखामणि थे ।।७।।

वीरसिद्धान्तनिर्वाहकृतपट्टनिबन्धनम् ।
आलोकमात्रनिर्भिन्नसमस्तप्राणिपातकम्।।८।।

भावार्थ : वे रेणुकाचार्य वीरशैवसिद्धान्त का निर्वाह करने के लिये कटिबद्ध तथा दर्शनमात्र से समस्त प्राणियों के पापों को दूर करने वाले थे ।।८।।

तमपृच्छन् जनाः सर्वे नमन्तः को भवानिति।
इति पृष्टो महायोगी जनैर्विस्मितमानसैः।।९।।

प्रत्युवाच शिवाद्वैतमहानन्दपरायणः।
पिनाकिनः पार्श्ववर्ती रेणुकाख्यगणेश्वरः।।१०।।

भावार्थ : सब लोगों ने उनको प्रणाम कर उनसे पूछा— 'आप कौन हैं?' विस्मययुक्त चित्तवाले लोगों के द्वारा पूछे गये वे महायोगी बोले— 'मैं शिवाद्वैत महानन्द में लीन शंकर का पार्श्ववर्ती रेणुक नामक गणेश्वर हूँ' ।।९-१०।।

केनचित्कारणेनाहं शिवलिङ्गादिहाभवम्।
नाम्ना रेणुकसिद्धोऽहं सिद्धसन्ताननायकः।।११।।

भावार्थ : किसी कारण से मैं इस संसार में यहाँ शिवलिंग से उत्पन्न हुआ हूँ। मेरा नाम रेणुकसिद्ध है। मैं सिद्धपरम्परा का नायक हूँ ।।११।।

स्वच्छन्दचारी लोकेऽस्मिन् शिवसिद्धान्तपालकः।
खण्डयन् जैनचार्वाकबौद्धादीनां दुरागमान्।।१२।।

भावार्थ : मैं इस लोक में स्वच्छन्द विचरण करने वाला, जैन चार्वाक बौद्ध आदि दुष्ट (= नास्तिक) आगमों का खण्डन करता हुआ शिवसिद्धान्त का परिपालक हूँ ।।१२।।

---

१. यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि—योग के ये आठ अंग हैं। (पा०यो०सू०)

इत्युक्त्वा पश्यतां तेषां विषयस्थिरचक्षुषाम्।
उत्थाय व्योममार्गेण मलयाद्रिमुपागमत्।।१३।।

भावार्थ : ऐसा कहकर एक टक उनको देखते हुए लोगों के सामने वे रेणुक उड़कर आकाश मार्ग से मलय पर्वत पर चले गये ।।१३।।

नवचन्दनकान्तारकन्दलन्मन्दमारुतम् ।
अभङ्गुरभुजङ्गस्त्रीसंगीतरससंकुलम् ।।१४।।

भावार्थ : मलय पर्वत का वर्णन— वह मलय पर्वत नये चन्दन के घने जङ्गल से भरा था। उसमे मन्द वायु चल रही थी। अत्यन्त सटी हुई सर्पिणियों के संगीतरस से वह व्याप्त था ।।१४।।

करिपोतकराकृष्टस्फुरदेलातिवासितम् ।
वराहदंष्ट्रिकाध्वस्तमुस्तासुरभिकन्दरम् ।।१५।।

भावार्थ : हाथी के बच्चों के द्वारा सूँड़ से खींची गयी इलायची से वह अत्यन्त सुगन्धयुक्त था। सूअरों के छोटे-छोटे दाँतों से ध्वस्त मुस्ता की सुगन्ध से उसकी कन्दरायें व्याप्त थीं ।।१५।।

पटीरदलपर्यङ्कप्रसुप्तव्याधदम्पतिम् ।
माधवीमल्लिकाजातीमञ्जरीरेणुरञ्जितम् ।।१६।।

भावार्थ : वहाँ व्याधदम्पती श्वेत कदलीदल से बने पलंग पर सोये हुए थे। वह पर्वत माधवी (= वासन्ती) जूही और चम्पा के पराग से रञ्जित था ।।१६।।

तत्र कुत्रचिदाभोगसर्वर्तुकुसुमद्रुमे।
अपश्यदाश्रमं दिव्यमगस्त्यस्य महामुनेः।।१७।।

भावार्थ : अगस्त्य आश्रम का वर्णन— रेणुक ने वहाँ समस्त ऋतुओं के फूलों वाले वृक्षों से भरा हुआ महामुनि अगस्त्य का दिव्य विशाल आश्रम देखा ।।१७।।

मन्दारचन्दनप्रायैर्मण्डितं तरुमण्डलैः।
शाखाशिखरसंलीनतारकागणकोरकैः ।।१८।।

भावार्थ : वह आश्रम कल्पवृक्ष चन्दन आदि के वृक्षों से भरा हुआ था। उन पेड़ों की चोटियों पर लगी कलियाँ ऐसी लगती थीं मानो वहाँ तारायें जुड़ी हुई हों ।।१८।।

मुनिकन्याकरानीतकलशाम्बुविवर्धितैः।
आलवालजलास्वादमोदमानमृगीगणैः।।१९।।

भावार्थ : वे वृक्ष मुनिकन्याओं के हाथों द्वारा लाये गये कलशाम्बु से वर्द्धित किये गये थे। मृगियों का समूह उनके थालों में भरे पानी को पीकर प्रसन्न हुआ करता था ॥१९॥

हेमारविन्दनिष्यन्दमकरन्दसुगन्धिभिः।
मरालालापवाचालुवीचिमालामनोहरैः॥२०॥

भावार्थ : स्वर्णकमल से गिरने वाले पराग से सुगन्धयुक्त वह आश्रम हंसों की ध्वनितरङ्गों से अत्यन्त मनोहर था ॥२०॥

इन्दीवरवरज्योतिरन्धीकृतहरिन्मुखैः।
लोपामुद्रापदन्यासचरितार्थतटाङ्कितैः॥२१॥

भावार्थ : उस आश्रम की दिशायें नीलकमल की ज्योति से मानो अन्धकारमय अर्थात् नीली हो गयी थी। तालाब के किनारे लोपामुद्रा[1] के पदचिह्नों से अंकित थे ॥२१॥

हारनीहारकर्पूरहरहासामलोदकैः।
नित्यनैमित्तिकस्नाननियमार्थैस्तपस्विनाम्॥२२॥

भावार्थ : उस तालाब का जल हार बर्फ कपूर अथवा शिव के हास के समान स्वच्छ था। वह तपस्वियों के नित्य नैमित्तिक स्नान एवं नियमों के प्रयोजन वाला था अर्थात् तपस्वी लोग उस जल से नित्य कर्म किया करते थे ॥२२॥

प्रकृष्टमणिसोपानैः परिवीतं सरोवरैः।
विमुक्तसत्त्ववैरस्यं ब्रह्मलोकमिवापरम्॥२३॥

भावार्थ : उत्तम मणियों से बनी सीढ़ियों से वे तालाब घिरे हुए थे। वह आश्रम प्राणियों के वैरभाव से मुक्त द्वितीय ब्रह्मलोक के समान था ॥२३॥

हूयमानाज्यसन्तानधूमगन्धिमहास्थलम्।
शुकसंसत्समारब्धश्रुतिशास्त्रोपबृंहणम्॥२४॥

भावार्थ : वहाँ की भूमि हवन किये जा रहे घी के धूम से महासुगन्धयुक्त थी। वहाँ के शुक समाज के द्वारा पढ़े गये वेदों से वह आश्रम व्याप्त था ॥२४॥

---

१. लोपामुद्रा अगस्त्य की पत्नी थीं। लोपामुद्रा को षोडशी (= त्रिपुर सुंदरी) की आराधनविधि उनके पिता से प्राप्त हुई थी। इस विधि को अगस्त्य ने लोपमुद्रा से प्राप्त किया था।

तस्य मध्ये समासीनं मूले चन्दनभूरुहः।
सुकुमारदलच्छायादूरितादित्यतेजसः ।।२५।।

भावार्थ : अगस्त्य सौन्दर्यवर्णन— उस आश्रम के मध्य में सुकुमार पत्तों की छाया के द्वारा सूर्य के प्रकाश तथा आतप को दूर करने वाले चन्दनवृक्ष के नीचे बैठे हुए अगस्त्य को रेणुक ने देखा ।।२५।।

तडित्पिङ्गजटाभारैस्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकैः ।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गैः स्फुरद्रुद्राक्षभूषणैः।।२६।।

नववल्कलवासोभिर्नानानियमधारिभिः ।
परिवीतं मुनिगणैः प्रमथैरिव शङ्करम्।।२७।।

भावार्थ : विद्युत् की भाँति पीली जटाओं वाले, त्रिपुण्ड्र से चिह्नित मस्तक वाले, समस्त अंगों में भस्म रमाये हुए, रुद्राक्ष का आभूषण पहने हुए, नवीन वल्कल का वस्त्र धारण किये हुए, अनेक नियमों का पालन करने वाले मुनिसमूहों से वे अगस्त्य ऋषि घिरे हुए थे। लगता था प्रमथगणों से घिरे हुए भगवान् शंकर हों ।।२६-२७।।

समुज्ज्वलजटाजालैस्तपःपादपपल्लवैः।
स्फुरत्सौदामिनीकल्पैर्ज्वालाजालैरिवानलम्।।२८।।

भावार्थ : तपस्यारूपी वृक्ष के पल्लव के समान चमकती हुई बिजली के सदृश उज्वल जटाओं से वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो ज्वालाजाल से परिवृत अग्नि हो ।।२८।।

विशुद्धभस्मकृतया त्रिपुण्ड्राङ्कितरेखया।
त्रिस्रोतसेव सम्बद्धशिलाभागं हिमाचलम्।।२९।।

भावार्थ : विशुद्ध भस्म से बनी त्रिपुण्ड्र की तीन रेखाओं से वे गङ्गा के तीन स्रोतों से सम्बद्ध शिला वाले हिमालय के समान लग रहे थे ।।२९।।

भस्मालङ्कृतसर्वाङ्गं शशाङ्कमिव भूगतम्।
वसानं वल्कलं नव्यं बालातपसमप्रभम्।।३०।।

भावार्थ : उनका समस्त शरीर भस्म से अलङ्कृत था। लगता था कि चन्द्रमा पृथिवी पर उतर आया हो। वे बालसूर्य की किरणों के सदृश कान्तिमान् नवीन वल्कल पहन रखे थे ।।३०।।

वडवाग्निशिखाजालसमालीढमिवार्णवम्।
सर्वासामपि विद्यानां समुदायनिकेतनम्।।३१।।

भावार्थ : वाडवाग्नि की शिखाओं से व्याप्त समुद्र की भाँति लग रहे थे अगस्त्य समस्त विद्याओं के समुदाय के आश्रय थे ॥३१॥

न्यक्कृतप्राकृताहन्तं निरूढशिवभावनम्।
तृणीकृतजगज्जालं सिद्धीनामुदयस्थलम्।।३२।।

भावार्थ : प्राकृत (=सामान्य जनों से वर्त्तमान अथवा प्रकृति तत्त्व से उत्पन्न) अहङ्कार से रहित, शिवभावना में दृढ़ वे अगस्त्य संसार को तृणवत् समझने वाले तथा सिद्धियों के उद्गम थे ॥३२॥

मोहान्धकारतपनं मूलबोधमहीरुहम्।
ददर्श स महायोगी मुनिं कलशसंभवम्।।३३।।

भावार्थ : मोहरूपी अन्धकार के लिये सूर्य के समान, बोधरूपी वृक्ष के मूलस्वरूप तथा कुम्भ से उत्पन्न उन अगस्त्य को उस महायोगी रेणुक ने देखा ॥३३॥

तमागतं महासिद्धं समीक्ष्य कलशोद्भवः।
गणेन्द्रं रेणुकाभिख्यं विवेद ज्ञानचक्षुषा।।३४।।

भावार्थ : कुम्भज ऋषि ने उन महासिद्ध को आया हुआ देख कर अपनी दिव्य दृष्टि से उनको रेणुक नामक गणेश्वर समझा ॥३४॥

तस्यानुभावं विज्ञाय सहसैव समुत्थितः।
लोपामुद्राकरानीतैरुदकैरतिपावनैः ।।
पादौ प्रक्षालयामास स तस्य शिवयोगिनः।।३५।।

भावार्थ : उनके प्रभाव को जानकर वे अगस्त्य ऋषि सहसा खड़े हो गये और लोपामुद्रा के हाथों लाये गये अत्यन्त पवित्र जल से उन शिवयोगी रेणुक के पैरों का प्रक्षालन किया ॥३५॥

संपूज्य तं यथाशास्त्रं तन्नियोगपुरस्सरम्।
मुनिर्विनयसम्पन्नो निषसादासनान्तरे।।३६।।

भावार्थ : विनयसम्पन्न मुनि अगस्त्य उनकी शास्त्रविधि के अनुसार पूजा कर उनकी आज्ञा से दूसरे आसन पर बैठ गये ॥३६॥

रेणुकागस्त्यसंवादः

समासीनं मुनिवरं सर्वतेजस्विनां विभुम्।
उवाच शान्तया वाचा रेवणः सिद्धशेखरः।।३७।।

भावार्थ : रेणुक-अगस्त्य संवाद— समस्त तेजस्वियों में श्रेष्ठ ऋषिवर को बैठाकर सिद्धशेखर रेणुकाचार्य ने शान्त वाणी से कहा ॥३७॥

निर्विघ्नं वर्तसे किं नु नित्या ते नियमक्रिया।
अथ वाऽगस्त्य तेजस्विन् कुतः स्युस्तेऽन्तरायकाः॥३८॥

भावार्थ : हे तेजस्विन् अगस्त्य! आप निर्विघ्न रह रहे हैं क्या? आपकी नित्य क्रियायें नियमपूर्वक निर्विघ्न चल रही हैं क्या? अथवा आपको विघ्न कहाँ से आ सकता है? ॥३८॥

विन्ध्यो निरुद्धो[1] भवता विश्वोल्लङ्घनविभ्रमः।
नहुषो रोषलेशात् ते सद्यः सर्पत्वमागतः[2]॥३९॥

भावार्थ : आपने विश्वोल्लङ्घन का साहस करने वाले विन्ध्याचल को रोक दिया। आपके रंचमात्र क्रोध से नहुष सर्प बन गये ॥३९॥

आचान्ते भवता पूर्वं पङ्कशेषाः पयोधयः[3]।
जीर्णस्ते जाठरे वह्नौ दृप्तो वातापिदानवः[4]॥४०॥

---

१. देवताओं द्वारा सुमेरु एवं हिमालय का आदर देखकर विन्ध्याचल ने अपने को अपमानित समझा। वह इतना ऊँचा हुआ कि सूर्य का परिभ्रमण रुक गया। देवताओं ने अगस्त्य से प्रार्थना की। अगस्त्य विन्ध्याचल के पास गये। जब विन्ध्याचल ने उनको साष्टांग प्रणाम किया तब अगस्त्य ने कहा— जब तक मैं वापस न आऊँ इसी तरह रहना। यह कहकर अगस्त्य दक्षिण दिशा में चले गये और लौटकर नहीं आये। फलतः विन्ध्याचल साष्टांग प्रणाम मुद्रा में आज भी है।

२. राजा नहुष सौ अश्वमेध यज्ञ कर इन्द्र का स्थान प्राप्त किये। उनके मन में इन्द्राणी से मिलने की इच्छा हुई। शची ने नहुष का सन्देश सुनकर कहा कि यदि नहूष ऋषियों के द्वारा ढोयी जाने वाली पालकी में बैठकर आयें तो मैं उनका स्वागत करूँगी। कामान्ध नहुष सप्तऋषियों के द्वारा ढोयी जा रही पालकी में बैठकर जा रहे थे। अत्यन्त व्यग्र होकर उन्होंने सप्तर्षियों से कहा— 'सर्प सर्प' अर्थात् जल्दी चलो, जल्दी चलो। 'सर्प' शब्द सुनकर अगस्त्य ने क्रुद्ध होकर कहा— 'सर्प सर्प कह रहा है जा सर्प हो जा' और नहुष सर्प हो गये।

३. एक बार समुद्र टिटिहरी नामक पक्षी के अण्डे बहा ले गया। टिटिहरी दम्पती दुःखी होकर समुद्र को जल विहीन करने के लिये एक चोंच पानी समुद्र से बाहर लाते और एक चोंच मिट्टी समुद्र में डालते। अगस्त्य को उन पक्षियों पर दया आ गयी। उन्होंने अंजलि भर में समुद्र का पानी पीकर अण्डों को वापस दिलवाया।

४. अतापी, वातापी नामक दो राक्षस माया से अपने को खाद्य पदार्थ बना लेते थे और जब ऋषि लोग उस पदार्थ को खाते तो वे दोनों पेट फाड़कर बाहर आ जाते और ऋषि मर जाते। अगस्त्य इस रहस्य को जान गये। उन्होंने उनका खाद्य रूप में भक्षण किया और अपनी जठराग्नि से पेट में ही उनको जला ड़ाला।

भावार्थ : प्राचीन काल में आपने समुद्रों को पी लिया और उनमें कीचड़ शेष रह गया। भयंकर मदमत्त वातापी राक्षस को आपने अपनी जठराग्नि में जला दिया ।।४०।।

एवंविधानां चित्राणां सर्वलोकातिशायिनाम्।
कृत्यानां तु भवान् कर्ता कस्तेऽगस्त्य समप्रभः।।४१।।

भावार्थ : आप इस प्रकार के लोकोत्तर कार्यों को करने वाले हैं। हे अगस्त्य ! आपके समान कौन तेजस्वी है? अर्थात् कोई नहीं ।।४१।।

शिवाद्वैतपरानन्दप्रकाशनपरायणम्　　।
भवन्तमेकं शंसन्ति प्रकृत्या सङ्गवर्जितम् ।।४२।।

भावार्थ : लोग आपको एकमात्र शिवाद्वैत परानन्द के प्रकाशन में संलग्न और स्वभावतः आसक्तिरहित के रूप में प्रशंसा करते हैं ।।४२।।

पुरा　हैमवतीसूनुरवदत्　ते　षडाननः।
शिवधर्मोत्तरं　नाम　शास्त्रमीश्वरभाषितम्।।४३।।

भावार्थ : प्राचीन काल में पार्वतीपुत्र षडानन ने आपको शिवभाषित शिवधर्मोत्तर नामक शास्त्र का उपदेश किया ।।४३।।

भक्तिः शैवी महाघोरसंसारभयहारिणी।
त्वया राजन्वती लोके जाताऽगस्त्य महामुने।।४४।।

भावार्थ : हे महामुनि अगस्त्य ! इस लोक में महाघोर संसार के भय का अपहरण करने वाली शैवी भक्ति आपके ही कारण राजन्वती (=धर्मात्मा राजाओं के द्वारा शिरोधृत अथवा सम्यक् प्रकाशमान्) है ।।४४।।

अगस्त्यमुनिवचनम्

इति तस्य वचः श्रुत्वा सिद्धस्य मुनिपुङ्गवः।
गम्भीरगुणया वाचा बभाषे भक्तिपूर्वकम्।।४५।।

भावार्थ : अगस्त्य वचन— मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य उन रेणुकाचार्य की यह बात सुनकर भक्ति के साथ गम्भीर वाणी में बोले ।।४५।।

अहमेव मुनीन्द्राणां लालनीयोऽस्मि सर्वदा।
भवदागमसम्पत्तिर्मां विना कस्य संभवेत्।।४६।।

भावार्थ : (हे आचार्यवर !) आपके आगमन रूपी सम्पत्ति मेरे अतिरिक्त और किसके पास सम्भव है। इस कारण मैं सर्वदा मुनियों के बीच आदर का पात्र रहता हूँ ।।४६।।

स्थिरमद्य शिवज्ञानं स्थिरा मे तापसक्रिया।
भवद्दर्शनपुण्येन स्थिरा मे मुनिराजता।।४७।।

भावार्थ : आपके दर्शनजन्य पुण्य से आज मेरा शिवज्ञान स्थिर हो गया है। मेरी तपस्या भी स्थिर है और मुनियों के बीच मेरी राजतुल्यता भी स्थिर हो गयी है अर्थात् मैं सदा के लिये ऋषिश्रेष्ठ हो गया ।।४७।।

संसारसर्पदष्टानां मूर्च्छितानां शरीरिणाम्।
कटाक्षस्तव कल्याणं समुज्जीवनभेषजम्।।४८।।

भावार्थ : (हे आचार्यप्रवर!) संसाररूपी सर्पों से दष्ट (=काटे गये अत एव) मूर्च्छा को प्राप्त मनुष्यों के लिये आपकी कृपादृष्टि (कल्याणकारिणी तथा सञ्जीवनी औषधि है ।।४८।।

समस्तलोकसन्दाहतापत्रयमहानलः।
त्वत्पदाम्बुकणास्वादादुपशाम्यति देहिनाम्।।४९।।

भावार्थ : समस्त लोकों को जलाने वाला तथा जीवों के लिये तापत्रयरूपी महा अनल आपके चरणोदक की एक बूँद पीने से शान्त हो जाता है ।।४९।।

रेणुकं त्वां विजानामि गणनाथं शिवप्रियम्।
अवतीर्णमिमां भूमिं मदनुग्रहकाङ्क्षया।।५०।।

भावार्थ : (मैं) आपको गणों के स्वामी शिव के प्रिय रेणुक के रूप में जानता हूँ। आप मेरे ऊपर कृपा करने की इच्छा से इस धरती पर अवतार लिये हैं ।।५०।।

भवादृशानां सिद्धानां प्रबोधध्वस्तजन्मनाम्।
प्रवृत्तिरीदृशी लोके परानुग्रहकारिणी।।५१।।

भावार्थ : (शिव) बोध के द्वारा ध्वस्त जन्म वाले आप जैसे सिद्धों की लोगों के विषय में प्रवृत्ति ही इस प्रकार की परानुग्रहकारिणी होती है ।।५१।।

त्वन्मुखाच्छ्रोतुमिच्छामि सिद्धान्तं श्रुतिसंमतम्।
सर्वज्ञ वद मे साक्षाच्छैवं सर्वार्थसाधकम्।।५२।।
सद्यः सिद्धिकरं पुंसां सर्वयोगीन्द्रसेवितम्।
दुराचारैरनाघ्रातं स्वीकृतं वेदवेदिभिः।।
शिवात्मैक्यमहाबोधसम्प्रदायप्रवर्तकम्।।५३।।

भावार्थ : (मैं) आपके मुख से वेदसम्मत शिवाद्वैत सिद्धान्त को सुनना चाहता हूँ। हे सर्वज्ञ ! आप मुझे साक्षात् सर्वार्थसाधक, मनुष्यों के लिये सद्यः सिद्धिप्रद, समस्त

योगीन्द्रों के द्वारा सेवित, दुराचारियों से अस्पृष्ट, वेदवेत्ताओं के द्वारा स्वीकृत तथा शिवजीवैक्य महाज्ञान वाले सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक शिवाद्वैत सिद्धान्त को बतलाइये ।।५२-५३।।

उक्त्वा भवान् सकललोकमहोपकारं
सिद्धान्तसंग्रहमनादृतबाह्यतन्त्रम् ।
सद्यः कृतार्थयितुमर्हति दिव्ययोगिन्
नानागमश्रवणवर्तितसंशयं माम्।।५४।।

भावार्थ : हे दिव्ययोगिन् ! आप सकल लोक के उपकारक (वेद)-बाह्य तन्त्रों[१] का अनादर करने वाले सिद्धान्तसंग्रह को बतलाकर विभिन्न आगमों के श्रवण के कारण संशयग्रस्त मुझे सद्यः कृतकृत्य कीजिये ।।५४।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ श्रीरेणुकागस्त्यसम्भाषणप्रसङ्गोनाम चतुर्थः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के रेणुकागस्त्यसंभाषण नामक चतुर्थ परिच्छेद की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदिकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।४।।

०००

पञ्चम: परिच्छेद:

श्रीरेणुकाचार्य द्वारा अगस्त्य ऋषि को तत्त्वोपदेश

अथागस्त्यवच: श्रुत्वा रेणुको गणनायक:।
ध्यात्वा क्षणं महादेवं साम्बमाह समाहित:।।१।।

भावार्थ : **रेणुकाचार्य द्वारा अगस्त्य ऋषि को तत्त्वोपदेश**— इसके बाद गणाधिपति रेणुकाचार्य अगस्त्य ऋषि के वचन को सुनकर शान्तचित्त हो माता पार्वती सहित महादेव का एक क्षण ध्यान कर बोले ।।१।।

अगस्त्य मुनिशार्दूल समस्तागमपारग।
शिवज्ञानकरं वक्ष्ये सिद्धान्तं शृणु सादरम्।।२।।

भावार्थ : हे समस्त आगमों के पारगामी मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य ! मैं आपको शिवज्ञानदायक सिद्धान्त बतलाऊँगा। आदर के साथ सुनिये ।।२।।

अगस्त्य खलु सिद्धान्ता विख्याता रुचिभेदत:।
भिन्नाचारसमायुक्ता भिन्नार्थप्रतिपादका:।।३।।

भावार्थ : हे अगस्त्य ! रुचि भेद के अनुसार भिन्न आचार वाले तथा भिन्न विषयों के प्रतिपादक (अनेक) सिद्धान्त (संसार में) विख्यात हैं ।।३।।

सांख्यं योग: पाञ्चरात्रं वेदा: पाशुपतं तथा।
एतानि मानभूतानि नोपहन्यानि युक्तिभि:।।४।।

भावार्थ : सांख्य योग पाञ्चरात्र वेद पाशुपत ये सब प्रामाणिक दर्शन है। तर्क के द्वारा इनका खण्डन नहीं करना चाहिये।

विशेष : सांख्य दर्शन कपिल मुनि प्रवर्तित है। द्वैतवादी यह दर्शन सृष्टि के मूल में प्रकृति और पुरुष दो तत्त्वों को मानता है। दोनों नित्य है। यह अनीश्वर सांख्य है। योग को सेश्वर सांख्य कहा जाता है। इसके प्रवर्त्तक वैसे तो हिरण्यगर्भ है किन्तु दर्शन के रूप में पतञ्जलि को इसका प्रवर्त्तक माना गया है। पाञ्चरात्र श्रीकृष्ण द्वारा प्रवर्त्तित वैष्णव दर्शन है। यह चित् अचित् और ईश्वर तीन पदार्थों को मुख्य मानता है। पाशुपत मत शिवप्रणीत है। इसमें पशु, पति और पाश तीन मुख्य विषयों की चर्चा है। वेद शिव के स्वाभाविक नि:श्वास है। इसका पूर्वकाण्ड जैमिनिद्वारा प्रवर्त्तित मीमांसा शास्त्र

है। जो याग आदि कर्म में उत्पन्न अदृष्ट को ही संसार का कारण मानता है। ईश्वर की सत्ता इसको स्वीकार्य नहीं है। ये सब प्रामाणिक शास्त्र है क्योंकि पुष्पदन्ताचार्य ने शिवमहिम्नस्तोत्र में 'त्रयी सांख्यं योग: पशुपतिमतं वैष्णवमिति' कहकर इनके प्रामाण्य का समर्थन किया है ।।४।।

वेद: प्रधानं सर्वेषां सांख्यादीनां महामुने।
वेदानुसरणादेषां प्रामाण्यमिति निश्चितम्।।५।।

भावार्थ : हे महामुने, वेद सांख्य आदि समस्त शास्त्रों में प्रधान है। वेद का अनुसरण करने के कारण इन सांख्य आदि का प्रामाण्य निश्चित किया गया है ।।५।।

पाञ्चरात्रस्य सांख्यस्य योगस्य च तथा मुने।
वेदैकदेशवर्तित्वं शैवं वेदमयं मतम्।।६।।

भावार्थ : हे मुने, पाञ्चरात्र सांख्य और योग ये वेद के एक भाग को मानते हैं अत: वे अंशत: वैदिक या अर्धदैविक हैं किन्तु शैवसिद्धान्त पूर्णतया वेदमय अर्थात् पूर्णवैदिक है ।।६।।

वेदैकदेशवर्तिभ्य: सांख्यादिभ्यो महामुने।
सर्ववेदानुसारित्वाच्छैवतन्त्रं विशिष्यते।।७।।

भावार्थ : हे महामुने, वेद के एक भाग को मानने वाले सांख्य आदि की अपेक्षा सम्पूर्ण वेद का अनुसरण करने वाला होने के कारण शैवतन्त्र अर्थात् शैवशास्त्र विशिष्ट है ।।७।।

शैवतन्त्रमिति प्रोक्तं सिद्धान्ताख्यं शिवोदितम्।
सर्ववेदार्थरूपत्वात् प्रामाण्यं वेदवत् सदा।।८।।

भावार्थ : शिव के द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्त नामक तन्त्र ही शैवतन्त्र कहा गया है। सम्पूर्ण वेदों का तात्पर्यरूप होने के कारण इसका प्रामाण्य सदा वेद के समान हैं ।।८।।

आगमा बहुधा प्रोक्ता: शिवेन परमात्मना।
शैवं पाशुपतं सोमं लाकुलं चेति भेदत:।।९।।

भावार्थ : परमात्मा शिव ने शैव पाशुपत सोम लाकुल भेद से अनेक प्रकार के आगमों का उपदेश किया है ।।९।।

तेषु शैवं चतुर्भेदं तन्त्रं सर्वविनिश्चितम्।
वामं च दक्षिणं चैव मिश्रं सिद्धान्तसंज्ञकम्।।१०।।

भावार्थ : उनमें से शैवतन्त्र वाम दक्षिण मिश्र और सिद्धान्त नाम से चार प्रकार का है ऐसा सबका निश्चय है ॥१०॥

शक्तिप्रधानं वामाख्यं दक्षिणं भैरवात्मकम्।
सप्तमातृपरं मिश्रं सिद्धान्तं वेदसंमतम्।।११।।

भावार्थ : वाम नामक तन्त्र शक्ति को प्रधानता देता है। दक्षिण तन्त्र भैरवप्रधान है। मिश्र तन्त्र सप्तमातृकाप्रधान है और सिद्धान्त तन्त्र वेदसम्मत है ॥११॥

वेदधर्माभिधायित्वात् सिद्धान्ताख्यः शिवागमः।
वेदबाह्यविरोधित्वाद् वेदसंमत उच्यते।।१२।।

भावार्थ : सिद्धान्त नामक शिवागम वेदोक्त धर्म का प्रतिपादक तथा वेदबाह्य का विरोधी होने के कारण वेदसम्मत कहा जाता है ॥१२॥

वेदसिद्धान्तयोरैक्यमेकार्थप्रतिपादनात् ।
प्रामाण्यं सदृशं ज्ञेयं पण्डितैरेतयोः सदा।।१३।।

भावार्थ : एक अर्थ अर्थात् समान विषय का प्रतिपादन करने के कारण पण्डित लोगों को वेद और शैवसिद्धान्त इन दोनों का प्रामाण्य एक समान समझना चाहिये ॥१३॥

सिद्धान्ताख्ये महातन्त्रे कामिकाद्ये शिवोदिते।
निर्दिष्टमुत्तरे भागे वीरशैवमतं परम्।।१४।।

भावार्थ : शिव के द्वारा उपदिष्ट कामिक से लेकर (वातुल तक के) सिद्धान्त नामक महातन्त्र के उत्तर भाग में उत्कृष्ट वीरशैव मत का प्रतिपादन किया गया है (और पूर्वभाग शैवमत का प्रतिपादक है) ॥१४॥

विद्यायां शिवरूपायां विशेषाद् रमणं यतः।
तस्मादेते महाभागा वीरशैवा इति स्मृताः।।१५।।

भावार्थ : चूँकि शिवरूपा विद्या में विशेष रमण होता है इसलिये ये (वि=विशेष, र=रमण अर्थात् विशेष रमण करने वाले) महाभाग्यशाली लोग वीरशैव कहे जाते हैं ॥१५॥

वीशब्देनोच्यते विद्या शिवजीवैक्यबोधिका।
तस्यां रमन्ते ये शैवा वीरशैवास्तु ते मताः।।१६।।

भावार्थ : (अथवा) 'वी' शब्द से शिवजीव की ऐक्यरूपा विद्या कही जाती है। जो शैव उसमें 'र' अर्थात् रमण करते हैं वे वीरशैव माने गये हैं ॥१६॥

विद्यायां रमते यस्मान्मायां हेयां श्ववद्रहेत्।
अनेनैव निरुक्तेन वीरमाहेश्वरः स्मृतः।।१७।।

भावार्थ : चूँकि विद्या में रमण करता है और माया का कुत्ते की तरह त्याग करता है इस निरुक्ति से (वह वीरशैव) वीर माहेश्वर[1] कहा जाता है ।।१७।।

वेदान्तजन्यं यज्ज्ञानं विद्येति परिकीर्त्यते।
विद्यायां रमते तस्यां वीर इत्यभिधीयते।।१८।।

भावार्थ : (अथवा) जो ज्ञान वेदान्त से उत्पन्न होता है वह विद्या कहा जाता है। उस विद्या में जो साधक रमण करता है वह 'वीर' कहलाता है ।।१८।।

शैवैर्माहेश्वरैश्चैव कार्यमन्तर्बहिःक्रमात्।
शिवो महेश्वरश्चेति नात्यन्तमिह भिद्यते।।१९।।

भावार्थ : वीरशैव व वीरमाहेश्वर इन दोनों के क्रिया में भेद होता है, वीरशैव आन्तरिक क्रिया को महत्त्व देते हैं, वीरमाहेश्वर बाह्यक्रिया को महत्त्व देता है। दोनों के क्रिया में भेद होते हुए भी दोनों की लिंगार्चन पद्धति एक ही है। जैसे निष्कल-शिव और महेश्वर-सकल-सदाशिव ही एक ही परशिव के रूप हैं, इनके उपासकों के नाम भिन्न होते हुए इनका उपासना का लक्ष्य एक ही होता है ।।१९।।

यथा तथा न भिद्यन्ते शैवा माहेश्वरा अपि।
शिवाश्रितेषु ते शैवा ज्ञानयज्ञरता नराः।।२०।।

भावार्थ : शैव और माहेश्वर दोनों के द्वारा लिङ्गार्चन क्रमशः (हृदय के) अन्दर और बाहर करना चाहिये। जिस प्रकार शिव और माहेश्वर में आत्यान्तिक भेद नहीं है। उसी प्रकार शैवों और माहेश्वरों में भी (ऐकान्तिक) भेद नहीं है ।।२०।।

माहेश्वराः समाख्याताः कर्मयज्ञरता भुवि।
तस्मादाभ्यन्तरे कुर्युः शैवा माहेश्वरा बहिः।।२१।।

भावार्थ : शिवाश्रितों में जो लोग ज्ञानयज्ञ में लगे रहते हैं वे शैव (कहे जाते) हैं। जो पृथ्वी पर कर्मयज्ञ में संलग्न रहते हैं वे माहेश्वर कहे जाते हैं। इस कारण शैव लोग आभ्यन्तर अर्थात् ज्ञानयज्ञ करें तथा माहेश्वर साधक बाह्य अर्थात् कर्मयज्ञ करें ।।२१।।

विशेष : जिस प्रकार पक्षी आकाश में एक पङ्ख से नहीं उड़ सकता उसी प्रकार शिवत्त्वलाभ केवल ज्ञान या केवल क्रिया से नहीं हो सकता। अज्ञानी पुरुष अन्धे के समान और क्रियारहित पुरुष पङ्गुवत् होता है। संसाराग्नि में दोनों जल जाते हैं।

---

१. वी=विद्या, र=रमण, मा=माया, हे=त्या ('ओहाक्' त्यागे), श्व=कुत्ता, र=देना=त्यागना।

वीरशैवाः षड्भेदाः

वीरशैवास्तु षड्भेदाः स्थलधर्मविभेदतः।
भक्तादिव्यवहारेण प्रोच्यन्ते शास्त्रपारगैः।।२२।।

भावार्थ : वीरशैव-भेद-निरूपण - षट्स्थल और उनके आचार के भेद के कारण भक्त (माहेश्वर) आदि के व्यवहार से शास्त्रपण्डितों ने वीरशैव के छह भेद बतलाये हैं ॥२२॥

शास्त्रं तु वीरशैवानां षड्विधं स्थलभेदतः।
धर्मभेदसमायोगाद् अधिकारिविभेदतः।।२३।।

भावार्थ : स्थल भेद तथा धर्म भेद सहित अधिकारी के भेद से वीरशैवों का शास्त्र छह प्रकार का है ॥२३॥

आदौ भक्तस्थलं प्रोक्तं ततो माहेश्वरस्थलम्।
प्रसादिस्थलमन्यत्तु प्राणलिङ्गिस्थलं ततः।।२४।।
शरणस्थलमाख्यातं षष्ठमैक्यस्थलं मतम्।

भावार्थ : पहला भक्तस्थल इसके बाद माहेश्वरस्थल फिर प्रसादिस्थल तत्पश्चात् प्राणलिङ्गिस्थल, शरणस्थल और छठवाँ ऐक्यस्थल माना गया है ॥२४॥

अंगस्थलान्तर्गत
भक्तस्थलम्

भक्तस्थलं प्रवक्ष्यामि प्रथमं कलशोद्भव।
तदवान्तरभेदांश्च समाहितमनाः शृणु।।२५।।

भावार्थ : भक्तस्थल-वर्णन - हे कुम्भज ! (मैं) पहले भक्तस्थल और उसके अवान्तर भेदों को बतलाऊँगा। स्थिरचित होकर सुनो ॥२५॥

शैवी भक्तिः समुत्पन्ना यस्यासौ भक्त उच्यते।
तस्यानुष्ठेयधर्माणामुक्तिर्भक्तस्थलं मतम्।।२६।।

भावार्थ : जिसके अन्दर शिव के प्रति भक्ति उत्पन्न होती है वह भक्त कहा जाता है। उनके अनुष्ठेय धर्मों का प्रतिपादन करने वाला स्थल भक्तस्थल माना गया है ॥२६॥

अवान्तरस्थलान्यत्र प्राहुः पञ्चदशोत्तमाः।
पिण्डता पिण्डविज्ञानं संसारगुणहेयता।।२७।।

दीक्षा लिङ्गधृतिश्चैव विभूतेरपि धारणम्।
रुद्राक्षधारणं पश्चात् पञ्चाक्षरजपस्तथा।।२८।।

भक्तमार्गक्रिया चैव गुरोर्लिङ्गस्य चार्चनम्।
जङ्गमस्य तथा ह्येषां प्रसादस्वीकृतिस्तथा।।२९।।

अत्र दानत्रयं प्रोक्तं सोपाधि निरुपाधिकम्।
सहजं चेति निर्दिष्टं समस्तागमपारगैः।।३०।।

एतानि शिवभक्तस्य कर्तव्यानि प्रयत्नतः।

भावार्थ : विद्वान् लोग इस भक्तस्थल के पन्द्रह अवान्तर स्थल (भेद) बतलाये हैं। वे हैं - (१) पिण्ड स्थल, (२) पिण्डज्ञान स्थल, (३) संसारहेय स्थल, (४) दीक्षाप्राप्तिरूप गुरुकारुण्य स्थल, (५) लिङ्गधारण स्थल, (६) विभूतिधारण स्थल, (७) रुद्राक्षधारण स्थल, (८) पञ्चाक्षरजप स्थल, (९) भक्तमार्गक्रिया स्थल, (१०) उभयस्थल अर्थात् गुरु और शिवलिंग की पूजा रूप उभयस्थल, (११) त्रिविध सम्पत्ति का स्थल, (१२) चतुर्विधसाराय स्थल इनकी प्रसाद स्वीकृति। तीन प्रकार के दान कहे गये हैं (१३) सोपाधिदान स्थल, (१४) निरुपाधिक स्थल और (१५) सहजदान स्थल। ऐसे पन्द्रह अवान्तर स्थल समस्त आगमिक विद्वानों द्वारा निर्दिष्ट किये गये हैं। शिव भक्त को चाहिये कि वह प्रयत्नपूर्वक इनका अभ्यास कर आचारण करे ॥२७-३१॥

पिण्डस्थलम् – (१)

बहुजन्मकृतैः पुण्यैः प्रक्षीणे पापपञ्जरे।।३१।।
शुद्धान्तःकरणो देही पिण्डशब्देन गीयते ।

भावार्थ : अनेक जन्मों में अर्जित पुण्यों के द्वारा जब पापपञ्जर नष्ट हो जाता है तब शुद्ध अन्तःकरण से संलग्न जीव पिण्ड कहलाता है ॥३१॥

विशेष - जिस प्रकार एक गमन क्रिया दो पैरों से, एक दर्शन क्रिया दो आँखों से होती है उसी प्रकार एक आत्मलाभ गुरूपदेश और स्वानुभाव दोनों के द्वारा सम्पादित होती है ।

शिवशक्तिसमुत्पन्ने प्रपञ्चेऽस्मिन् विशिष्यते।।३२।।
पुण्याधिकः क्षीणपापः शुद्धात्मा पिण्डनामकः।

भावार्थ : शिव और शक्ति से उत्पन्न इस प्रपञ्च (=संसार) में पापरहित तथा अधिक पुण्य वाला पिण्ड नामक शुद्ध आत्मा सबसे विलक्षण होता है ॥३२-३३॥

एक एव शिवः साक्षाच्चिदानन्दमयो विभुः।।३३।।

निर्विकल्पो निराकारो निर्गुणो निष्प्रपञ्चकः।
अनाद्यविद्यासम्बन्धात्तदंशो जीवनामकः।।३४।।

देवतिर्यङ्मनुष्यादिजातिभेदे व्यवस्थितः।
मायी महेश्वरस्तेषां प्रेरको हृदि संस्थितः।।३५।।

भावार्थ : शिव एक ही है। वह साक्षात् चित् आनन्दमय व्यापक निर्विकल्प निराकार निर्गुण तथा प्रपञ्चरहित है। अनादि अविद्या के सम्बन्ध के कारण जीव नामक उसका अंश देव तिर्यक् मनुष्य आदि जातिभेद के रूप में स्थित है। उन (जीवों) का प्रेरक महेश्वर अर्थात् मायाशाली ईश्वन उनके हृदय में स्थित है ।।३४-३५।।

चन्द्रकान्ते यथा तोयं सूर्यकान्ते यथानलः।
बीजे यथाङ्कुरः सिद्धस्तथात्मनि शिवः स्थितः।।३६।।

भावार्थ : जिस प्राकार चन्द्रकान्त मणि में जल, सूर्यकान्त में अग्नि तथा बीज में अङ्कुर पहले से स्थित रहता है उसी प्रकार आत्मा में शिव स्थित रहते हैं ।।३६।।

आत्मत्वमीश्वरत्वं च ब्रह्मण्येकत्र कल्पितम्।
बिम्बत्वं प्रतिबिम्बत्वं यथा पूषणि कल्पितम्।।३७।।

भावार्थ : जिस प्रकार एक ही पूषा अर्थात् सूर्य में बिम्बत्व और प्रतिबिम्बत्व दोनों स्थित रहते हैं उसी प्रकार एक ही ब्रह्म में आत्मत्त्व और ईश्वरत्व दोनों कल्पित हैं (माया में प्रतिबिम्बित ब्रह्म ईश्वर तथा अविद्या में प्रतिबिम्बित ब्रह्म जीव कहलाता है।) ।।३७।।

गुणत्रयविभेदेन परतत्त्वे चिदात्मनि।
भोक्तृत्वं चैव भोज्यत्वं प्रेरकत्वं च कल्पितम्।।३८।।

भावार्थ : (सत्त्व रजस् और तमस् इन) तीन गुणों के भेद से चित्स्वरूप परतत्त्व में भोक्तृत्व भोज्यत्व और प्रेरकत्व कल्पित है वास्तविक नहीं ।।३८।।

गुणत्रयात्मिका शक्तिर्ब्रह्मनिष्ठा सनातनी।
तद्वैषम्यात् समुत्पन्ना तस्मिन् वस्तुत्रयाभिधा।।३९।।

भावार्थ : ब्रह्म में रहने वाली त्रिगुणात्मिका शक्ति सनातनी अर्थात् नित्य है। उन गुणों के वैषम्य से उस (=ब्रह्म) में तीन प्रकार के पदार्थ उत्पन्न होते हैं ।।३९।।

विशेष - श्लोक में 'ब्रह्मनिष्ठ' शक्ति का विशेषण है। उसका अर्थ है- ब्रह्म में स्थत। यह स्थिति ब्रह्म और शक्ति का संयोग रूप नहीं है क्योंकि संयोग दो पदार्थों या

किसी एक पदार्थ के अन्दर होने वाली क्रिया से उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त संयोग सम्बन्ध वस्तुद्वय के एक अंश में होता है। ब्रह्म न तो क्रियावान् है न सावयव। इसलिये यह स्थिति सामरस्यमयी है। ब्रह्म और शक्ति का सम्बन्ध अग्नि और उसकी उष्णता, चन्द्र और उसकी शीतलता के समान है। यह शक्ति ब्रह्म या शिव का स्वभाव है। इस विषय में भगवद्गीता का 'रसोऽहमप्सु कौन्तेय' इत्यादि वाक्य प्रमाण है।

परमेश्वर की शक्ति नित्य सनातनी ज्ञानक्रियासामरस्यस्वरूपा है। यह उसका स्वभाव या स्वातन्त्र्य है। परमेश्वर प्रकाशस्वरूप है। उसकी शक्ति इस प्रकाश का विमर्श है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में इसके स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया- 'इसकी परा शक्ति अनेक प्रकार से सुनी जाती है। ज्ञान बल क्रिया उसमें स्वभावतः रहते हैं।' प्रश्न यह है कि यदि वह शक्ति नित्य है तो उसमें संसार रचना कैसे होती है? उत्तर में कहा जा सकता है कि जैसे घी में काठिन्य आकस्मिक रूप से उत्पन्न होता है वैसे ही उसमें संसार की अभिव्यक्ति भी आकस्मिक होती है। उसके ज्ञानांश से सत्त्वगुणात्मिका विद्याशक्ति उत्पन्न होती है। क्रिया ज्ञान नहीं होती, ज्ञान क्रिया नहीं होता। इस प्रकार अन्योऽन्याभावबुद्धि उस परमेश्वर की तमोगुण शक्ति है। ये तीनों शक्तियाँ उसमें मयूराण्डरसन्यायेन प्रच्छन्न या सुप्त रहती हैं। अतः सांख्य के परिणामवाद का यहाँ अवकाश नहीं है।

प्रश्न है कि निरंश परमेश्वर की शक्ति भी निरंश है। फिर उससे अवयव वाली सृष्टि कैसे होती है? उत्तर है जिस प्रकाश निरंश परमाणु में संयोग सम्बन्ध बनने से द्व्यणुक त्रसरेणु आदि बनते हैं। उसी प्रकार यहाँ भी निरवयव से सावयव सृष्टि होती है। इसके अतिरिक्त परमेश्वर की शक्ति अघटित घटना पटीयसी है। वह असम्भव को भी सम्भव बनाती है और यही परमेश्वर का स्वातन्त्र्य है। प्रश्न है कि तब तो उसमें अविद्या भी नहीं रहेगी क्योंकि वह निरञ्जन और निरवद्य है? उत्तर है कि ऐसा मानने पर जीव और ईश्वर का भेद नहीं होगा। यदि कहिये कि यह विवेक प्रतिबिम्ब द्वारा होगा तो ऐसा सम्भव नहीं क्योंकि मुख और दर्पण दो की सत्ता होने पर ही बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होता है, परमेश्वर तो एक है? उत्तर है कि एक पदार्थ में भी बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव परमेश्वर के सामर्थ्यातिशय के कारण उसी प्रकार सम्भव है जैसे स्वच्छ आकाश में मलिनता आदि दृष्ट होती है। यह संसार उसकी इच्छा से अभिव्यक्त होता है। इसकी स्थिति तक ही शुद्धाशुद्धत्व की स्थिति रहती है। इसी स्थिति को ध्यान में रखकर कहा गया है -

जीव ईशो विशुद्धा चित् तथा जीवेशयोर्भिदा।
अविद्या तच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः॥

अन्तिम स्थिति में केवल परमेश्वर ही रहता है। जीव अविद्या आदि कुछ भी नहीं रहते। जब तक ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय यह त्रिपुटी बुद्धि रहता है तब तक सारे व्यवहार चलते रहते हैं। जब ज्ञेय का ज्ञान में और ज्ञान का ज्ञाता में लय हो जाता है तब ज्ञातृत्व भी नहीं रहता क्योंकि ज्ञातृत्व भी ज्ञेय-ज्ञान सापेक्ष है। इसलिये शुद्ध चित्स्वरूप परमतत्त्व ही शेष रह जाता है। इसलिये ब्रह्म या शिव के विषय में बाह्य प्रमाण समर्थ नहीं होते, स्वानुभव ही प्रमाण होता है। 'जन्माद्यस्य यत:' (ब्र०सू० १।१।२) 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' (ते०उ०) इत्यादि वाक्य मनुष्य को उसकी सांसारिक दशा में ब्रह्म के अस्तित्व का ज्ञान कराते हैं उसके स्वरूप को बोध उसकी विमर्शशक्ति रूपी कृपा की सहायता से होता है।

किञ्चित्सत्त्वरजोरूपं भोक्तृसंज्ञकमुच्यते।
अत्यन्ततामसोपाधिर्भोज्यमित्यभिधीयते।।
परतत्त्वमयोपाधिर्ब्रह्मचैतन्यमीश्वरः ।।४०।।

भोक्ता भोज्यं प्रेरयिता वस्तुत्रयमिदं स्मृतम्।
अखण्डे ब्रह्मचैतन्ये कल्पितं गुणभेदतः।।४१।।

भावार्थ : किञ्चित् सत्त्व और किञ्चित् रजोगुण के मिश्रण से उपहित चैतन्य भोक्ता कहा जाता है। परतत्त्वरूप सत्त्व की उपाधि से युक्त चैतन्य ईश्वर (=प्रेरक) है। इस प्रकार भोक्ता भोज्य और प्रेरक ये तीन पदार्थ माने गये हैं। (ये पदार्थ) अखण्ड ब्रह्म चैतन्य में गुणभेद से कल्पित है ।।४०-४१।।

अत्र प्रेरयिता शम्भुः शुद्धोपाधिर्महेश्वरः।
संमिश्रोपाधयः सर्वे भोक्तारः पशवः स्मृताः।।४२।।

भोज्यमव्यक्तमित्युक्तं शुद्धतामसरूपकम्।

भावार्थ : इन तीनों में शुद्ध सत्त्वोपाधि वाले महेश्वर अर्थात् शम्भु प्रेरयिता है। किञ्चित्सत्त्व एवं तमोगुण से मश्रित रजस् उपाधि वाले समस्त भोक्ता पशु माने गये है। शुद्ध तामस रूप अव्यक्त अर्थात् गूढ चैतन्य भोज्य कहा गया है ।।४२।।

सर्वज्ञः प्रेरकः शम्भुः किञ्चिज्ज्ञो जीव उच्यते।
अत्यन्तगूढचैतन्यं जडमव्यक्तमुच्यते।।४३।।

भावार्थ : प्रेरक शिव सर्वज्ञ है। जीव अल्पज्ञ है। अत्यन्त गूढ चैतन्य जड अव्यक्त कहा जाता है। वृक्ष आदि में केवल पिपासा रहती है, हरी फसल और पत्थर आदि में वृद्धि देखी जाती है इसलिये यह मानना पड़ता है कि उनमें चैतन्य अत्यन्त गूढ़ है ।।४३।।

उपाधिः पुनराख्यातः शुद्धाशुद्धविभेदतः।
शुद्धोपाधिः परा माया स्वाश्रया मोहकारिणी।।४४।।

भावार्थ : उपाधि शुद्ध और अशुद्ध भेद से (दो प्रकार की) कही गयी है। शुद्ध उपाधि माया है जो अपने में ही आश्रित रहती है। वह (ईश्वर को) मोह में नहीं डाल सकती और न डालती है[१] ।।४५।।

अशुद्धोपाधिरप्येवमविद्याश्रयमोहिनी ।
अविद्याशक्तिभेदेन जीवा बहुविधाः स्मृताः।।४५।।

भावार्थ : अशुद्ध उपाधि अविद्या है वह अपने आश्रय (जीव) को मोह में डालती है। अविद्या की शक्ति के भेद से जीव अनेक प्रकार के माने गये हैं ।।४५।।

मायाशक्तिवशादीशो नानामूर्तिधरः प्रभुः।
सर्वज्ञः सर्वकर्ता च नित्यमुक्तो महेश्वरः।।४६।।

भावार्थ : भगवान् शिव माया नामक शक्ति के कारण अनेक रूप धारण करते हैं। वे परमेश्वर सर्वज्ञ सर्वकर्त्ता और नित्य मुक्त है ।।४६।।

विशेष - निरुपाधि परमेश्वर जब शुद्धमायोपाधि से सम्बन्धित होता है तब वह सद्योजात वामदेव अघोर तत्पुरुष और ईशान के रूप में अपने को आभासित करता है। तन्त्र शास्त्र में ये पाँच सदाशिव के पाँच मुख कहे गये हैं।

किञ्चित्कर्ता च किञ्चिज्ज्ञो बद्धोऽनादिशरीरवान्।
अविद्यामोहिता जीवा ब्रह्मैक्यज्ञानवर्जिताः।।४७।।

भावार्थ : अनादि काल से शरीराभिमानी परमेश्वर का अंश जब बद्ध हो जाते हैं तब वे किञ्चित्कर्त्ता तथा अल्पज्ञ अर्थात् जीव हो जाते हैं ।।४७।।

परिभ्रमन्ति संसारे निजकर्मानुसारतः।
देवतिर्यङ्मनुष्यादिनानायोनिविभेदतः ।।४८।।

भावार्थ : अविद्या के कारण मोहयुक्त जीव स्वात्मब्रह्मैक्यज्ञान से रहित होकर अपने कर्मों के अनुसार देव तिर्यक् मनुष्य आदि अनेक योनि के भेद से संसार में परिभ्रमण करते रहते हैं ।।४८।।

चक्रनेमिक्रमेणैव भ्रमन्ति हि शरीरिणः।
जात्यायुर्भोगवैषम्यकारणं[२] कर्म केवलम्।।४९।।

---

१. ईश्वर यदि स्वेच्छया मोह में पड़ता है तो यह ईश्वर का ऐश्वर्य है।
२. सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः (पा०यो०सू० २।१३)

भावार्थ : शरीरधारी अर्थात् जीवं चक्र के मस्तक पर स्थित गोले के समान क्रम से (संसार में) भ्रमण करते रहते हैं। जन्म आयु और भोग की विषमता का कारण केवल कर्म है ।।४९।।

एतेषां देहिनां साक्षी प्रेरकः परमेश्वरः।
एतेषां भ्रमतां नित्यं कर्मयन्त्रनियन्त्रणे।।५०।।

भावार्थ : नित्य भ्रमण करने वाले इन जीवों का कर्मरूपी यन्त्र के नियन्त्रण में प्रेरणा देने वाला परमेश्वर ही इनका साक्षी है ।।५०।।

देहिनां प्रेरकः शम्भुर्हितमार्गोपदेशकः।
पुनरावृत्तिरहितमोक्षमार्गोपदेशकः ।।५१।।

भावार्थ : शिव ही देहीवर्ग के प्रेरक तथा हितकारी मार्ग के उपदेशक हैं। वे ही पुनर्जन्मरहित अर्थात् ऐकान्तिक और आत्यन्तिक मोक्ष के उपदेष्टा है ।।५१।।

स्वकर्मपरिपाकेन प्रक्षीणमलवासनः।
शिवप्रसादाज्जीवोऽयं जायते शुद्धमानसः।।५२।।

भावार्थ : अपने कर्मों का पूर्णपाक होने से (जीव की) मल और वासना क्षीण हो जाती है। तब शिव के अनुग्रह से यह जीव शुद्ध चित्त वाला हो जाता है ।।५२।।

शुद्धान्तःकरणे जीवे शुद्धकर्मविपाकतः।
जायते शिवकारुण्यात् प्रस्फुटा भक्तिरैश्वरी।।५३।।

भावार्थ : शुद्ध अन्तःकरण वाले जीव के अन्दर शुद्ध कर्म के परिपाक से शिव की करुणावश शिव के प्रति स्पष्ट भक्ति उत्पन्न होती है ।।५३।।

जन्तुरन्त्यशरीरोऽसौ पिण्डशब्दाभिधेयकः।।५४।।

भावार्थ : अन्तिम शरीर वाला यह जीव पिण्ड शब्द का वाच्य होता है ।।५४।।

पिण्डज्ञानस्थलम् – (२)

शरीरात्मविवेकेन[१] पिण्डज्ञानी स कथ्यते।
शरीरमेव चार्वाकैरात्मेति परिकीर्त्यते।।५५।।

भावार्थ : पिण्डज्ञानस्थल वर्णन - जो शरीर और आत्मा का भेद जानता है वह पिण्डज्ञानी कहलाता है। चार्वाक लोग शरीर को ही आत्मा मानते हैं ।।५५।।

---

१. विवेको भेदज्ञानम्, अयमस्मात् पृथक् इत्याकारकम् ।

इन्द्रियाणां तथात्मत्वमपरैः परिभाष्यते।
बुद्धितत्त्वगतैर्बौद्धैर्बुद्धिरात्मेति गीयते।।५६।।

भावार्थ : उसी प्रकार अन्य (चार्वाक) इन्द्रियों को आत्मा कहते हैं। बुद्धि तत्त्व को मूल मानने वाले बौद्ध बुद्धि (=विज्ञान) को आत्मा कहते हैं ।।५६।।

नेन्द्रियाणां न देहस्य न बुद्धेरात्मता भवेत्।
अहंप्रत्ययवेद्यत्वाद् अनुभूतस्मृतेरपि।।५७।।

शरीरेन्द्रियबुद्धिभ्यो व्यतिरिक्तः सनातनः।
आत्मस्थितिविवेकी यः पिण्डज्ञानी स कथ्यते।।५८।।

भावार्थ : न इन्द्रिय न देह और न बुद्धि ही आत्मा है क्योंकि (आत्मा) 'अहं अहम्' करके जो ज्ञान होता है उसका विषय है तथा अनुभूत विषय का स्मरण इन्द्रिय आदि को नहीं होता ।।५७।।

इसलिये जो शरीर इन्द्रिय बुद्धि से भिन्न तथा सनातन अर्थात् नित्य है वही आत्मा है। इस प्रकार की आत्मस्थिति का विवेक रखने वाला पिण्डज्ञानी कहा जाता है ।।५८।।

विशेष : धन पुत्र आदि बाह्य विषयों के नाश से दुःख उनकी वृद्धि से सुख होने से बाह्य विषय ही आत्मा है ऐसा सामान्य लोग मानते हैं। उन विषयों से भिन्न शरीर ही दुःख सुख का अनुभविता है अतः शरीर ही आत्मा है ऐसा चार्वाक मानते हैं। दूसरा चार्वाक इन्द्रियों को ही आत्मा मानते हैं। यह मान्यता भी सम्भव नहीं है क्योंकि यदि इन्द्रियसमूह को आत्मा माना जाय तो एक-दो इन्द्रिय के नष्ट होने पर सब मर जायेंगे और यदि एक-एक इन्द्रिय आत्मा है तो जल मधुर भी है और स्वच्छ भी ऐसा दो इन्द्रियों से एक साथ होने वाला ज्ञान सम्भव नहीं होगा इसलिये इन्द्रियाँ आत्मा नहीं किन्तु बुद्धि आत्मा है ऐसा कुछ लोग मानते हैं ऐसा मानने पर चूँकि बुद्धि जड़ है अतः आत्मा को भी जड़ मानना पड़ेगा किन्तु आत्मा चेतन है क्योंकि वह अनुभव और स्मृति दोनों से युक्त होती है अतः क्षणिक विज्ञानसन्तान आत्मा है ऐसा विज्ञानवादी बौद्ध मानते हैं।

इस विषय में ग्रन्थकार का कथन है कि यह मेरा शरीर है, यह मेरी बुद्धि है, यह मैं स्मरण कर रहा हूँ, मेरी इन्द्रियाँ नष्ट हो गयी हैं तो भी जान रहा हूँ - इत्यादि अनुभव से सिद्ध होता है कि उपर्युक्त इन्द्रिय आदि से भिन्न कोई आत्मा नामक अतिरिक्त तत्त्व है। रूप संज्ञा संस्कार विज्ञान और वेदना नामक पाँच स्कन्धों वाला पदार्थ भी आत्मा नहीं हो सकता क्योंकि यदि रूपादिवान् ही आत्मा है तो वह अनित्य हो जायेगा तथा सुषुप्ति और मूर्च्छा की दशा में आत्मा का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। यदि 'मैं जानता हूँ'

इत्यादि अनुभव के आधार पर अहं प्रत्यय को ही आत्मा मानेंगे तो अहं प्रत्यय के अनित्य मानने पर आत्मा भी अनित्य होने लगेगा। यदि अहं प्रत्यय को नित्य मानते हैं तब तो हमारे ही मत की पुष्टि होती है। आत्मा क्षणिक विज्ञान रूप भी नहीं है क्योंकि ऐसा मानने पर रूप ज्ञान के नष्ट होने पर रस की स्मृति होगी नहीं और रूप स्मृति का कोई जनक नहीं रहेगा। इस प्रकार सम्पूर्ण लोक-व्यवहार उच्छिन्न हो जायेगा। अत: कोई ऐसा तत्त्व है जो नित्य, अपना अनुसन्धान करने वाला तथा ज्ञान स्मृति अपोहन शक्ति वाला है। वही आत्मा है भगवान् कृष्ण ने भी गीता में कहा है

'मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।' (१५।१५)

यह आत्मा 'अहं अहम्' करके जो ज्ञान होता है तत्स्वरूप ही है । यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि वेदान्त अहं को ज्ञान का विषय मानता है क्योकि ज्ञान वृत्तिसापेक्ष होता है। वेदान्त के अनुसार आत्मा अपने शुद्ध रूप में चित् स्वरूप है। किन्तु टीकाकार उसे अहंप्रत्यय स्वरूप कह रहे हैं क्योंकि इससे भिन्न कुछ भी दृष्ट नहीं होता। यह शङ्का नहीं करनी चाहिये कि सुषुप्ति अथवा मूर्च्छा काल में उसका अनुभव न होने से वह अनित्य है क्योंकि उक्त अवस्थाओं में वह शून्य स्थान[1] में निमग्न रहता है इस कारण उसका प्रकाश तिरोहित रहता है। यदि आत्मा सुषुप्त्यवस्था में नहीं रहता तो जागने पर 'मैं सुख पूर्वक सोया' ऐसी सुखस्मृति नहीं होगी, किन्तु होती है। अत: आत्मा नित्य है। स्वतन्त्र अंशीभूत प्राणवायु के परिस्पन्द के कारण वह त्याग और ग्रहण का कर्त्ता समझा जाता है।

प्रश्न है कि उपर्युक्त विवरण से किसी शरीरधारी जीवात्मा की सिद्धि तो होती है किन्तु ईश्वर की नहीं अत: जिस प्रकार लोक में काष्ठ छेदन आदि क्रिया कर्मेन्द्रियों के अधीन होती है और उनका कोई न कोई कर्त्ता होता है जो स्वतन्त्र होता है उसी प्रकार संसार के समस्त कार्यों का परमकर्त्ता ईश्वर है ऐसा कहने वाले योगदर्शन के अनुयायी लोगों का भी मत खण्डित हो जाता है क्योंकि आत्मतत्त्व ही ईश्वन है न कि 'क्लेशकर्म-विपाकाशवैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः' (पा०यो०सू० १२४) में निर्दिष्ट पुरुष विशेष।

नश्वराणि शरीराणि नानारूपाणि कर्मणा।
आश्रितो नित्य एवासाविति जन्तोर्विवेकिता।।५९।।

भावार्थ : ये शरीर नश्वर है तथा कर्म के अनुसार अनेक रूप वाले हैं। यह आत्मा (शरीर में) आश्रित रहने वाला तथा नित्य है (जबकि शरीर अनित्य है) यही जीव का विवेक है ।।५९।।

---

१. वह शून्य स्थान क्या है? इस पर विद्वान् विचार करें।

शरीरात् पृथगात्मानमात्मभ्यः पृथगीश्वरम्।
प्रेरकं यो विजानाति पिण्डज्ञानीति कथ्यते।।६०।।

भावार्थ : आत्मा शरीर से पृथक् है और उनका प्रेरक ईश्वर आत्माओं से भिन्न है। ऐसा जो जानता है वह पिण्डज्ञानी कहा जाता है ।।६०।।

संसारहेयस्थल - (३)

निरस्तहृत्कलङ्कस्य नित्यानित्यविवेकिनः।
संसारहेयताबुद्धिर्जायते वासनाबलात्।।६१।।

भावार्थ : संसार हेयस्थल वर्णन— जिसके हृदय का कलङ्क अर्थात् मलिनवासना हट चुकी है जो नित्य और अनित्य का भेद जानता है, वासना के बल से उनके अन्दर यह संसार हेय अर्थात् त्याज्य है— ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती है ।।६१।।

ऐहिके क्षणिके सौख्ये पुत्रदारादिसंभवे।
क्षयित्वादियुते स्वर्गे कस्य वाञ्छा विवेकिनः।।६२।।

भावार्थ : पुत्र स्त्री आदि से उत्पन्न इस लोक का क्षणिक सुख तथा क्षय (अतिशय) आदि से युक्त स्वर्ग (सुख) के लिये किस विवेकी को इच्छा हो सकती है अर्थात् किसी को भी नहीं हो सकती ।।६४।।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
जन्तुर्मरणजन्मभ्यां परिभ्रमति चक्रवत्।।६३।।

भावार्थ : जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु और जो मरता है उसका जन्म निश्चित है। मरण और जन्म के द्वारा जीव चक्र की भाँति घूमता रहता है ।।६३।।

मत्स्यकूर्मवराहाङ्गैर्नृसिंहमनुजादिभिः ।
जातेन निधनं प्राप्तं विष्णुनापि महात्मना।।६४।।

भावार्थ : महात्मा विष्णु भी मत्स्य[१], कच्छप[२], शूकर[३], नरसिंह[४], एवं मनुष्य[५] आदि के अंगों अर्थात् शरीर धारण करने पर अर्थात् उन रूपों में अवतार लेने पर मृत्यु को प्राप्त हुए ।।६४।।

---

१. भगवान् विष्णु मार्कण्डेय मुनि को प्रलय स्वरूप का दर्शन कराने के लिये मत्स्यावतार लिये थे।
२. समुद्र मन्थन के समय वे ही कच्छप रूप से मन्दराचल को सम्भाल रहे थे।
३. हिरण्याक्ष द्वारा चुरायी गयी पृथिवी लाने के लिये उन्होंने शूकर का अवतार धारण किया था।
४. भक्त प्रह्लाद की रक्षा एवं हिरण्यकाशिपु का संहार करने के लिये भगवान् विष्णु ने नृसिंह अवतार धारण किया था।
५. उनके राम, कृष्ण तथा वामन आदि अवतार मनुष्य के रूप में हुये।

भूत्वा कर्मवशाज्जन्तुर्ब्राह्मणादिषु जातिषु।
तापत्रयमहावह्निसन्तापाद् दह्यते भृशम्।।६५।।

भावार्थ : जीव (अपने पूर्वजन्मकृत) कर्म के कारण ब्राह्मण आदि जातियों में उत्पन्न होकर (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) तीन तापों की विशाल अग्नि में अतिशयेन जलता रहता है ।।६५।।

कर्ममूलेन दु:खेन पीड्यमानस्य देहिन:।
आध्यात्मिकादिना नित्यं कुत्र विश्रान्तिरिष्यते।।६६।।

भावार्थ : कर्म से उत्पन्न आध्यात्मिक आदि दु:ख से नित्य पीड़ित होने वाले जीव को शान्ति कहाँ मिल सकती है अर्थात् कहीं नहीं ।।६६।।

आध्यात्मिकं तु प्रथमं द्वितीयं चाधिभौतिकम्।
आधिदैविकमन्यच्च दु:खत्रयमिदं स्मृतम्।।६७।।

भावार्थ : पहला आध्यात्मिक[१] दूसरा आधिभौतिक[२] और तीसरा आधिदैविक[३] इस प्रकार तीन दु:ख माने गये हैं ।।६७।।

आध्यात्मिकं द्विधा प्रोक्तं बाह्याभ्यन्तरभेदत:।
वातपित्तादिजं दु:खं बाह्यमाध्यात्मिकं मतम्।।६८।।

भावार्थ : बाह्य आभ्यन्तर भेद से आध्यात्मिक दु:ख दो प्रकार का कहा गया है। वात पित्त श्लेष्मा आदि से उत्पन्न दु:ख बाह्य आध्यात्मिक दु:ख माना गया है ।।६८।।

रागद्वेषादिसम्पन्नमान्तरं परिकीर्त्यते।
आधिभौतिकमेतद्धि दु:खं राजादिभूतजम्।।६९।।

भावार्थ : राग द्वेष आदि से प्राप्त दु:ख आभ्यन्तर आध्यात्मिक दु:ख कहा जाता है। जो दु:ख राजा आदि के कारण उत्पन्न हो वह आधिभौतिक है ।।६९।।

आधिदैविकमाख्यातं ग्रहयक्षादिसम्भवम्।
दु:खैरेतैरुपेतस्य कर्मबद्धस्य देहिन:।।
स्वर्गे वा यदि वा भूमौ सुखलेशो न विद्यते।।७०।।

भावार्थ : ग्रह यक्ष आदि से उत्पन्न दु:ख आधिदैविक है। इन दु:खों से युक्त तथा कर्म से बद्ध जीव के लिये स्वर्ग में या पृथिवी पर लेशमात्र सुख नहीं है ।।७०।।

तटित्सु वीचिमालासु प्रदीपस्य प्रभासु च।
सम्पत्सु कर्ममूलासु कस्य वा स्थिरतामति:।।७१।।

भावार्थ : आकाशीय विद्युत् लहर प्रदीप की प्रभा कर्म से अर्जित सम्पत्ति को कौन स्थिर समझता है (अर्थात् कोई नहीं) ॥७१॥

मलकोशे शरीरेऽस्मिन् महादुःखविवर्धने।
तडिदङ्कुरसङ्काशे को वा रुच्येत पण्डितः।।७२।।

भावार्थ : मल के भण्डार महादुःख को बढ़ाने वाले विद्युत् के अङ्कुर के समान इस शरीर के विषय में कौन बुद्धिमान् प्रीति करेगा ॥७२॥

नित्यानन्दचिदाकारमात्मतत्त्वं विहाय कः।
विवेकी रमते देहे नश्वरे दुःखभाजने।।७३।।

भावार्थ : नित्य आनन्द एवं चित्स्वरूप आत्मतत्त्व को छोड़कर कौन विवेकी नश्वर एवं दुःख के पात्रभूत इस देह में रमण करेगा ॥७३॥

विवेकी शुद्धहृदयो निश्चितात्मसुखोदयः।
दुःखहेतौ शरीरेऽस्मिन् कलत्रे च सुतेषु च।।७४।।

सुहृत्सु बन्धुवर्गेषु धनेषु कुलपद्धतौ।
अनित्यबुद्ध्या सर्वत्र वैराग्यं परमश्नुते।।७५।।

भावार्थ : विवेकवान् शुद्ध हृदय वाला तथा आत्मसुख के निश्चय वाला मनुष्य दुःख के कारणभूत इस शरीर, पत्नी, पुत्रों, बन्धुवर्गों, धन एवं कुलपरम्परा में अनित्य बुद्धि के कारण सर्वत्र परमवैराग्य का अनुभव करता रहता है ॥७४-७५॥

विवेकिनो विरक्तस्य विषयेष्वात्मरागिणः।
संसारदुःखविच्छेदहेतौ बुद्धिः प्रवर्तते।।७६।।

भावार्थ : विवेकी विषयों के प्रति विरक्त आत्मा में अनुरक्त मनुष्य की बुद्धि संसारदुःख को नष्ट करने के लिये प्रवृत्त होती है ॥७६॥

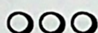
नित्यानित्यविवेकिनः सुकृतिनः शुद्धाशयस्यात्मनो
ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रमुख्यविभवेष्वस्थायितां पश्यतः।
नित्यानन्दपदे निराकृतजगत्संसारदुःखोदये
साम्बे चन्द्रशिरोमणौ समुदयेद्भक्तिर्भवध्वंसिनी।।७७।।

भावार्थ : नित्यानित्य के विवेक से युक्त, पुण्यवान्, पवित्र हृदय वाले, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि के वैभव को अस्थायी समझने वाले मनुष्य की नित्यानन्द के स्थानभूत, जङ्गम एवं संसरणशील मृत्युलोक के दुःख को दूर करने वाले, अम्बासहित

चन्द्रमौलि के प्रति संसार को दूर करने वाली भक्ति उत्पन्न होती है (अथवा उत्पन्न होनी चाहिये) ॥७७॥

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ भक्तस्थले पिण्डादिस्थलत्रयप्रसङ्गो नाम पञ्चमः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के पिण्डादिहेयस्थलप्रसङ्ग नामक पञ्चम परिच्छेद की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदिकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।५।।



षष्ठ: परिच्छेद:

दीक्षालक्षणगुरुकारुण्यस्थल - (४)

ततो विवेकसम्पन्नो विरागी शुद्धमानस:।
जिज्ञासु: सर्वसंसारदोषध्वंसकरं शिवम्।।१।।

उपैति लोकविख्यातं लोभमोहविवर्जितम्।
आत्मतत्त्वविचारज्ञं विमुक्तविषयभ्रमम्।।२।।

शिवसिद्धान्ततत्त्वज्ञं छिन्नसन्देहविभ्रमम्।
सर्वतन्त्रप्रयोगज्ञं धार्मिकं सत्यवादिनम्।।३।।

कुलक्रमागताचारं कुमार्गाचारवर्जितम्।
शिवध्यानपरं शान्तं शिवतत्त्वविवेकिनम्।।४।।

भस्मोद्धूलननिष्णातं भस्मतत्त्वविवेकिनम्।
त्रिपुण्ड्रधारणोत्कण्ठं धृतरूद्राक्षमालिकम्।।५।।

लिङ्गधारणसंयुक्तं लिङ्गपूजापरायणम्।
लिङ्गाङ्गयोगतत्त्वज्ञं निरूढाद्वैतवासनम्।।६।।

लिङ्गाङ्गस्थलभेदज्ञं श्रीगुरुं शिववादिनम्।

भावार्थ : दीक्षालक्षण-गुरुकारुण्यस्थल-वर्णन - इसके बाद विवेकसम्पन्न विरागी शुद्ध चित्त वाला जिज्ञासु शिष्य गुरु के पास जाता है। गुरु का वैशिष्ट्य निम्नलिखित है—

वह गुरु समस्त संसार के दोष (=दु:ख) का नाश करने वाला, कल्याणकारी, लोकप्रसिद्ध, लोभ मोह से रहित, आत्मतत्त्व का विचारक, विषय के भ्रम से मुक्त, शिवाद्वैत सिद्धान्त के तत्त्व को जानने वाला, सन्देहरहित, सम्पूर्ण तन्त्र के प्रयोगों का ज्ञाता, धार्मिक, सत्यवादी, कुलक्रम अर्थात् गुरुवंशपरम्परा से प्राप्त आचार का पालन करने वाला, कुमार्ग का अनुसरण न करने वाला, शिव ध्यान में लगा हुआ, शान्त, शिवतत्त्वविवेक वाला, भस्म लगाने में निष्णात, भस्मतत्त्व का ज्ञाता, त्रिपुण्ड्र धारण के लिये उत्सुक, रुद्राक्ष माला का धारण करने वाला, लिङ्गधारण से युक्त, लिङ्गपूजा-परायण, लिङ्गाङ्गयोग के तत्त्व का ज्ञाता, दृढ अद्वैत भावना वाला, लिङ्गाङ्गस्थल के भेद का ज्ञाता और शिववादी होता है ।।१-६।।

सेवेत परमाचार्यं शिष्यो भक्तिभयान्वितः।।७।।
षण्मासान् वत्सरं वापि यावदेष प्रसीदति।

भावार्थ : भक्ति और भय१ से युक्त शिष्य, परमाचार्य की छह महीने अथवा एक वर्ष तक जब तक गुरु प्रसन्न नहीं होते, सेवा करे ॥७-८॥

प्रसन्नं परमाचार्यं भक्त्या मुक्तिप्रदर्शकम्।

प्रार्थयेदग्रतः शिष्यः प्राञ्जलिर्विनयान्वितः।
भो कल्याण महाभाग शिवज्ञानमहोदधे।।९।।

आचार्यवर्य सम्प्राप्तं रक्ष मां भवरोगिणम्।

भावार्थ : प्रसन्न तथा मोक्ष के प्रदर्शक परमाचार्य के आगे खड़ा होकर शिष्य भक्ति के साथ हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक प्रार्थना करे— हे कल्याणकारी महाभाग शिवज्ञान के समुद्र आचार्यश्रेष्ठ आपके पास आये हुए मुझ भवरोगी की रक्षा कीजिये ॥८-९॥

इति शुद्धेन शिष्येण प्रार्थितः परमो गुरुः।।१०।।
शक्तिपातं समालोक्य दीक्षया योजयेदमुम्।

भावार्थ : शुद्ध शिष्य के द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये गये परमगुरु शक्तिपात के चिन्हों की परीक्षा कर इस शिष्य को दीक्षा से युक्त करे ॥१०॥

दीयते च शिवज्ञानं क्षीयते पाशबन्धनम्।।११।।
यस्मादतः समाख्याता दीक्षेतीयं विचक्षणैः।

भावार्थ : जिस कारण इसके द्वारा शिव का ज्ञान दिया जाता है तथा पाशबन्धन का नाश होता है इसलिये विद्वान् लोग इस (संस्कारात्मक प्रक्रिया) को दीक्षा कहते हैं ॥११॥

सा दीक्षा त्रिविधा प्रोक्ता शिवागमविशारदैः।।१२।।
वेधारूपा क्रियारूपा मन्त्ररूपा च तापस।

भावार्थ : हे तपस्वी अगस्त्य ! शैवागम के विद्वान् लोग इस दीक्षा को तीन प्रकार की बतलाते हैं— वेधारूपा, क्रियारूपा तथा मन्त्ररूपा ॥१२॥

गुरोरालोकमात्रेण हस्तमस्तकयोगतः।।१३।।

यः शिवत्वसमावेशो वेधादीक्षेति सा मता।
मान्त्री दीक्षेति सा प्रोक्ता मन्त्रमात्रोपदेशिनी।।१४।।

भावार्थ : गुरु-शिष्य को कृपा दृष्टि से देखते हुए अपना हाथ उसके मस्तक पर रखता है। इस प्रकार (शिष्य के अन्दर) जो शिवत्व का समावेश होता है वह वेधा दीक्षा मानी गयी है । मन्त्र का केवल उपदेश देना मान्त्री दीक्षा कही गयी है ॥१३-१४॥

कुण्डमण्डलिकोपेता क्रियादीक्षा क्रियोत्तरा।
शुभमासे शुभतिथौ शुभकाले शुभेऽहनि।।१५।।

विभूतिं शिवभक्तेभ्यो दत्त्वा ताम्बूलपूर्वकम्।
यथाविधि यथायोगं शिष्यमानीय देशिकः।।१६।।

स्नातं शुक्लाम्बरधरं दन्तधावनपूर्वकम्।
मण्डले स्थापयेच्छिष्यं प्राङ्मुखं तमुदङ् मुखः।।१७।।

शिवस्य नाम कीर्तिं च चिन्तामपि च कारयेत्।

भावार्थ : गुरु शुभ मास, शुभ तिथि, शुभ दिन एवं शुभ काल में ताम्बूलसहित भस्म को शिवभक्तों को निमंत्रण के निमित्त देकर शास्त्रोक्त विधि के अनुसार शिष्य क़ो ले आये । आने के पहले शिष्य दातौन स्नान कर श्वेतवस्त्र धारण कर चुका हो । आचार्य शिष्य को मण्डप के भीतर पूर्व की ओर मुख कर बैठाये और स्वयं उत्तराभिमुख बैठे । वह शिष्य को शिव का ध्यान और शिव नाम का उच्चारण कराये ॥१५-१८॥

विभूतिपट्टं दत्त्वाग्रे यथास्थानं यथाविधि।।१८।।

पञ्चब्रह्ममयैस्तत्र स्थापितैः कलशोदकैः।
आचार्यः सममृत्विग्भिस्त्रिः शिष्यमभिषिञ्चयेत्।।१९।।

भावार्थ : इसके बाद यथास्थान और विधान के अनुसार आगे भस्म का त्रिपुण्ड्र धारण कराये । पुनः आचार्य वहाँ स्थापित पञ्चब्रह्म[१,२] वाले कलशों के जल से ऋत्विजों द्वारा तीन बार शिष्य का अभिषेक करे ॥१८-१९॥

अभिशिच्य गुरुः शिष्यमासीनं परितः शुचिम्।
ततः पञ्चाक्षरीं शैवीं संसारभयतारिणीम्।।२०।।

तस्य दक्षिणकर्णे तु निगूढमपि कीर्तयेत्।
छन्दो रूपमृषिं चास्य दैवतान्यासपद्धतिम्।।२१।।

---

१. सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान पञ्च ब्रह्म है ।
२. (मतान्तर में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव ये पञ्चब्रह्म कहे जाते हैं ।

भावार्थ : गुरु वहाँ बैठे हुए सब प्रकार से शुद्ध शिष्य के दायें कान में संसारभयतारिणी पञ्चाक्षरी विद्या (=ॐ नमः शिवाय) को गुप्त रूप से कहे। (साथ ही इस विद्या के) छन्द स्वरूप ऋषि देवता न्यासपद्धति को भी बतलाये ॥२०-२१॥

लिङ्गधारणस्थल - (५)

स्फाटिकं शैलजं वापि चन्द्रकान्तमयं तु वा।
बाणं वा सूर्यकान्तं वा लिङ्गमेकं समाहरेत्।।२२।।

भावार्थ : लिङ्गधारण स्थल वर्णन— (इसके बाद गुरु) स्फटिक श्रीशैल का पत्थर चन्द्रकान्तमणि, नर्मदेश्वर अथवा सूर्यकान्तमणि से निर्मित एक लिङ्ग ले आये ॥२२॥

सर्वलक्षणसंपन्ने तस्मिंल्लिङ्गे विशोधिते।
पीठस्थितेऽभिषिक्ते च गन्धपुष्पादिपूजिते।।२३।।

मन्त्रपूते कलां शैवीं योजयेद्विधिना गुरुः।

भावार्थ : सर्वलक्षणसम्पन्न उस लिङ्ग को शुद्ध कर पीठ पर रखने के बाद उसका अभिषेक करे। गन्ध-पुष्प आदि से उसकी पूजा करने के पश्चात् मन्त्र से पवित्रित उसमें विधिपूर्वक शैवी कला का संयोजन करे ॥२३-२४॥

शिष्यस्य प्राणमादाय लिङ्गे तत्र निधापयेत्।।२४।।

तल्लिङ्गं तस्य तु प्राणे स्थापयेदेकभावतः।
एवं कृत्वा गुरुर्लिङ्गं शिष्यहस्ते निधापयेत्।।२५।।

भावार्थ : पुनः शिष्य के प्राण को लेकर अर्थात् अंकुश मुद्रा के द्वारा आकृष्ट कर उस लिङ्ग में स्थापित करे उसके बाद उस लिङ्ग को शिष्य के प्राण में एकीभाव से स्थापित करे। इस प्रकार का अनुष्ठान कर गुरु लिङ्ग को शिष्य के हाथ में रख दे ॥२४-२५॥

प्राणवद्धारणीयं तत्प्राणलिङ्गमिदं तव।
कदाचित्कुत्रचिद्वापि न वियोजय देहतः।।२६।।

भावार्थ : (इसके पश्चात् गुरु शिष्य को आज्ञा दे कि) तुम इस प्राणलिङ्ग को अपने प्राण की भाँति अपने शरीर से लगाये रखना। कहीं भी कभी भी इसको अपने शरीर से अलग मत करना ॥२६॥

यदि प्रमादात्पतिते लिङ्गे देहान्महीतले।
प्राणान् विमुञ्च सहसा प्राप्तये मोक्षसम्पदः।।२७।।

भावार्थ : यदि असावधानीवश यह लिङ्ग शरीर से अलग होकर पृथिवी पर गिर पड़े तो मोक्ष को प्राप्त करने के लिये सहसा अपने प्राणों को त्याग देना ॥२७॥

इति सम्बोधितः शिष्यो गुरुणा शास्त्रवेदिना।
धारयेच्छाङ्करं लिङ्गं शरीरे प्राणयोगतः॥२८॥

भावार्थ : शास्त्रवेत्ता गुरु के द्वारा इस प्रकार समझाया गया शिष्य उस शिवलिङ्ग को प्राणधारण पर्यन्त शरीर पर धारण करें ॥२८॥

लिङ्गस्य धारणं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
आदृतं मुनिभिः सर्वैरागमार्थविशारदैः॥२९॥

भावार्थ : (इस प्रकार) लिङ्ग का धारण पुण्यप्रद एवं समस्त पापों का नाश करने वाला होता है। आगम तत्त्व के समस्त पण्डितों मुनियों ने इसको आदर पूर्वक स्वीकार किया है ॥२९॥

लिङ्गधारणमाख्यातं द्विधा सर्वार्थसाधकैः।
बाह्यमाभ्यन्तरं चेति मुनिभिर्मोक्षकाङ्क्षिभिः॥३०॥

भावार्थ : सर्वार्थ साधक यह लिङ्गधारण मोक्षार्थी मुनियों के द्वारा बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का कहा गया है ॥३०॥

चिद्रूपं परमं लिङ्गं शाङ्करं सर्वकारणम्।
यत्तस्य धारणं चित्ते तदान्तरमुदाहृतम्॥३१॥

भावार्थ : समस्त संसार का कारण, शङ्कर का चिद्रूप लिङ्ग श्रेष्ठ है। चित्त में उसका धारण करना आन्तर लिङ्ग धारण कहा गया है ॥३१॥

चिद्रूपं हि परं तत्त्वं शिवाख्यं विश्वकारणम्।
निरस्तविश्वकालुष्यं निष्कलं निर्विकल्पकम्॥३२॥

सत्तानन्दपरिस्फूर्तिसमुल्लासकलामयम्।
अप्रमेयमनिर्देश्यं मुमुक्षुभिरुपासितम्॥३३॥

परं ब्रह्म महालिङ्गं प्रपञ्चातीतमव्ययम्।

भावार्थ : शिव नामक चिद्रूप परमतत्त्व विश्व का कारण है। समस्त मलिनता से रहित वह निष्कल तथा निर्विकल्प है; सत् चित् और आनन्द की स्फुरत्ता के समुल्लास वाली कला से युक्त है; अप्रमेय अनिर्देश्य तथा मोक्षार्थीजनों से उपासित है; ऐसा प्रपञ्चातीत अर्थात् संसार से परे परब्रह्म रूप लिङ्ग महालिङ्ग है ॥३२-३३॥

तदेव सर्वभूतानामन्तस्त्रिस्थानगोचरम्।।३४।।

मूलाधारे च हृदये भ्रूमध्ये सर्वदेहिनाम्।
ज्योतिर्लिङ्गं सदा भाति यद्ब्रह्मेत्याहुरागमाः।।३५।।

भावार्थ : वही समस्त प्राणियों के (शरीर के) अन्दर तीन स्थानों में रहता है। वे स्थान हैं— समस्त शरीरधारियों में स्थित मूलाधार, हृदय और भ्रूमध्य। वह ज्योतिरूपी लिङ्ग इनमें सदा प्रकाशित रहता है। आगमशास्त्र इसी को ब्रह्म कहते हैं ।।३४-३५।।

अपरिच्छिन्नमव्यक्तं लिङ्गं ब्रह्म सनातनम्।
उपासनार्थमन्तःस्थं परिच्छिन्नं स्वमायया।।३६।।

भावार्थ : अपरिच्छिन्न अव्यक्त सनातन ब्रह्मरूप लिङ्ग (प्राणियों के द्वारा) उपासना के लिये अपनी माया से (मूलाधार आदि के) अन्दर स्थित और परिच्छिन्न हो गया ।।३६।।

लयं गच्छति यत्रैव जगदेतच्चराचरम्।
पुनः पुनः समुत्पत्तिं तल्लिङ्गं ब्रह्म शाश्वतम्।।३७।।

भावार्थ : जिसमें यह चर अचर जगत् लीन हो जाता है तथा पुनः उत्पन्न होता है वह शाश्वत (=नित्य) ब्रह्मरूपी लिङ्ग है ।।३७।।

तस्माल्लिङ्गमिति ख्यातं सत्तानन्दचिदात्मकम्।
बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्मशब्दाभिधेयकम्।।३८।।

भावार्थ : इस कारण वह चिद् आनन्दमयी सत्ता लिङ्ग कही जाती है। सबकी अपेक्षा बृहत् होने एवं सबका पोषक होने के कारण वही सच्चिदानन्द तत्त्व 'ब्रह्म' शब्द का वाच्य होता है इस प्रकार परब्रह्म ही महालिङ्ग और महालिङ्ग ही परब्रह्म है ।।३८।।

आधारे हृदये वापि भ्रूमध्ये वा निरन्तरम्।
ज्योतिर्लिङ्गानुसन्धानमान्तरं लिङ्गधारणम्।।३९।।

भावार्थ : मूलाधार, हृदय अथवा भ्रूमध्य में उस ज्योतिर्लिंग का निरन्तर अनुसन्धान आन्तर लिङ्गधारण कहा गया है ।।३९।।

आधारे कनकप्रख्यं हृदये विद्रुमप्रभम्।
भ्रूमध्ये स्फटिकच्छायं लिङ्गं योगी विभावयेत्।।४०।।

भावार्थ : योगी मूलाधार में सोने के रङ्ग वाले, हृदय में मूँगा के समान और भ्रूमध्य में स्फटिक की आभा वाले लिङ्ग का ध्यान करे ।।४०।।

निरुपाधिकमाख्यातं लिङ्गस्यान्तरधारणम्।
विशिष्टं कोटिगुणितं बाह्यलिङ्गस्य धारणात्।।४१।।

भावार्थ : यह निरुपाधिक लिङ्ग का आन्तर धारण बाह्य लिङ्ग धारण की अपेक्षा करोड़ों गुना श्रेष्ठ है ।।४१।।

ये धारयन्ति हृदये लिङ्गं चिद्रूपमैश्वरम्।
न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरसंसारमण्डले।।४२।।

भावार्थ : जो लोग अपने हृदय में चिद्रूप शिवलिङ्ग का धारण करते हैं उनका घोर संसारमण्डल में पुनर्जन्म नहीं होता ।।४२।।

अन्तर्लिङ्गानुसन्धानमात्मविद्यापरिश्रमः ।
गुरूपासनशक्तिश्च कारणं मोक्षसम्पदाम्।।४३।।

भावार्थ : अन्तर्लिंग का ध्यान, आत्मविद्या में परिश्रम (अर्थात् आत्मज्ञान सम्बन्धी शास्त्रों का श्रवण मनन) तथा गुरु की सेवा का सामर्थ्य— ये तीन मोक्षप्राप्ति के कारण है ।।४३।।

वैराग्यज्ञानयुक्तानां योगिनां स्थिरचेतसाम्।
अन्तर्लिङ्गानुसन्धाने रुचिर्बाह्ये न जायते।।४४।।

भावार्थ : इस कारण ज्ञान और वैराग्य से युक्त स्थिरचित्त योगियों की रुचि अन्तर्लिंगानुसन्धान में होती है बाह्यलिंगानुसन्धान में नहीं ।।४४।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वासवाद्याश्च लोकपाः।
मुनयः सिद्धगन्धर्वा दानवा मानवास्तथा।।४५।।
सर्वे च ज्ञानयोगेन सर्वकारणकारणम्।
पश्यन्ति हृदये लिङ्गं परमानन्दलक्षणम्।।४६।।

भावार्थ : ब्रह्मा, विष्णू, रुद्र (=अवर कोटि के भेद) इन्द्र आदि लोकपाल मुनिगण सिद्ध गन्धर्व दानव मानव सब के सब ज्ञानयोग के द्वारा समस्त कारणों के कारण परमानन्दस्वरूप लिङ्ग का हृदय में साक्षात्कार करते हैं ।।४५-४६।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शाङ्करं लिङ्गमुत्तमम्।
अन्तर्विभावयेद्विद्वान् अशेषक्लेशमुक्तये।।४७।।

भावार्थ : इसलिये विद्वान् समस्त क्लेश से मुक्ति के लिये सम्पूर्ण प्रयास से उत्तम शिवलिङ्ग का ध्यान अपने अन्दर करे ।।४७।।

अन्तर्धारयितुं लिङ्गमशक्तः शक्त एव वा।
बाह्यं च धारयेल्लिङ्गं तद्रूपमिति निश्चयात्।।४८।।

भावार्थ : अन्तर्लिंग को धारण करने में समर्थ हो या असमर्थ बाह्यलिङ्ग को अन्तर्लिंग का रूप समझ कर उसका धारण अवश्य करना चाहिये ।।४८।।

लिङ्गं तु त्रिविधं प्रोक्तं स्थूलं सूक्ष्मं परात्परम्।
इष्टलिङ्गमिदं स्थूलं यद्बाह्ये धार्यते तनौ।।४९।।

प्राणलिङ्गमिदं सूक्ष्मं यदन्तर्भावनामयम्।
परात्परं तु यत्प्रोक्तं तृप्तिलिङ्गं तदुच्यते।।५०।।

भावार्थ : यह लिङ्ग स्थूल सूक्ष्म परात्पर भेद से तीन प्रकार का कहा गया है। जो बाहर शरीर में धारण किया जाता है वह इष्टलिङ्ग स्थूल है। प्राणलिङ्ग सूक्ष्म है जो कि अन्तर्भावना रूप है। जिसे परात्पर लिङ्ग कहा गया वह तृप्तिलिङ्ग कहा जाता है ।।४९-५०।।

भावनातीतमव्यक्तं परब्रह्म शिवाभिधम्।
इष्टलिङ्गमिदं साक्षादनिष्टपरिहारतः।।
धारयेदवधानेन शरीरे सर्वदा बुधः।।५१।।

भावार्थ : भावना से परे अत एव अव्यक्त शिव नामक पर ब्रह्म अनिष्ट के परिहार के कारण साक्षात् इष्टलिङ्ग है। विद्वान् को चाहिये कि वह सावधान होकर सर्वदा शरीर पर इसका धारण करे ।।५१।।

मूर्ध्नि वा कण्ठदेशे वा कक्षे वक्षःस्थलेऽपि वा।
कुक्षौ हस्तस्थले वापि धारयेल्लिङ्गमैश्वरम्।।५२।।

भावार्थ : शिर पर कण्ठ में बगल में अथवा वक्षःस्थल पर या कुक्षि अर्थात् पेट के ऊपर अथवा हथेली में शिवलिङ्ग का धारण करना चाहिये ।।५२।।

नाभेरधस्ताल्लिङ्गस्य धारणं पापकारणम्।
जटाग्रे त्रिकभागे च मलस्थाने न धारयेत्।।५३।।

भावार्थ : नाभि के नीचे लिङ्ग का धारण पाप का कारण होता है। जटा के अग्रभाग में पीठ पर तथा मलस्थान में लिङ्ग का धारण नहीं करना चाहिये ।।५३।।

लिङ्गधारी सदा शुद्धो निजलिङ्गं मनोरमम्।
अर्चयेद् गन्धपुष्पाद्यैः करपीठे समाहितः।।५४।।

भावार्थ : लिङ्ग का धारण करने वाला सदा शुद्ध होता है। उसे चाहिये कि वह समाहित अर्थात् एकाग्रचित्त होकर अपने मनोरम लिङ्ग की कररूपी पीठ पर गन्ध पुष्प आदि से पूजा करे ।।५४।।

बाह्यपीठार्चनादेतत् करपीठार्चनं वरम्।
सर्वेषां वीरशैवानां मुमुक्षूणां निरन्तरम्।।५५।।

भावार्थ : मोक्षार्थी समस्त वीरशैवों के लिये यह करपीठार्चन बाह्यपीठार्चन की अपेक्षा सदा श्रेष्ठ है ।।५५।।

ब्रह्मविष्ण्वादयो देवा मुनयो गौतमादयः।
धारयन्ति सदा लिङ्गमुत्तमाङ्गे विशेषतः।।५६।।

लक्ष्म्यादिशक्तयः सर्वाः शिवभक्तिविभाविताः।
धारयन्त्यलिकाग्रेषु शिवलिङ्गमहर्निशम्।।५७।।

भावार्थ : ब्रह्मा विष्णु आदि देवतागण, गौतम आदि मुनिवृन्द, विशेष रूप से इस लिङ्ग का उत्तमाङ्ग अर्थात् शिर पर धारण करते हैं। शिवभक्ति से परिपूर्ण लक्ष्मी आदि समस्त शक्तियाँ इस शिवलिङ्ग को रात-दिन मस्तक पर धारण की रहती है ।।५६-५७।।

वेदशास्त्रपुराणेषु कामिकाद्यागमेषु च।
लिङ्गधारणमाख्यातं वीरशैवस्य निश्चयात्।।५८।।

भावार्थ : वेदों शास्त्रों पुराणों और कामिक आदि आगमों में वीरशैव के लिये लिङ्गधारण आवश्यक कहा गया है ।।५८।।

ऋगित्याह पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते।
तस्मात्पवित्रं तल्लिङ्गं धार्यं शैवमनामयम्।।५९।।

भावार्थ : ऋग्वेद ने कहा— 'हे ब्रह्मणस्पते ! (=ब्रह्मन्) यह शिवलिङ्ग वितत अर्थात् शिवादि धरण्यन्त छत्तीस तत्त्वों में व्याप्त है अतः तुम्हारे लिये पवित्र है। इस कारण इस अनामय शिवलिङ्ग का धारण करना चाहिये ।।५९।।

ब्रह्मेति लिङ्गमाख्यातं ब्रह्मणः पतिरीश्वरः।
पवित्रं तद्धि विख्यातं तत्सम्पर्कात्तनुः शुचिः।।६०।।

भावार्थ : लिङ्ग को ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्मा के पति ईश्वर अर्थात् शिव है। इस प्रकार लिङ्ग पवित्र कहा गया है। उसके सम्पर्क से उसको धारण करने वाले का शरीर भी शुद्ध हो जाता है ।।६०।।

अतप्ततनुरज्ञो वै आमः संस्कारवर्जितः।
दीक्षया रहितः साक्षान्नाप्नुयाल्लिङ्गमुत्तमम्।।६१।।

भावार्थ : तपस्या रहित अज्ञानी आम = अर्थात् अपरिपक्व अन्त:करण वाला संस्कारहीन तथा दीक्षारहित मनुष्य को उत्तम लिङ्ग को स्वत: नहीं धारण करना चाहिये स्वेच्छया लिङ्ग धारण पापास्पद होता है ।।६१।।

अघोराऽपापकाशीति या ते रुद्र शिवा तनूः।
यजुषा गीयते यस्मात् तस्माच्छैवोऽघवर्जितः।।६२।।

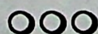
भावार्थ : यजुर्वेद कहता है— 'हे रुद्र ! आपका शरीर अघोर पापरहित और मङ्गलकारी है। इस कारण लिङ्ग का धारण करने वाला शिवोपासक निष्पाप होता है ।।६२।।

यो लिङ्गधारी नियतान्तरात्मा
नित्यं शिवाराधनबद्धचित्तः।
स धारयेत् सर्वमलापहत्यै
भस्मामलं चारु यथाप्रयोगम्।।६३।।

भावार्थ : जो लिङ्गधारी संयतचित्त वाला नित्य शिवाराधान में मन को लगाये हुए है वह समस्त पापों के नाश के लिये सुन्दर एवं निर्मल भस्म को विधि-विधान के अनुसार धारण करे ।।६३।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ भक्तस्थले गुरुकारुण्यस्थललिङ्गधारणस्थल-प्रसङ्गो नाम षष्ठः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के गुरुकारुण्यलिङ्गधारणप्रसङ्ग नामक षष्ठ परिच्छेद की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदिकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।६।।



सप्तमः परिच्छेदः

भस्मधारणस्थल - (६)

भस्मधारणसंयुक्तः पवित्रो नियताशयः।
शिवाभिधानं यत्प्रोक्तं भासनाद्भसितं तथा।।१।।

महाभस्मेति सञ्चिन्त्य महादेवं प्रभामयम्।
वर्तन्ते ये महाभागा मुख्यास्ते भस्मधारिणः।।२।।

भावार्थ : भस्मधारणस्थल वर्णन— भस्मधारण से युक्त मनुष्य निश्चित आशय वाला तथा पवित्र होता है। जो शिव का (पञ्चाक्षर मन्त्र रूप) नाम कहा गया (शिव का) भासन अर्थात् प्रकाशन करने से वह भसित अर्थात् महाभस्म है। ऐसे प्रभामय महादेव का जो लोग ध्यान करते हुए (मन्त्र जप आदि) अन्य कार्य करते हैं वे ही मुख्य भस्मधारी है ॥१-२॥

शिवाग्न्यादिसमुत्पन्नं मन्त्रन्यासादियोगतः।
तदुपाधिकमित्याहुर्भस्मतन्त्रविशारदाः ।।३।।

भावार्थ : (जो भस्म) मन्त्र न्यास आदि के योग से शिवाग्नि से उत्पन्न भस्म शास्त्र के विद्वान् उसे सोपाधिक भस्म कहते हैं ॥३॥

विभूतिर्भसितं भस्म क्षारं रक्षेति भस्मनः।
एतानि पञ्चनामानि हेतुभिः पञ्चभिर्भृशम्।।४।।

भावार्थ : भस्म के विभूति, भसित, भस्म, क्षार और रक्षा—ये पाँच नाम निश्चित रूप से पाँच कारणों से है ॥४॥

विभूतिर्भूतिहेतुत्वाद् भसितं तत्त्वभासनात्।
पापानां भर्त्सनाद्भस्म क्षरणात् क्षारमापदाम्।।५।।

रक्षणात् सर्वभूतेभ्यो रक्षेति परिगीयते।

भावार्थ : भूति अर्थात् ऐश्वर्य का कारण होने से इसे विभूति कहा गया है। इसका भसित नाम तत्त्व का भासन करने के कारण है। पापों का भर्त्सन (=नाश) करने से यह भस्म और आपत्तियों का क्षरण करने के कारण क्षार कहलाता है। समस्त प्राणियों की रक्षा करने से यह रक्षा कहा जाता है ॥५॥

नन्दा भद्रा च सुरभिः सुशीला सुमनास्तथा।।६।।
पञ्च गावो विभोर्जाताः सद्योजातादिवक्त्रतः।

भावार्थ : नन्दा, भद्रा, सुरभि, सुशीला और सुमना— ये पाँच गायें परमेश्वर के सद्योजात आदि पाँच मुखों से उत्पन्न हुई। (उनमें सद्योजात से नन्दा, वामदेव से भद्रा, अघोर से सुरभि, तत्पुरुष नामक मुख से सुशीला और ईशान नामक मुख से सुमना उत्पन्न हुई) ।।६।।

कपिला कृष्णा च धवला धूम्रा रक्ता तथैव च।।७।।
नन्दादीनां गवां वर्णाः क्रमेण परिकीर्तिताः।

भावार्थ : उन नन्दा आदि गायों के रङ्ग क्रमशः कपिल कृष्ण श्वेत धूम्र और रक्त बतलाये गये हैं ।।७।।

सद्योजाताद्विभूतिश्च वामाद्भसितमेव च।।८।।

अघोराद्भस्म संजातं तत्पुरुषात्क्षारमेव च।
रक्षा चेशानवक्त्राच्च नन्दादिद्वारतोऽभवत्।।९।।

भावार्थ : सद्योजात से 'विभूति', वामदेव से 'भसित', अघोर से 'भस्म', तत्पुरुष से 'क्षार' और ईशान वक्त्र से 'रक्षा' नामक भस्म नन्दा आदि के द्वारा उत्पन्न किये गये ।।८-९।।

धारयेन्नित्यकार्येषु विभूतिं च प्रयत्नतः।
नैमित्तिकेषु भसितं क्षारं काम्येषु सर्वदा।।१०।।

प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु भस्म नाम यथाविधि।
रक्षा च मोक्षकार्येषु प्रयोक्तव्या सदा बुधैः।।११।।

भावार्थ : नित्यकर्म में विभूति, नैमित्तिक में भसित, काम्यकर्म में क्षार, प्रायश्चित्त कर्म में भस्म और मोक्ष कार्यों में विद्वान् लोग रक्षा नामक भस्मों का विधिवत् धारण करें ।।१०-११।।

नन्दादीनां तु ये वर्णाः कपिलाद्याः प्रकीर्तिताः।
त एव वर्णा विख्याता भूत्यादीनां यथाक्रमम्।।१२।।

भावार्थ : नन्दा आदि गायों के जिन कपिल आदि रंगों की चर्चा पहले की गयी भूति आदि के भी क्रम से ही रंग कहे गये हैं ।।१२।।

भस्मोत्पादनमुद्दिष्टं चतुर्धा तन्त्रवेदिभिः।
कल्पं चैवानुकल्पं तु उपकल्पमकल्पकम्।।१३।।

एषामादिममुत्कृष्टमन्यत् सर्वमभावतः।

भावार्थ : तन्त्र शास्त्र के वेत्ताओं ने भस्म का उत्पादन चार प्रकार से बतलाया है— कल्प, अनुकल्प, उपकल्प और अकल्प। इनमें से प्रथम श्रेष्ठ है। उसके अभाव में शेष सब ग्राह्य हैं ॥१३॥

यथाशास्त्रोक्तविधिना गृहीत्वा गोमयं नवम्।।१४।।

सद्येन वामदेवेन कुर्यात् पिण्डमनुत्तमम्।
शोषयेत्पुरुषेणैव दहेद् घोराच्छिवाग्निना।।१५।।

कल्पं तद्भस्म विज्ञेयमनुकल्पमथोच्यते।
वनेषु गोमयं यच्च शुष्कं चूर्णीकृतं तथा।।१६।।

दग्धं चैवानुकल्पाख्यमापणादिगतं तु यत्।
वस्त्रेणोत्तारितं भस्म गोमूत्राबद्धपिण्डितम्।।१७।।

दग्धं प्रागुक्तविधिना भवेद्भस्मोपकल्पकम्।
अन्यैरापादितं भस्माप्यकल्पमिति निश्चितम्।।१८।।

भावार्थ : भस्मोपादन विधि[1]— शास्त्रोक्त विधि से सद्योजात मन्त्र का उच्चारण करते हुए गाय का ताजा गोबर लेकर तत्काल वामदेव मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसका सुन्दर पिण्ड बनाये। तत्पुरुष मन्त्र से उसको (धूप में) सुखाये और वहीं अघोर मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसे जलाये। इस विधि से तैयार किया गया भस्म 'कल्प' कहलाता है। इसके बाद अनुकल्प को बतलाते हैं। वन में गाय का जो सूखा और चूर्ण किया हुआ गोबर होता है उसको जलाने पर अनुकल्प नामक भस्म बनता है। जो भस्म दूकान से ले आकर कपडे से छानकर गोमूत्र से पिण्ड बनाकर पूर्वोक्त विधि से जलाया जाय वह उपकल्प भस्म होता है। अन्य (=विधान को न जानने वालों) के द्वारा तैयार किया गया भस्म अकल्प कहलाता है। (ऐसा शास्त्रों का) निश्चय है ॥१४-१८॥

एष्वेकतममादाय पात्रेषु कलशादिषु।
त्रिसन्ध्यमाचरेत्स्नानं यथासंभवमेव वा।।१९।।

भावार्थ : कलश आदि पात्रों में रखे गये उपर्युक्त भस्मों में से किसी एक भस्म को लेकर तीनों सन्ध्याओं (=प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल वाली सन्ध्याओं) में तीन बार स्नान करे अथवा यथाशक्ति एक बार स्नान करे ॥१९॥

स्नानकाले करौ पादौ प्रक्षाल्य विमलाम्भसा।
वामहस्ततले भस्म क्षिप्त्वाच्छाद्यान्यपाणिना।।२०।।

अष्टकृत्वाथ मूलेन मौनी भस्माभिमन्त्र्य च।
शिर ईशानमन्त्रेण पुरुषेण मुखं तथा।।२१।।

हृत्प्रदेशमघोरेण वामदेवेन गुह्यकम्।
पादौ सद्येन सर्वाङ्गं प्रणवेनैव सेचयेत्।।२२।।

भावार्थ : भस्म स्नान के समय पहले स्वच्छ जल से दोनों हाथ और दोनों पैरों को धुलकर बाँयें हाथ के तल पर भस्म को रखे। दायें हाथ से उसको ढँककर आठ बार मूल मन्त्र (=ॐ नमः शिवाय) से मौन होकर भस्म का अभिमन्त्रण करें। फिर ईशान मन्त्र से शिर, तत्पुरुष मन्त्र से मुख, अघोर मन्त्र से हृदय, वामदेव मन्त्र से गुह्य, सद्योजात मन्त्र से पैर तथा ओंकार से सर्वांग का अभिषेक करना चाहिये ।।२०-२२।।

भस्मना विहितं स्नानमिदमाग्नेयमुत्तमम्।
स्नानेषु वारुणाद्येषु मुख्यमेतन्मलापहम्।।२३।।

भावार्थ : भस्म से किया गया यह स्नान 'आग्नेय स्नान' कहा जाता है। वारुण आदि (सात[१] प्रकार के) स्नानों में यह मुख्य तथा आभ्यन्तर-बाह्य मलों को दूर करने वाला है ।।२३।।

भस्मस्नानवतां पुंसां यथायोगं दिनेदिने।
वारुणाद्यैरलं स्नानैर्बाह्यदोषापहारिभिः।।२४।।

भावार्थ : प्रतिदिन शास्त्रानुसार भस्म स्नान करने वालों के लिये बाह्य दोषों को हटाने वाले वारुण आदि स्नानों की कोई आवश्यकता नहीं होती ।।२४।।

आग्नेयं भस्मना स्नानं यतिभिस्तु विधीयते।
आर्द्रस्नानात्परं भस्म आर्द्रे जन्तुवधो ध्रुवम्।।२५।।

भावार्थ : यती लोग भस्म के द्वारा आग्नेय स्नान करते हैं। भस्म स्नान आर्द्र स्नान अर्थात् जल स्नान से श्रेष्ठ होता है क्योंकि जल स्नान में प्राणियों की हिंसा निश्चित होती है ।।२५।।

आर्द्रं तु प्रकृतिं विद्यात् प्रकृतिं बन्धनं विदुः।
प्रकृतेस्तु प्रहाणार्थं भस्मना स्नानमिष्यते।।२६।।

---

१. मान्त्र, भौम, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वारुण और मानस ये सात प्रकार के स्नान हैं।

भावार्थ : जल को प्रकृति समझना चाहिये। (विद्वान् लोग) प्रकृति को बन्धन मानते हैं। इस प्रकृति अर्थात् बन्धन का त्याग करने के लिये भस्म के द्वारा स्नान किया जाता है ॥२६॥

ब्रह्माद्या विबुधाः सर्वे मुनयो नारदादयः।
योगिनः सनकाद्याश्च बाणाद्या दानवा अपि।।२७।।

भस्मस्नानयुताः सर्वे शिवभक्तिपरायणाः।
निर्मुक्तदोषकलिला नित्यशुद्धा भवन्ति हि।।२८।।

भावार्थ : ब्रह्मा आदि देवता, नारद आदि मुनिगण, सनक आदि योगी, बाणा आदि राक्षस ये सब भस्मस्नान से युक्त और शिव भक्ति में संलग्न होकर दोषरूपी कीचड (अथवा दोषसमूह) से मुक्त हुए और नित्य शुद्ध हो गये ॥२७-२८॥

नमःशिवायेति भस्म कृत्वा सप्ताभिमन्त्रितम्।
उद्धूलयेत्तेन देहं त्रिपुण्ड्रं चापि धारयेत्।।२९।।

भावार्थ : 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्र से भस्म को सात बार अभिमन्त्रित करे। पुनः उसका शरीर पर उद्धूलन (=उड़ाना) साथ ही त्रिपुण्ड्र भी धारण करे ॥२९॥

सर्वाङ्गोद्धूलनं चापि न समानं त्रिपुण्ड्रकैः।
तस्मात् त्रिपुण्ड्रमेवैकं लिखेदुद्धूलनं विना।।३०।।

भावार्थ : समस्त शरीर को भस्म से उद्धूलित करना भी त्रिपुण्ड्र के बराबर नहीं होता। इस कारण (यदि इच्छा न हो तो) उद्धूलन के बिना भी केवल त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये ॥३०॥

त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं भस्मना सलिलेन च।
स्थानेषु पञ्चदशसु शरीरे साधकोत्तमः।।३१।।

भावार्थ : उत्तम कोटि के साधक को चाहिये कि प्रतिदिन भस्म और पानी मिलाकर शरीर में पन्द्रह स्थानों में त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥३१॥

उत्तमाङ्गे ललाटे च श्रवणद्वितये तथा।
गले भुजद्वये चैव हृदि नाभौ च पृष्ठके।।३२।।

बाहुयुग्मे ककुद्देशे मणिबन्धद्वये तथा।
त्रिपुण्ड्रं भस्मना धार्यं मूलमन्त्रेण साधकैः।।३३।।

भावार्थ : उत्तम साधक लोग मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए शिर, ललाट, दोनों कान, गला, दोनों भुजाओं, हृदय, नाभि, पीठ, दोनों बाहु, ककुद (= कन्धों का मध्य भाग), दोनों मणिबन्धों में भस्म के द्वारा त्रिपुण्ड्र धारण करें ॥३२-३३॥

वामहस्ततले भस्म क्षिप्त्वाच्छाद्यान्यपाणिना।
अग्निरित्यादिमन्त्रेण स्पृशन् वाराभिमन्त्र्य च।।३४।।

त्रिपुण्ड्रमुक्तस्थानेषु दध्यात् सजलभस्मना।
शिवं शिवङ्करं शान्तं स प्राप्नोति न संशयः।।३५।।

भावार्थ : जो भक्त इसके बाद पुनः बाँयें हाथ के तल पर भस्म रखकर दायें हाथ से उसे ढंककर 'अग्निरिति भस्म.......' मन्त्र से जल द्वारा अभिमन्त्रित कर (शरीर के) उक्त स्थानों में जलसहित भस्म से त्रिपुण्ड्र का जो धारण करता है वह शान्त शिव शङ्कर को प्राप्त करता है इसमें सन्देह नहीं ॥३४-३५॥

मध्याङ्गुलित्रयेणैव स्वदक्षिणकरस्य तु।
षडङ्गुलायतं मानमपि वाऽलिकमानकम्।।३६।।

नेत्रयुग्मप्रमाणेन फाले दध्यात् त्रिपुण्ड्रकम्।

भावार्थ : अपने दायें हाथ की तर्जनी मध्यमा अनामिका इन तीन अंगुलियों से छह अंगुल लम्बा अथवा मस्तक जितना लम्बा त्रिपुण्ड्र मस्तक पर लगाना चाहिये ॥३६॥

मध्यमाऽनामिकाङ्गुष्ठैरनुलोमविलोमतः ।।३७।।

धारयेद्यस्त्रिपुण्ड्राङ्कं स रुद्रो नात्र संशयः।

भावार्थ : जो मनुष्य मध्यमा अनामिका और अंगुठा से अनुलोम विलोम विधि से उल्टे सीधे त्रिपुण्ड्र का धारण करता है वह रुद्र हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं ॥३७॥

ऋजु श्वेतमनुव्याप्तं स्निग्धं श्रोत्रप्रमाणकम्।।३८।।

एवं सल्लक्षणोपेतं त्रिपुण्ड्रं सर्वसिद्धिदम्।

भावार्थ : सरल श्वेत परस्पर सटा हुआ चिकना तथा कान तक खिंचा हुआ इस प्रकार उत्तम लक्षणों से युक्त त्रिपुण्ड्र सर्वसिद्धदायक होता है ॥३८॥

प्रातःकाले च मध्याह्ने सायाह्ने च त्रिपुण्ड्रकम्।।३९।।

कदाचिद्भस्मना कुर्यात् स रुद्रो नात्र संशयः।
एवंविधं विभूत्या च कुरुते यस्त्रिपुण्ड्रकम्।।
स रौद्रधर्मसंयुक्तस्त्रयीमय इति श्रुतिः।।४०।।

भावार्थ : प्रात:काल मध्याह्न और सायंकाल में किसी भी समय कम से कम एक बार भस्म से (स्नान करने वाला अथवा त्रिपुण्ड्र लगाने वाला पुरुष) रुद्र हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकार से जो भस्म से त्रिपुण्ड्र लगाता है वह रुद्रधर्म से युक्त तथा वेद स्वरूप हो जाता है— ऐसा श्रुति कहती है ।।३९-४०।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवाः शक्रपुरोगमाः।
त्रिपुण्ड्रं धारयन्त्येव भस्मना परिकल्पितम्।।४१।।

वसिष्ठाद्या महाभागा मुनयः श्रुतिकोविदाः।
धारयन्ति सदाकालं त्रिपुण्ड्रं भस्मना कृतम्।।४२।।

भावार्थ : ब्रह्मा, विष्णू, रुद्र, इंद्र आदि देवतागण भस्म से बनाये गये त्रिपुण्ड्र को धारण करते ही है। वेदशास्त्रपारंगत वशिष्ठ आदि विद्वान् भस्म से बनाये गये त्रिपुण्ड्र को सदाकाल धारण करते हैं ।।४१-४२।।

शैवागमेषु वेदेषु पुराणेष्वखिलेषु च।
स्मृतीतिहासकल्पेषु विहितं भस्मपुण्ड्रकम्।।
धारणीयं समस्तानां शैवानां च विशेषतः।।४३।।

भावार्थ : शैवागम वेद समस्त पुराण स्मृति इतिहास तथा कल्पग्रन्थों में भस्मपुण्ड्र का विधान (वर्णित) है। इसे सब लोगों को विशेष रूप से शैवों (शिवभक्तों) को धारण करना चाहिये ।।४३।।

नास्तिको भिन्नमर्यादो दुराचारपरायणः।
भस्मत्रिपुण्ड्रधारी चेन्मुच्यते सर्वकिल्बिषैः।।४४।।

भावार्थ : नास्तिक, शास्त्रीय नियमों का उल्लङ्घन करने वाला, दुराचारी भी यदि भस्मत्रिपुण्ड्र का धारण करने वाला है तो समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ।।४४।।

रुद्राक्षधारणस्थल - (७)

भस्मना विहितस्नानस्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकः।
शिवार्चनपरो नित्यं रुद्राक्षमपि धारयेत्।।४५।।

भावार्थ : रुद्राक्षधारणस्थल वर्णन— जिसने भस्म से स्नान किया हो, मस्तक पर त्रिपुण्ड्र धारण किया हो तथा प्रतिदिन शिव की पूजा करता हो उसे रुद्राक्ष भी धारण करना चाहिये ।।४५।।

रुद्राक्षधारणादेव मुच्यन्ते सर्वपातकैः।
दुष्टचित्ता दुराचारा दुष्प्रज्ञा अपि मानवाः।।४६।।

भावार्थ : दूषित मन वाले, दुराचारी, भ्रष्टबुद्धि मनुष्य भी केवल रुद्राक्षधारण से समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ।।४६।।

पुरा त्रिपुरसंहारे त्रिनेत्रो जगतां पतिः।।
उदपश्यत् पुरां योगमुन्मीलितविलोचनः।।४७।।

निपेतुस्तस्य नेत्रेभ्यो बहवो जलबिन्दवः।
तेभ्यो जाता हि रुद्राक्षा रुद्राक्षा इति कीर्तिताः।।४८।।

भावार्थ : प्राचीन काल में विश्व के स्वामी भगवान् शंकर ने त्रिपुरसंहार के समय आँख खोलकर यौगिक दृष्टि (=शाम्भवी मुद्रा) से (चिरकाल तक) उनके योग को देखा तो उनके नेत्रों से जो अश्रु (धरती पर) गिरे वे ही रुद्राक्ष बन गये। (और रुद्र की आँखों से उत्पन्न होने के कारण ये संसार में) 'रुद्राक्ष' नाम से प्रसिद्ध हुये ।।४७-४८।।

रुद्रनेत्रसमुन्पन्ना रुद्राक्षा लोकपावनाः।
अष्टत्रिंशत्प्रभेदेन भवन्त्युत्पत्तिभेदतः।।४९।।

भावार्थ : रुद्र के नेत्रों से उत्पन्न तथा लोकपावन ये रुद्राक्ष उत्पत्ति के भेद से अँड़तीस प्रकार के होते हैं ।।४९।।

नेत्रात्सूर्यात्मनः शम्भोः कपिला द्वादशोदिताः।
श्वेताः षोडशसञ्जाताः सोमरूपाद्विलोचनात्।।५०।।

कृष्णा दशविधा जाता वह्निरूपाद्विलोचनात्।
एवमुत्पत्तिभेदेन रुद्राक्षा बहुधा स्मृताः।।५१।।

भावार्थ : शिव के सूर्यात्मक नेत्र से बारह कपिल वर्ण के (रुद्राक्ष) उत्पन्न कहे गये हैं। चन्द्ररूप नेत्र से श्वेत वर्ण के सोलह रुद्राक्ष हुए। वह्निरूप नेत्र से दश[१] प्रकार के कृष्ण वर्ण के रुद्राक्ष उत्पन्न हुए। इस प्रकार उत्पत्ति भेद से रुद्राक्ष अनेक (१२+१६+१०=३८) प्रकार के हैं ।।५०-५१।।

---

१. अग्नि की दस कलायें हैं । धूम्रार्चिष आदि उन कलाओं के रङ्ग काले हैं, अतः दस प्रकार के कृष्णवर्ण वाले रुद्राक्षों का जन्म हुआ ।

अच्छिद्रं कनकप्रख्यमनन्यधृतमुत्तमम्।
रुद्राक्षं धारयेत् प्राज्ञः शिवपूजापरायणः।।५२।।

भावार्थ : छिद्र रहित अर्थात् जिसे कीड़े न खाये हों ऐसा, सोने के रङ्ग वाला तथा जिसका किसी ने धारण न किया हो वह रुद्राक्ष उत्तम होता है। शिवपूजा में परायण बुद्धिमान् को ऐसे रुद्राक्ष का धारण करना चाहिये ॥५२॥

यथास्थानं यथावक्त्रं यथायोगं यथाविधि।
रुद्राक्षधारणं वक्ष्ये रुद्रसायुज्यसिद्धये।।५३।।

भावार्थ : (अब मैं) शिवसायुज्य[१] के लिये यथा स्थान मुख शास्त्र और विधान की दृष्टि से रुद्राक्षधारण को कहूँगा ॥५३॥

शिखायामेकमेकास्यं रुद्राक्षं धारयेद् बुधः।
द्वित्रिद्वादशवक्त्राणि शिरसि त्रीणि धारयेत् ।।५४।।

षट्त्रिंशद्धारयेन्मूर्ध्नि नित्यमेकादशानान्।
दशसप्तपञ्चवक्त्रान् षट् षट् कर्णद्वये वहेत्।।५५।।

षडष्टवदनान् कण्ठे द्वात्रिंशद्धारयेत् सदा।
पञ्चाशद्धारयेद् विद्वान् चतुर्वक्त्राणि वक्षसि।।५६।।

त्रयोदशमुखान् बाह्वोर्धरेत् षोडश षोडश।
प्रत्येकं द्वादश वहेन्नवास्यान् मणिबन्धयोः।।५७।।

चतुर्दशमुखं यज्ञसूत्रमष्टोत्तरं शतम्।
धारयेत् सर्वकालं तु रुद्राक्षं शिवपूजकः।।५८।।

भावार्थ : विद्वान् एक एकमुखी रुद्राक्ष का शिखा में धारण करे। दो तीन और बारह मुखी इन तीन प्रकार के रुद्राक्षों का शिर पर धारण करे। एकादशमुखी छत्तीस रुद्राक्ष मस्तक पर तथा दश सात और पाँच मुखों वाले रुद्राक्षों का छह-छह की संख्या में दोनों कानों में धारण करे। षट् और अष्टमुखी रुद्राक्षों को बत्तीस की संख्या में कण्ठ में धारण करे। चारमुखी पचास रुद्राक्षों का विद्वान् वक्षःस्थल पर धारण करे। तरेह मुखों वाले सोहल-सोलह रुद्राक्ष दोनों भुजाओं में धारण करे।

---

१. मुक्ति के चार भेद शास्त्रों में वर्णित हैं— सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य । इनमें सायुज्य मुक्ति सर्वोत्कृष्ट है ।

नवमुखी रुद्राक्षों का बारह-बारह दोनों मणिबन्ध (=कलाइयों) में रखे। चौदहमुखी एक सौ आठ रुद्राक्षों का शिवार्चक सब समय यज्ञोपवीत के रूप में धारण करे ॥५४-५८॥

एवं रुद्राक्षधारी यः सर्वकाले तु वर्तते।
तस्य पापकथा नास्ति मूढस्यापि न संशयः॥५९॥

भावार्थ : इस प्रकार जो सब समय रुद्राक्ष धारण करता है ऐसे मूर्ख (=शास्त्रानभिज्ञ अत एव निरंकुशाचारी) को भी पाप नहीं लगता ॥५९॥

ब्रह्महा मद्यपायी च स्वर्णहृद् गुरुतल्पगः।
मातृहा पितृहा चैव भ्रूणहा कृतघातकः॥
रुद्राक्षधारणादेव मुच्यते सर्वपातकैः॥६०॥

भावार्थ : ब्रह्मघाती, मद्यपायी, स्वर्णचोर, गुरुपत्नी के साथ समागम करने वाला, माता-पिता का हत्यारा, भ्रूणहा, कृतघ्न भी रुद्राक्षधारण के कारण सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥६०॥

दर्शनात् स्पर्शनाच्चैव स्मरणादपि पूजनात्।
रुद्राक्षधारणाल्लोके मुच्यन्ते पातकैर्जनाः॥६१॥

भावार्थ : (रुद्राक्ष के) दर्शन-स्पर्शन-स्मरण-पूजन तथा उसके धारण से लोग पापों से मुक्त हो जाते हैं ॥६१॥

ब्राह्मणो वान्त्यजो वापि मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा।
रुद्राक्षधारणादेव मुच्यते सर्वपातकैः॥६२॥

भावार्थ : ब्राह्मण हो या अन्त्यज, मूर्ख हो अथवा पण्डित केवल रुद्राक्षधारण से सब पापों से मुक्त हो जाता है अर्थात् सम्पूर्ण मानव जाति रुद्राक्ष धारण की अधिकारिणी है ॥६२॥

गवां कोटिप्रदानस्य यत्फलं भुवि लभ्यते।
तत्फलं लभते मर्त्यो नित्यं रुद्राक्षधारणात्॥६३॥

भावार्थ : पृथ्वी पर एक करोड़ गाय देने से जो फल प्राप्त होता है मनुष्य रुद्राक्ष के नित्य धारण से उस फल को प्राप्त करता है ॥६३॥

मृत्युकाले च रुद्राक्षं निष्पीड्य सह वारिणा।
यः पिबेच्चिन्तयन् रुद्रं रुद्रलोकं स गच्छति॥६४॥

भावार्थ : मृत्यु के समय रुद्राक्ष को पानी में पीस कर जो रुद्र का ध्यान करता हुआ उसको पीता है वह रुद्रलोक को प्राप्त होता है ।।६४।।

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गा धृतरुद्राक्षमालिका: ।।६५।।
ये भवन्ति महात्मानस्ते रुद्रा नात्र संशय: ।।६५।।

भावार्थ : जो लोग सारे शरीर में भस्म रमाये एवं रुद्राक्ष की माला धारण किये रहते हैं वे महात्मा रुद्र ही हैं इसमें संशय नहीं।।६५।।

नित्यानि काम्यानि निमित्तजानि
कर्माणि सर्वाणि सदापि कुर्वन्।
यो भस्मरुद्राक्षधरो यदि स्याद्
द्विजो न तस्यास्ति फलोपपत्ति: ।।६६।।

भावार्थ : नित्य काम्य और नैमित्तिक समस्त कर्मों को सदा करता हुआ भी जो द्विज भस्म तथा रुद्राक्ष धारण करने वाला होता है उसको (उसके) कर्मों का फल नहीं भोगना पड़ता (अर्थात् वह मुक्त हो जाता है) ।।६६।।

सर्वेषु वर्णाश्रमसंगतेषु
नित्यं सदाचारपरायणेषु।
श्रुतिस्मृतिभ्यामिह चोद्यमानो
विभूतिरुद्राक्षधर: समान: ।।६७।।

भावार्थ : समस्त वर्णाश्रम वालों तथा नित्य सदाचार में लगे हुए लोगों के मध्य भस्म एवं रुद्राक्ष धारण करने वाला श्रुति और स्मृति के द्वारा समान रूप से आदरणीय होता है ।।६७।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ भक्तस्थले भस्मरुद्राक्षधारणस्थलप्रसङ्गो नाम सप्तमः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के भस्मरुद्राक्षधारणस्थल नामक सप्तम परिच्छेद की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदिकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।७।।

OOO

अष्टमः परिच्छेदः

पञ्चाक्षरीजपस्थल - (८)

धृतश्रीभूतिरुद्राक्षः प्रयतो लिङ्गधारकः।
जपेत्पञ्चाक्षरीविद्यां शिवतत्त्वप्रबोधिनीम्।।१।।

भावार्थ : पञ्चाक्षरजप स्थलवर्णन— विभूति और रुद्राक्ष धारण करने वाला, पवित्र तथा लिङ्ग का धारक मनुष्य शिवतत्त्व का ज्ञान कराने वाली पञ्चाक्षरी विद्या (= पञ्चाक्षर मन्त्र = 'ॐ नमः शिवाय') का जप करे ।।१।।

शिवतत्त्वात् परं नास्ति यथा तत्त्वान्तरं महत्।
तथा पञ्चाक्षरीमन्त्रान्नास्ति मन्त्रान्तरं महत्।।२।।

भावार्थ : जिस प्रकार शिव तत्त्व से बढ़कर कोई अन्य तत्त्व नहीं है। उसी प्रकार पञ्चाक्षर मन्त्र से बढ़कर कोई दूसरा मन्त्र नहीं है ।।२।।

ज्ञाते पञ्चाक्षरीमन्त्रे किं वा मन्त्रान्तरैः फलम्।
ज्ञाते शिवे जगन्मूले किं फलं देवतान्तरैः।।३।।

भावार्थ : पञ्चाक्षर मन्त्र का ज्ञान होने पर अन्य मन्त्रों से क्या लाभ? संसार के कारणभूत शिव का ज्ञान होने पर अन्य देवताओं के ज्ञान का क्या फल (अर्थात् कुछ नहीं) ।।३।।

सप्तकोटिषु मन्त्रेषु मन्त्रः पञ्चाक्षरो महान्।
ब्रह्मविष्ण्वादिदेवेषु यथा शम्भुर्महत्तरः।।४।।

भावार्थ : सात करोड़ मन्त्रों में यह पञ्चाक्षर मन्त्र उसी प्रकार महान् है जैसे ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओं में शिव महान् हैं ।।४।।

अशेषजगतां हेतुः परमात्मा महेश्वरः।
तस्य वाचकमन्त्रोऽयं सर्वमन्त्रैककारणम्।।५।।

भावार्थ : सम्पूर्ण विश्व का कारण परमात्मा शिव है उनका वाचक यह मन्त्र समस्त मन्त्रों का एकमात्र हेतु है ।।५।।

तस्याभिधानमन्त्रोऽयमभिधेयश्च स स्मृतः।
अभिधानाभिधेयत्वान्मन्त्रात् सिद्धः परः शिवः।।६।।

भावार्थ : यह मन्त्र उनका वाचक है। वह इस (मन्त्र) के वाच्य कहे गये हैं। वाचक वाच्य सम्बन्ध होने से मन्त्र से परमशिव की सिद्धि होती है ।।६।।

विशेष : परात्रीशिका के अनुसार पृथिवी से लेकर पुरुष तक पचीस तत्त्व 'क' से 'म' तक के पचीस अक्षरों से उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार आदिक्षान्त वर्ण सृष्टि के कारण हैं। इस प्रकार यह सृष्टि वर्णों से उत्पन्न होती है। आचार्य का कथन है कि 'शिवाय' में शकार पञ्चब्रह्म के वकार माया तत्त्व का वाचक है। इसी प्रकार 'शिवाय' शब्द सम्पूर्ण सृष्टि का वाचक है।

नमःशब्दं वदेत्पूर्वं शिवायेति ततः परम्।
मन्त्रः पञ्चाक्षरो ह्येष सर्वश्रुतिशिरोगतः।।७।।

भावार्थ : पहले 'नमः' शब्द कहना चाहिये। उसके बाद 'शिव' यह पञ्चाक्षर मन्त्र है जो समस्त वेदों का शिर है ।।७।।

आदितः परिशुद्धत्वान्मलत्रयवियोगतः।
शिव इत्युच्यते शम्भुश्चिदानन्दघनः प्रभुः।।८।।

भावार्थ : चिदानन्दघन भगवान् शिव प्रारम्भ से ही शुद्ध तथा (आणव, मायीय, कार्म नामक) तीन मलों से रहित होने के कारण शिव कहे हाते हैं ।।८।।

आस्पदत्वादशेषाणां मङ्गलानां विशेषतः।
शिवशब्दाभिधेयो हि देवदेवस्त्रियम्बकः।।९।।

भावार्थ : विशेष रूप से सब मङ्गलों का स्थान होने के कारण यह देवाधिदेव भगवान् त्र्यम्बक शिव शब्द के वाच्य हैं ।।९।।

शिव इत्यक्षरद्वन्द्वं परब्रह्मप्रकाशकम्।
मुख्यवृत्त्या तदन्येषां शब्दानां गुणवृत्तयः।।१०।।

भावार्थ : 'शिव' यह दो अक्षरों का समुच्चय मुख्य वृत्ति अर्थात् अभिधा के द्वारा परब्रह्म का प्रकाशक है। उसमें अन्य शब्दों का वह लक्षणा के द्वारा वाच्य होता है ।।१०।।

तस्मान्मुख्यतरं नाम शिव इत्यक्षरद्वयम्।
सच्चिदानन्दरूपस्य शम्भोरमिततेजसः।।११।।

भावार्थ : इस कारण 'शिव' यह दो अक्षर सच्चिदानन्दरूप असीम तेजस्वी शम्भु का मुख्यतर नाम है ॥११॥

एतन्नामावलम्बेन मन्त्रः पञ्चाक्षरः स्मृतः।
यस्मादतः सदा जप्यो मोक्षकाङ्क्षिभिरादरात्।।१२।।

यथाऽनादिर्महादेवः सिद्धः संसारमोचकः।
तथा पञ्चाक्षरो मन्त्रः संसारक्षयकारकः।।१३।।

भावार्थ : इस नाम का अवलम्बन करने के कारण उक्त मन्त्र 'पञ्चाक्षर' कहा गया है। इसलिये मोक्षार्थी जनों के द्वारा इसका आदर के साथ जप किया जाना चाहिये। जिस प्रकार अनादि महादेव संसार के मोचक के रूप में सिद्ध (=प्रसिद्ध) हैं उसी प्रकार यह पञ्चाक्षर मन्त्र भी संसार का नाश करने वाला है ॥१२-१३॥

पञ्चभूतानि सर्वाणि पञ्चतन्मात्रकाणि च।
ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चापि पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च।।१४।।

पञ्चब्रह्माणि पञ्चापि कृत्यानि सह कारणैः।
बोध्यानि पञ्चभिर्वर्णैः पञ्चाक्षरमहामनोः।।१५।।

भावार्थ : इस पञ्चाक्षर महामन्त्र से पञ्चमहाभूत, पाँच तन्मात्रायें, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पञ्च ब्रह्म (=ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव पञ्चसादाख्य—सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान) तथा इन पञ्च कारणों के साथ पञ्चकृत्य (=सृष्टि, स्थिति, संकार, निग्रह और अनुग्रह) समझे जाने चाहिये ॥१४-१५॥

पञ्चधा पञ्चधा यानि प्रसिद्धानि विशेषतः।
तानि सर्वाणि वस्तूनि पञ्चाक्षरमयानि हि।।१६।।

भावार्थ : विशेष रूप से पाँच-पाँच करके जितनी वस्तुयें प्रसिद्ध हैं वे सब पञ्चाक्षरमय हैं ॥१६॥

ओंकारपूर्वो मन्त्रोऽयं पञ्चाक्षरमयः परः।
शैवागमेषु वेदेषु षडक्षर इति स्मृतः।।१७।।

भावार्थ : पाँच अक्षरों वाला यह उत्कृष्ट मन्त्र पहले ओंकार जुड़ने से शैवागमों और वेदों में षडक्षर (=छह अक्षरों वाला) कहा गया है ॥१७॥

मन्त्रस्यास्यादिभूतेन प्रणवेन महामनोः।
प्रबोध्यते महादेवः केवलश्चित्सुखात्मकः।।१८।।

भावार्थ : इस महामन्त्र के पहला जो प्रणव है उससे केवल चिदानन्द महादेव का प्रबोधन होता है ॥१८॥

प्रणवेनैकवर्णेन परब्रह्म प्रकाश्यते।
अद्वितीयं परानन्दं शिवाख्यं निष्प्रपञ्चकम्॥१९॥

भावार्थ : एक वर्ण वाले प्रणव से अद्वितीय परानन्दस्वरूप प्रपञ्चरहित शिव नामक परब्रह्म प्रकाशित होता है ॥१९॥

परमात्ममनुर्ज्ञेयः सोऽहंरूपः सनातनः।
जायते हंसयोर्लोपादोमित्येकाक्षरो मनुः॥२०॥

भावार्थ : 'सोऽहम्' को (सनातन) परमात्मा का सनातन मन्त्र जानना चाहिये। 'सोऽहम्' में से 'ह' और 'स' का लोप होने से ओऽम् बचता है। यह एक अक्षर वाला मन्त्र है ॥२०॥

विशेष : 'सोऽहम्' में हकार सूर्यबीज होने से वेदक है तथा सकार चन्द्रबीज होने से वेद्य है। सकार और हकार अर्थात् वेद्य और वेदक के हट जाने से प्रकाशमात्र अवशिष्ट रहता है। यही ओऽम् निष्प्रपञ्च ब्रह्मा का प्रतीक है।

प्रणवेनैव मन्त्रेण बोध्यते निष्कलः शिवः।
पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण पञ्चब्रह्मतनुस्तथा॥२१॥

निष्कलः संविदाकारः सकलो विश्वमूर्तितः।
उभयात्मा शिवो मन्त्रे षडक्षरमये स्थितः॥२२॥

भावार्थ : प्रणव मन्त्र से केवल निष्कल शिव का ज्ञान होता है। पञ्चाक्षर मन्त्र से पञ्च ब्रह्मात्मक शरीर रूपी शिव का ज्ञान होता है ॥२१-२२॥

विशेष : प्रणव को उपनिषदों में सप्तपञ्च ब्रह्म क़हा गया है किन्तु वास्तविकता यह है कि इसमें जो प्रपञ्च है वह सूक्ष्मतम है। अतः इसको निष्कल भी कही जा सकती है। प्रणव बीज स्वरूप है और पञ्चाक्षरी विद्या उसका वृक्ष।

जहाँ तक षडक्षर मन्त्र का प्रश्न है उसमें संविदाकार निष्कल तथा विश्वमूर्त्ति सकल दोनों प्रकार शिवरूप इसमें स्थित है॥२१-२२॥

मूलं विद्या शिवः शैवं सूत्रं पञ्चाक्षरस्तथा।
एतानि नामधेयानि कीर्तितानि महामनोः॥२३॥

भावार्थ : इस महामन्त्र के मूल विद्या शिव शैवसूत्र और पञ्चाक्षर ये पाँच नाम कहे गये हैं ॥२३॥

पञ्चाक्षरीमिमां विद्यां प्रणवेन षडक्षरीम्।
जपेत् समाहितो भूत्वा शिवपूजापरायणः।।२४।।

भावार्थ : शिवपूजा में लगा हुआ मनुष्य प्रणव के साथ अर्थात् प्रणव को जोड़कर छह अक्षरों वाले इस पञ्चाक्षरी विद्या का जप समाहित चित्त होकर करे ॥२४॥

प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राङ्मुखेदङ्मुखोऽपि वा।
चिन्तयन् हृदयाम्भोजे देवदेवं त्रियम्बकम्।।२५।।

सर्वालङ्कारसंयुक्तं साम्बं चन्द्रार्धशेखरम्।
जपेदेतां महाविद्यां शिवरूपामनन्यधीः।।२६।।

भावार्थ : पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर तीन प्राणायाम करने के बाद साधक अपने हृदयकमल में पहले सर्वालङ्कारयुक्त पार्वतीसहित तीन नेत्र वाले भगवान् चन्द्रचूड का ध्यान करे। उसके बाद एकाग्रचित्त होकर इस शिवरूपा महाविद्या का जप करे ॥२५-२६॥

जपस्तु त्रिविधः प्रोक्तो वाचिकोपांशुमानसः।
श्रूयते यस्तु पार्श्वस्थैर्यथावर्णसमन्वयः।।२७।।

वाचिकः स तु विज्ञेयः सर्वपापप्रभञ्जनः।
ईषत्स्पृष्ट्वाधरपुटं यो मन्दमभिधीयते।।२८।।

पार्श्वस्थैसश्रुतः सोऽयमुपांशुः परिकीर्तितः।
अस्पृष्ट्वाधरमस्पन्दि जिह्वाग्रं योऽन्तरात्मना।।
भाव्यते वर्णरूपेण स मानस इति स्मृतः।।२९।।

भावार्थ : जप तीन प्रकार का बतलाया गया है— वाचिक, उपांशु और मानस। जो पास में बैठे हुए लोगों के द्वारा वर्णक्रमानुसार सुना जा सके, समस्त पापों के नाशक उस प्रकार के जप को वाचिक जप समझना चाहिये। दोनों ओठों को छूते हुए जो धीमे-धीमे कहा जाता है तथा पास के लोग जिसको नहीं सुन पाते, वह उपांशु जप कहलाता है। जिसमें दोनों होठ नहीं स्पृष्ट होते मुख के अन्दर जिह्वा भी नहीं हिलती तथा जिसकी वर्णरूप में अन्दर-अन्दर भावना की जाती है, वह मानस जप कहा गया है ॥२७-२९॥

यावन्तः कर्मयज्ञाद्या व्रतदानतपांसि च।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।३०।।

भावार्थ : जितने कर्मयज्ञ आदि हैं, जितने व्रत दान और तप रूप यज्ञ हैं वे सब जप यज्ञ की सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं है ॥३०॥

माहात्म्यं वाचिकस्यैतज्जपयज्ञस्य कीर्तितम्।
तस्माच्छतगुणोपांशुः साहस्रो मानसः स्मृतः।।३१।।

भावार्थ : यह माहात्म्य वाचिक जप यज्ञ का बतलाया गया है। उससे सौ गुना उत्कृष्ट उपांशु तथा हजार गुना उत्कृष्ट मानस जप माना (कहा) गया है ॥३१॥

वाचिकात् तदुपांशोश्च जपादस्य महामनोः।
मानसो हि जपः श्रेष्ठो घोरसंसारनाशकः।।३२।।

भावार्थ : इस महामन्त्र के वाचिक तथा उपांशु की अपेक्षा मानस जप श्रेष्ठ है वह भयानक संसार का नाश करने वाला है ॥३२॥

एतेष्वेतेन विधिना यथाभावं यथाक्रमम्।
जपेत् पञ्चाक्षरीमेतां विद्यां पाशविमुक्तये।।३३।।

भावार्थ : इन तीनों प्रकारों में से किसी भी प्रकार से भक्ति भावना के साथ बतलाये गये क्रम से भवपाश से मुक्ति पाने के लिये इस पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिये ॥३३॥

अनेन मूलमन्त्रेण शिवलिङ्गं प्रपूजयेत्।
नित्यं नियमसम्पन्नः प्रयतात्मा शिवात्मकः।।३४।।

भावार्थ : शिव के भक्त को चाहिये कि वह विशुद्ध चित्त वाला होकर नियमानुसार इस मूलमन्त्र से शिवलिङ्ग का नित्य पूजन करे ॥३४॥

भक्त्या पञ्चाक्षरेणैव यः शिवं सकृदर्चयेत्।
सोऽपि गच्छेच्छिवस्थानं मन्त्रस्यास्यैव गौरवात्।।३५।।

भावार्थ : जो इस पञ्चाक्षर मन्त्र से भक्तिपूर्वक शिव की एक बार पूजा करता है वह भी इस मन्त्र की महिमा से शिवस्थान को जाता है ॥३५॥

अब्भक्षा वायुभक्षाश्च ये चान्ये व्रतकर्शिताः।
तेषामेतैर्व्रतैर्नास्ति शिवलोकसमागमः।।३६।।

भावार्थ : जो लोग केवल जल पीकर या वायु का सेवन कर व्रत करते हैं अथवा अन्य प्रकार के व्रत करने वाले हैं उनको इन व्रतों से शिवलोक की प्राप्ति नहीं होती ॥३६॥

तस्मात्तपांसि यज्ञाश्च व्रतानि नियमास्तथा।
पञ्चाक्षरार्चनस्यैते कोट्यंशेनापि नो समाः।।३७।।

भावार्थ : इस कारण तपस्या यज्ञ नियम और व्रत ये सब पञ्चाक्षर मन्त्र के (द्वारा शिव का) पूजन एवं जप के करोड़वें भाग के बराबर नहीं है ॥३७॥

अशुद्धो वा विशुद्धो वा सकृत् पञ्चाक्षरेण यः।
पूजयेत् पतितो वापि मुच्यते नात्र संशयः॥३८॥

भावार्थ : अशुद्ध हो या विशुद्ध (अर्थात् जन्म से अशुद्ध हो अथवा बाद में अशुद्ध हो गया हो) अथवा पतित हो, एक बार पञ्चाक्षर से जो (शिव) की अर्चना करता है वह मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥३८॥

सकृदुच्चारमात्रेण पञ्चाक्षरमहामनोः।
सर्वेषामपि जन्तूनां सर्वपापक्षयो भवेत्॥३९॥

भावार्थ : पञ्चाक्षर महामन्त्र का केवल एक बार उच्चारण करने से समस्त जीवों का पापक्षय हो जाता है ॥३९॥

अन्येऽपि बहवो मन्त्रा विद्यन्ते सकलागमे।
भूयो भूयः समभ्यासात् पुरुषार्थप्रदायिनः॥४०॥

एष मन्त्रो महाशक्तिरीश्वरप्रतिपादकः।
सकृदुच्चारणादेव सर्वसिद्धिप्रदायकः॥४१॥

भावार्थ : समस्त आगमों में अन्य भी बहुत से मन्त्र हैं, किन्तु वे बार-बार अभ्यास करने पर ही फल देते हैं। यह मन्त्र महाशक्तिसम्पन्न और ईश्वर का वाचक है। इसलिये एक बार उच्चारण से ही यह समस्त सिद्धियों को देता है ॥४०-४१॥

पञ्चाक्षरीं समुच्चार्य पुष्पं लिङ्गे विनिक्षिपेत्।
यस्तस्य वाजपेयानां सहस्रफलमिष्यते॥४२॥

भावार्थ : जो मनुष्य पञ्चाक्षर मन्त्र का उच्चारण करते हुए शिवलिङ्ग के ऊपर पुष्प चढ़ाता है उसे हजार वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है ॥४२॥

अग्निहोत्रं त्रयो वेदा यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः।
पञ्चाक्षरजपस्यैते कोट्यंशेनापि नो समाः॥४३॥

भावार्थ : अग्निहोत्र तीनों वेदों (का स्वाध्याय) बहुत दक्षिणा वाले यज्ञ से सब पञ्चाक्षर जप के करोड़वें भाग के भी बराबर नहीं है ॥४३॥

पुरा सानन्दयोगीन्द्रः शिवज्ञानपरायणः।
पञ्चाक्षरं समुच्चार्य नारकानुदतारयत्॥४४॥

भावार्थ : प्राचीन काल में शिवज्ञानपरायण सानन्द योगीन्द्र ने पञ्चाक्षर मन्त्र का उच्चारण कर अट्ठाईस करोड़ नरक वासियों का उद्धार किया ।।४४।।

सिद्ध्या पञ्चाक्षरस्यास्य शतानन्दः पुरा मुनिः।
नरकं स्वर्गमकरोत् सङ्गिरस्यापि पापिनः।।४५।।

भावार्थ : प्राचीन काल में शतानन्द नामक मुनि ने इस पञ्चाक्षर की सिद्धि के द्वारा सङ्गिर नामक पापी के नरक को स्वर्ग बना दिया ।।४५।।

उपमन्युः पुरा योगी मन्त्रेणानेन सिद्धिमान्।
लब्धवान् परमेशनाच्छैवशास्त्रप्रवक्तृताम्।।४६।।

भावार्थ : प्राचीन काल में उपमन्यु नामक योगी इस मन्त्र से सिद्धि को प्राप्त कर परमेश्वर से शैवशास्त्र की प्रवक्तृता को प्राप्त किये ।।४६।।

वसिष्ठवामदेवाद्या मुनयो मुक्तकिल्बिषाः।
मन्त्रेणानेन संसिद्धा महातेजस्विनोऽभवन्।।४७।।

भावार्थ : इस मन्त्र के द्वारा वशिष्ठ वामदेव आदि मुनि पापरहित होकर पूर्ण सिद्ध और महातेजस्वी हो गये ।।४७।।

ब्रह्मादीनां च देवानां जगत्सृष्ट्यदिकर्मणि।
मन्त्रस्यास्यैव माहात्म्यात् सामर्थ्यमुपजायते।।४८।।

भावार्थ : जगत् की सृष्टि आदि (=स्थिति और संहार) कार्यों में ब्रह्मा आदि (=विष्णु रुद्र) का सामर्थ्य इसी मन्त्र की महिमा से होता है ।।४८।।

किमिह बहुभिरुक्तैर्मन्त्रमेवं महात्मा
प्रणवसहितमादौ यस्तु पञ्चाक्षराख्यम्।
जपति परमभक्त्या पूजयन् देवदेवं
स गतदुरितबन्धो मोक्षलक्ष्मीं प्रयाति।।४९।।

भावार्थ : और अधिक कहने से क्या लाभ? जो महात्मा प्रणव युक्त इस पञ्चाक्षर नामक मन्त्र का परम भक्ति के साथ देवाधिदेव भगवान् शंकर की पूजा करता हुआ जप करता है वह पापरूपी बन्धन का नाश कर मोक्षरूपी ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ।।४९।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां
शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये

श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ
भक्तस्थले पञ्चाक्षरजपस्थलप्रसङ्गो
नाम अष्टमः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के पञ्चाक्षरीजपप्रसङ्ग नामक अष्टम परिच्छेद की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदिकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।८।।

OOO

नवम: परिच्छेद:

भक्तमार्गक्रियास्थल - (९)

भूतिरुद्राक्षसंयुक्तो लिङ्गधारी सदाशिव:।
पञ्चाक्षरजपोद्योगी शिवभक्त इति स्मृत:।।१।।

भावार्थ : भस्म और रुद्राक्ष से संयुक्त लिङ्गधारी सदाशिव पञ्चाक्षर के जप में लगे रहते हैं। इस कारण वे शिवभक्त कहे गये है अथवा जो व्यक्ति सदा शिवपञ्चाक्षर जप का उद्यमी है वह शिवभक्त माना गया है ॥१॥

श्रवणं कीर्तनं शम्भो: स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।२।।

एवं नवविधा भक्ति: प्रोक्ता देवेन शम्भुना।
दुर्लभा पापिनां लोके सुलभा पुण्यकर्मणाम्।।३।।

भावार्थ : भगवान् शंकर (की कथा) का श्रवण, उनका स्मरण, उनके पैर की पूजा, अर्चना, वन्दना करना, अपने को उनका दास समझना, उनको अपना मित्र मानना तथा अपने को पूर्णतया उनके लिये समर्पित कर देना— इस प्रकार भगवान् शम्भु ने नव प्रकार की भक्ति का वर्णन किया है। (यह भक्ति) संसार में पापियों के लिये दुर्लभ और पुण्यकर्मा लोगों के लिये सुलभ है ॥२-३॥

अधमे चोत्तमे वापि यत्र कुत्रचिदूर्जिता।
वर्तते शाङ्करी भक्ति: स भक्त इति गीयते।।४।।

भावार्थ : अधम अथवा उत्तम जिस किसी भी (व्यक्ति) में शंकर की भक्ति तीव्र होती है वह भक्त कहा जाता है ॥४॥

भक्ति: स्थिरीकृता यस्मिन् म्लेच्छे वा द्विजसत्तमे।
शम्भो: प्रिय: स विप्रश्च न प्रियो भक्तिवर्जित:।।५।।

भावार्थ : जिस म्लेच्छ अथवा उत्तम ब्राह्मण में भक्ति स्थिर होती है। वह म्लेच्छ अथवा ब्राह्मण शिव का प्रिय होता है, जो भक्ति से रहित है, वह प्रिय नहीं है ॥५॥

सा भक्तिर्द्विविधा ज्ञेया बाह्याभ्यन्तरभेदतः।
बाह्या स्थूलान्तरा सूक्ष्मा वीरमाहेश्वरादृता।।६।।

भावार्थ : वह भक्ति बाह्य आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार की जाननी चाहिये। स्थूल भक्ति बाह्य कही जाती है। सूक्ष्म भक्ति आभ्यन्तर कही जाती है। (यह सूक्ष्म भक्ति) अधिक आदरणीय होती है। (अथवा वीरमाहेश्वर के द्वारा आदर को प्राप्त भक्ति बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार की है। बाह्य भक्ति स्थूल एवं आन्तर सूक्ष्म होती है ।।६।।

सिंहासने शुद्धदेशे सुरम्ये रत्नचित्रिते।
शिवलिङ्गस्य पूजा या सा बाह्या भक्तिरुच्यते।।७।।

भावार्थ : शुद्ध और रमणीय स्थान में रत्नजटित सिंहासन के ऊपर शिवलिङ्ग की जो पूजा की जाती है। वह बाह्य भक्ति कही जाती है ।।७।।

लिङ्गे प्राणं समाधाय प्राणे लिङ्गं तु शाम्भवम्।
स्वस्थं मनस्तथा कृत्वा न किञ्चिच्चिन्तयेद् यदि।।८।।

साऽऽभ्यन्तरा भक्तिरिति प्रोच्यते शिवयोगिभिः।
सा यस्मिन् वर्तते तस्य जीवनं भ्रष्टबीजवत्।।९।।

भावार्थ : लिङ्ग में प्राण और प्राण में लिङ्ग को समाहित कर मन को स्वस्थ रखते हुए साधक यदि (शिव के अतिरिक्त) किसी अन्य का ध्यान नहीं करता तो शिवयोगी जन उसे आभ्यन्तरा भक्ति कहते हैं। वह भक्ति जिसके अन्दर होती है उसका जीवन भूँजे हुए बीज के समान होता है (अर्थात् जैसे भुने हए बीज में अङ्कुरण नहीं होता उसी प्रकार उसका पुनर्जन्म नहीं होता) ।।८-९।।

बहुनात्र किमुक्तेन गुह्यात् गुह्यतरा परा।
शिवभक्तिर्न सन्देहस्तया युक्तो विमुच्यते।।१०।।

भावार्थ : इस विषय में बहुत कहने से क्या लाभ? शिवभक्ति परा तथा गुह्य से भी गुह्यतर है। उससे युक्त मनुष्य मुक्त हो जाता है, इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं ।।१०।।

प्रसादादेव सा भक्तिः प्रसादो भक्तिसम्भवः।
यथैवाङ्कुरतो बीजं बीजतो वा यथाङ्कुरः।।११।।

भावार्थ : वह भक्ति प्रसाद अर्थात् कृपा से मिलती है। प्रसाद भक्ति से उत्पन्न होता है। जिस प्रकार बीज से अंकुर तथा अंकुर से बीज पैदा होता है (उसी प्रकार का सम्बन्ध भक्ति और कृपा में है अर्थात् दोनां अनादि है) ।।११।।

प्रसादपूर्विका येयं भक्तिर्मुक्तिविधायिनी।
नैव सा शक्यते प्राप्तुं नरैरेकेन जन्मना।।१२।।

भावार्थ : जो भक्ति प्रसद के बाद मिलती है वह मुक्ति प्रदान करती है। इस प्रकार की भक्ति मनुष्य लोग एक जन्म में नहीं प्राप्त कर सकते ॥१२॥

अनेकजन्मशुद्धानां श्रौतस्मार्तानुवर्तिनाम्।
विरक्तानां प्रबुद्धानां प्रसीददति महेश्वरः।।१३।।

भावार्थ : जो लोग अनेक जन्मों में (उत्तम कर्म करके) शुद्ध होते हैं, वेद, पुराण, स्मृति के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलते हैं, विरागयुक्त तथा ज्ञानी हैं, परमेश्वर उन्हीं के ऊपर कृपा करते हैं ॥१३॥

प्रसन्ने सति मुक्तोऽभून्मुक्तः शिवसमो भवेत्।
अल्पभक्त्यापि यो मर्त्यस्तस्य जन्मत्रयात्परम्।।१४।।

भावार्थ : (शिव के) प्रसन्न होने पर मनुष्य मुक्त होता है। मुक्त होकर शिव के समान हो जाता है। जो मनुष्य थोड़ी भी भक्ति से युक्त होता है। उसको तीन जन्म के बाद पर (अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है ॥१४॥

न योनियन्त्रपीडा वै भवेन्नैवात्र संशयः।
साङ्गा न्यूना च या सेवा सा भक्तिरिति कथ्यते।।१५।।

भावार्थ : (ऐसे शिवभक्त को) गर्भ में वास का दुःख नहीं झेलना पड़ता। इसमें सन्देह नहीं। पूर्वोक्त नव प्रकार के अङ्गोपाङ्ग के सहित जो न्यून सेवा है वही अल्पभक्ति कही जाती है ॥१५॥

सा पुनर्भिद्यते त्रेधा मनोवाक्कायसाधनैः।
शिवरूपादिचिन्ता या सा सेवा मानसी स्मृता।।
जपादि वाचिकी सेवा कर्मपूजा च कायिकी।।१६।।

भावार्थ : मन, वाणी और शरीर रूपी तीन साधनों के आधार पर वह भक्ति पुनः (मानसिक, वाचिक और दैहिक भेद से) तीन प्रकार की होती है। शिव के रूप आदि (=रंग स्थान आभरण वाहन गुण लीला आदि) का चिन्तन मानसी सेवा कही जाती है। जप आदि वाचिकी सेवा तथा कर्म के द्वारा पूजा कायिकी भक्ति है ॥१६॥

बाह्यमाभ्यन्तरं चैव बाह्याभ्यन्तरमेव च।
मनोवाक्कायभेदैश्च त्रिधा तद्भजनं विदुः।।१७।।

भावार्थ : विद्वान् लोग मन वाणी और शरीर से तीन प्रकार की भक्ति मानते हैं। वह भक्ति बाह्य आभ्यन्तर तथा बाह्याभ्यन्तर भेद से तीन प्रकार की है ॥१७॥

मनो महेशध्यानाढ्यं नान्यध्यानरतं मनः।
शिवनामरता वाणी वाङ्मता चैव नेतरा ।।१८।।

लिङ्गैः शिवस्य चोद्दिष्टैस्त्रिपुण्ड्रादिभिरङ्कितः।
शिवोपचारनिरतः कायः कायो न चेतरः।।१९।।

भावार्थ : मन महेश्वर के ध्यान से भरा रहे न कि किसी और के ध्यान से, वाणी शिव के नाम का जप कीर्तन करे अन्य नाम का नहीं, शास्त्रों में वर्णित त्रिपुण्ड्र आदि शिव के लिङ्गों से युक्त शिव की पूजा में लगा हुआ शरीर हो न कि अन्य व्यापार में आसक्त (तो यह मानसिक, वाचिक और कायिक भक्ति होती है ॥१८-१९॥

अन्यात्मविदितं बाह्यं शम्भोरभ्यर्चनादिकम्।
तदेव तु स्वसंवेद्यमाभ्यन्तरमुदाहृतम्।।
मनो महेशप्रवणं बाह्याभ्यन्तरमुच्यते।।२०।।

भावार्थ : शिव के जिस अभ्यर्चन आदि को दूसरे लोग भी जानते हों देखते हों वह बाह्य पूजा होती है। अपने मन में अपने द्वारा की गयी पूजा जिसको केवल पूजक ही जानता है, यह आभ्यन्तर पूजा कही गयी है। अपने मन को शिव में आसक्त कर देना बाह्याभ्यन्तर पूजा कही जाती है ॥२०-२१॥

पञ्चधा कथ्यते सद्भिस्तदेव भजनं पुनः।
तपः कर्म जपो ध्यानं ज्ञानं चेत्यनुपूर्वकम्।।२१।।

भावार्थ : वह भक्ति पुनः सन्तों के द्वारा पाँच प्रकार की कही जाती है वे प्रकार क्रमशः तपस्या, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान हैं ॥२२॥

शिवार्थे देहसंशोषस्तपः कृच्छ्रादि नो मतम्।
शिवार्चा कर्म विज्ञेयं बाह्यं यागादि नोच्यते।।२२।।

जपः पञ्चाक्षराभ्यासः प्रणवाभ्यास एव वा।
रुद्राध्यायादिकाभ्यासो न वेदाध्ययनादिकम्।।२३।।

ध्यानं शिवस्य रूपादिचिन्ता नात्मादिचिन्तनम्।
शिवागमार्थविज्ञानं ज्ञानं नान्यार्थवेदनम्।।२४।।

इति पञ्चप्रकारोऽयं शिवयज्ञः प्रकीर्तितः।

भावार्थ : शिव के लिये देह को सुखाना तप है न कि कृच्छ्र[१] आदि[२]। शिव लिङ्ग की पूजा को कर्म समझना चाहिये। बाह्य याग आदि कर्म नहीं कहे जाते। पञ्चाक्षर मन्त्र अथवा प्रणव का अभ्यास जप कहा जाता है अथवा रुद्राष्टाध्यायी का पाठ भी न कि वेद का पाठ जप की कोटि में आता है। शिव के रूप आदि का चिन्तन ध्यान है न कि अपने आत्मा आदि का। शैवागमों के अर्थ को जानना न कि अन्य सांख्य आदि विषयों को जानना, विज्ञान है। इस प्रकार यह शिवयज्ञ पाँच प्रकार का कहा गया है ॥२२-२४॥

अनेन पञ्चयज्ञेन यः पूजयति शङ्करम्।
भक्त्या परमया युक्तः स वै भक्त इतीरितः।।२५।।

भावार्थ : इस पञ्चयज्ञ से जो शिव की पूजा करता है परमभक्ति से युक्त वही 'भक्त' कहा गया है ॥२५॥

पूजनाच्छिवभक्तस्य पुण्या गतिरवाप्यते।
अवमानान्महाघोरो नरको नात्र संशयः।।२६।।

भावार्थ : शिव भक्त के पूजन से उत्तम गति मिलती है। उसके अपमान से महा भयङ्कर नरक प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है ॥२६॥

शिवभक्तो महातेजाः शिवभक्तिपराङ्मुखान्।
न स्पृशेन्नैव वीक्षेत न तैः सह वसेत् क्वचित्।।२७।।

भावार्थ : महातेजस्वी शिवभक्त को चाहिये कि वह शिवभक्ति से पराङ्मुख व्यक्तियों का न स्पर्श करे, न उनको देखे और न उनके साथ कहीं निवास करे क्योंकि उनके स्पर्श आदि से शिवभक्त का तेज क्षीण हो जाता है ॥२७॥

यदा दीक्षाप्रवेशः स्याल्लिङ्गधारणपूर्वकः।
तदाप्रभृति भक्तोऽसौ पूजयेत् स्वागमस्थितान्।।२८।।

भावार्थ : लिङ्गधारणपूर्वक जब (शिवभक्त की) दीक्षा हो जाय तब से यह भक्त अपने (अर्थात् वीरशैव) आगम में श्रद्धा विश्वास रखने वालों की पूजा किया करे ॥२८॥

---

१. गोमूत्र, गोबर, गोदूध, गोदधि, गोघृज एवं कुशोदक का भक्षण तथा एक रात्रि का उपवास 'कृच्छ्र' वृत होता है।

२. 'आदि' पद से चान्द्रायण सान्तपन आदि व्रत समझना चाहिये। चान्द्रायण में पूर्णिमा के दिन पन्द्रह ग्रास फिर कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से लेकर एक-एक ग्रास कम करते हुए भोजन करना तथा अमावस्या को उपवास। फिर शुक्ल प्रतिपदा से आगे एक-एक ग्रास बढ़ाना और पूर्णिमा को पन्द्रह ग्रास का भोजन किया जाता है। सान्तपन में ऊपर सूर्य और चारो ओर अग्नि जलाकर शरीर को तपाया जाता है।

स्वमार्गाचारनिरताः सजातीया द्विजास्तु ये।
तेषां गृहेषु भुञ्जीत नेतरेषां कदाचन।।२९।।

भावार्थ : जो दीक्षा संस्कार से मन्त्रपिण्ड को प्राप्त वीरशैव है, वह अपने मार्ग और अपने आचार में निरत होने से सजातीय हैं भक्त को उन्हीं के घर में भोजन करना चाहिये, कभी भी दूसरों (शैवेतर वैष्णव आदि) के घर में नहीं ।।२९।।

स्वमार्गाचारविमुखैर्भविभिः प्राकृतात्मभिः।
प्रेषितं सकलं द्रव्यमात्मलीनमपि त्यजेत्।।३०।।

भावार्थ : अपने मार्ग एवं आचार से विमुख अलिङ्गी लोग के द्वारा दिया गया अन्न आदि यदि अपने अधिकार में भी हो तो भी उसका त्याग कर देना चाहिये ।।३०।।

नार्चयदेन्यदेवांस्तु न स्मरेन्न च कीर्तयेत्।
न तन्निवेद्यमश्नीयाच्छिवभक्तो दृढव्रतः।।३१।।

भावार्थ : दृढ़वती शिवभक्त को अन्य देवताओं की न तो पूजा करनी चाहिये न स्मरण और न कीर्त्तन। अन्य देवताओं को निवेदित नैवेद्य भी नहीं खाना चाहिये ।।३१।।

यद्गृहेष्वन्यदेवोऽस्ति तद्गृहाणि परित्यजेत्।
नान्यदेवार्चकान् मर्त्यान् पूजाकाले निरीक्षयेत्।।३२।।

भावार्थ : जिस घर में अन्य देवता की स्थापना की गयी हो उस घर को छोड़ देना चाहिये। शिव पूजा के समय अन्य देवता की पूजा करने वाले मनुष्यों को नहीं देखना चाहिये ।।३२।।

सदा शिवैकनिष्ठानां वीरशैवाध्ववर्तिनाम्।
नहि स्थावरलिङ्गानां निर्माल्याद्युपयुज्यते।।३३।।

भावार्थ : जो सदाशिव के प्रति श्रद्धाविश्वासयुक्त है, वीरशैव मार्ग पर चलने वाले हैं उनको स्थावर लिङ्ग का निर्मालय का ग्रहण नहीं करना चाहिये ।।३३।।

यत्र स्थावरलिङ्गानामपायः परिवर्तते।
अथवा शिवभक्तानां शिवलाञ्छनधारिणाम्।।३४।।

तत्र प्राणान् विहायापि परिहारं समाचरेत्।
शिवार्थं मुक्तजीवश्चेच्छिवसायुज्यमाप्नुयात्।।३५।।

भावार्थ : जहाँ स्थावर लिङ्गों का अथवा शिव के चिह्न भस्म आदि धारण करने वालों का विनाश होता दिखलायी पड़े वहाँ प्राणों को छोड़कर भी उसका निराकरण

करना चाहिये। जो शिव के लिये प्राणत्याग करता है वह शिव सायुज्य को प्राप्त करता है ॥३४-३५॥

शिवनिन्दाकरं दृष्ट्वा घातयेदथवा शपेत्।
स्थानं वा तत्परित्यज्य गच्छेद्यद्यक्षमो भवेत्।।३६।।

भावार्थ : शिव की निन्दा करने वाले को देखकर या तो उसे मार डाले या डाँट फट्कार लगाये और यदि इन दोनों कार्यों से समर्थ न हो तो कान बन्द कर वहाँ से चला जाय ॥३६॥

यत्र चाचारनिन्दाऽस्ति कदाचित्तत्र न व्रजेत्।
यद्गृहे शिवनिन्दाऽस्ति तद्गृहं तु परित्यजेत्।।३७।।

भावार्थ : जहाँ शैवाचार की निन्दा होती हो वहाँ कभी नहीं जाना चाहिये। जिन घरों में शिवनिन्दा होती है उन घरों को छोड़ देना चाहिये ॥३८॥

यः सर्वभूताधिपतिं विश्वेशानं विनिन्दति।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि।।३८।।

भावार्थ : जो समस्त प्राणियों के स्वामी विश्व के ईश्वर की निन्दा करता है उसका प्रायश्चित्त सौ वर्षों में भी नहीं किया जा सकता ॥३८॥

शिवपूजापरो भूत्वा पूर्वकर्म विसर्जयेत्।
अथवा पूर्वकर्म स्यात् सा पूजा निष्फला भवेत्।।३९।।

भावार्थ : शिवपूजा में तत्पर होकर अन्य पूर्व कर्मों (अर्थात् अन्य प्रकार की उपासना आदि) का त्याग कर देना चाहिये। यदि (शिव पूजा के साथ) पूर्व कर्म का भी अभ्यास होता है तो वह शिवपूजा निष्फल होती है ॥३९॥

उत्तमां गतिमाश्रित्य नीचां वृत्तिं समाश्रितः।
आरूढपतितो ज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः।।४०।।

भावार्थ : (इष्टलिङ्गपूजा रूपी) उत्तम गति को प्राप्त कर भी जो नीच वृत्ति (अर्थात् निम्न कोटि के अर्चन पूजन) को अपनाता है उसे आरुढ़पतित (अर्थात् उच्च पद से गिरा हुआ) और सर्वकर्म बहिष्कृत समझना चाहिये ॥४०॥

पञ्चाक्षरोपदेशी च नरस्तुतिकरो यदि।
सोऽलिङ्गी स दुराचारी कुकविः स तु विश्रुतः।।४१।।

भावार्थ : पञ्चाक्षर का उपदेश प्राप्त करने वाला साधक यदि मनुष्यों की स्तुति करता है तो वह अलिङ्गी दुराचारी और कुकवि के रूप में विख्यात होता है ॥४१॥

चर्मपात्रे जलं तैलं न ग्राह्यं भक्तितत्परैः।
गृह्यते यदि भक्तेन रौरवं नरकं व्रजेत् ॥४२॥

भावार्थ : (शिव) भक्ति में लगे हुए लोगों को चाहिये कि वे चमड़े के बर्तन में जल अथवा तैल का ग्रहण न करे। यदि शिवभक्त ग्रहण करता है तो वह रौरव नरक को जाता है ॥४२॥

न तस्य सूतकं किञ्चिन्प्राणलिङ्गाङ्गसङ्गिनः।
जन्मनोऽत्थं मृतोत्थं च विद्यते परमार्थतः॥४३॥

भावार्थ : जो प्राणलिङ्गधारी है उसको परमार्थतः जननाशौच अथवा मरणाशौच रञ्चमात्र भी नहीं लगता ॥४३॥

लिङ्गार्चनरतायाश्च ऋतौ नार्या न सूतकम्।
तथा प्रसूतिकायाश्च सूतकं नैव विद्यते॥४४॥

भावार्थ : निष्ठापूर्वक लिंगार्चन करणाऱ्या वीरशैव स्त्रियांना ऋतुकाळ-सूतक व प्रसूतिसूतक नाही.॥४४॥

गृहे यस्मिन् प्रसूता स्त्री सूतकं नात्र विद्यते।
शिवपादाम्बुसंस्पर्शात् सर्वपापं प्रणश्यति॥४५॥

भावार्थ : ऐसी स्त्री जिस घर में शिशु को जन्म देती है उस घर में भी सूतक नहीं लगता। शिवपाद के जल के स्पर्श से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं (अथवा जिस घर में शिवभक्ता स्त्री शिव की पूजा करती रहती है वह घर किसी भी प्रसूता के प्रसव से अशुद्ध नहीं होता) ॥४५॥

शिवस्थानानि तीर्थानि विशिष्टानि शिवार्चकः।
शिवयात्रोत्सवं नित्यं सेवेत परया मुदा॥४६॥

भावार्थ : शिव की पूजा करने वाला भक्त शिव स्थान वाले विशिष्ट तीर्थों का तथा शिवयात्रा एवं शिव के उत्सव का परम आनन्द के साथ नित्य सेवन करे ॥४६॥

शिवक्षेत्रोत्सवमहायात्रादर्शनकाङ्क्षिणाम्।
मार्गेऽन्नपानदानं च कुर्यान्माहेश्वरो जनः॥४७॥

भावार्थ : शिव भक्तजनों को चाहिये कि वे शिवक्षेत्र में होने वाले उत्सव अथवा शिव क्षेत्र में यात्रा की इच्छा वालों को रास्ते में अन्न जल आदि का दान करे ॥४७॥

नान्नतोयसमं दानं न चाहिंसापरं तपः।
तस्मान्माहेश्वरो नित्यमन्नतोयप्रदो भवेत्॥४८॥

भावार्थ : अन्न और जल के दान से बढ़कर कोई दान नहीं है। अहिंसा से बड़ा कोई तप नहीं है। इस कारण शिव के भक्त को चाहिये कि वह नित्य अन्नजल का दान करे ॥४८॥

स्वमार्गाचारवर्तिभ्यः स्वजातिभ्यः सदाव्रती।
दद्यात्तेभ्यः समादद्यात् कन्यां कुलसमुद्भवाम्।।४९।।

भावार्थ : सदैव शिव का व्रत करने वाला अपने जाति तथा अपने सम्प्रदाय के आचार का पालन करने वालों के लिये अपनी कन्या का दान करे और उन्हीं के कुल में उत्पन्न कन्या से विवाह करे ॥४९॥

एवमाचारसंयुक्तो वीरशैवो महाव्रती।
पूजयेत्परया भक्त्या गुरुं लिङ्गं च सन्ततम्।।५०।।

भावार्थ : इस प्रकार के आचार से युक्त महाव्रती वीरशैव अत्यन्त भक्ति के साथ गुरु और शिवलिङ्ग की पूजा करे ॥५०॥

उभयस्थलम् - (१०)

गुरोरभ्यर्चनेनापि साक्षादभ्यर्चितः शिवः।
तयोर्नास्ति भिदा किञ्चिदेकत्वात्तत्त्वरूपतः।।५१।।

भावार्थ : गुरु की पूजा करने से भी भगवान् शिव साक्षात् पूजित होते हैं। उन दोनों में रञ्चमात्र भी अन्तर नहीं है क्योंकि तात्त्विक रूप से वे दोनों एक हैं ॥५१॥

यथा देवे जगन्नाथे सर्वानुग्रहकारके।
तथा गुरुवरे कुर्यादुपचारान् दिने दिने।।५२।।

भावार्थ : (भक्त) जिस प्रकार सबके ऊपर कृपा करने वाले विश्व के स्वामी शिव की पूजा करता है उसी प्रकार उसको प्रतिदिन श्रेष्ठ गुरु की भी पूजा करनी चाहिये ॥५२॥

अप्रत्यक्षो महादेवः सर्वेषामात्ममायया।
प्रत्यक्षो गुरुरूपेण वर्तते भक्तिसिद्धये।।५३।।

भावार्थ : (जो) महादेव अपनी माया से सबके लिये अप्रत्यक्ष है (वही) भक्ति की सिद्धि के लिये गुरुरूप से प्रत्यक्ष है ॥५३॥

शिवज्ञानं महाघोरसंसारार्णवतारकम्।
दीयते येन स गुरुः कस्य वन्द्यो न जायते।।५४।।

भावार्थ : जिनके द्वारा महा भयङ्कर संसाररूपी समुद्र के पार ले जाने वाला शिवज्ञान दिया जाता है वे गुरु किससे वन्दनीय नहीं है (अर्थात् सबके पूज्य है) ।।५४।।

यत्कटाक्षकलामात्रात् परमानन्दलक्षणम्।
लभ्यते शिवरूपत्वं स गुरुः केन नार्चितः।।५५।।

भावार्थ : जिसके कृपाकटाक्ष की एक कला से परम आनन्द स्वरूप शिवभाव का लाभ होता है उन गुरु की कौन पूजा नहीं करता? (अर्थात् सब लोग पूजा करते हैं) ।।५५।।

हितमेव चरेन्नित्यं शरीरेण धनेन च।
आचार्यस्योपशान्तस्य शिवज्ञानमहानिधेः।।५६।।

भावार्थ : (भक्त को चाहिये कि वह) शरीर और धन के द्वारा उपशान्त (अर्थात् रागद्वेष आदि से रहित) तथा शिवज्ञान की महानिधिस्वरूप गुरु का नित्य हित करे ।।५६।।

गुरोरज्ञां न लङ्घेत सिद्धिकामी महामतिः।
तदाज्ञालङ्घनेनापि शिवाज्ञाच्छेदको भवेत्।।५७।।

भावार्थ : सिद्धि को चाहने वाला महामतिमान् (शिष्य कदापि) गुरु की आज्ञा का उल्लंघन न करे। उनकी आज्ञा के उल्लंघन से वह शिव की आज्ञा का उल्लंघनकर्त्ता हो जाता है ।५८।।

त्रिविधसम्पत्तिस्थल - (११)

यथा गुरौ यथा लिङ्गे भक्तिमान् परिवर्तते।
जङ्गमे च तथा नित्यं भक्तिं कुर्याद्विचक्षणः।।५८।।

भावार्थ : **(त्रिविधसम्पत्तिस्थल वर्णन)**— भाक्तिमान् एव बुद्धिमान् (साधक) को चाहिये कि वह जैसे गुरु और लिङ्ग के प्रति भक्तिपूर्ण आचरण करता है उसी प्रकार जङ्गम (=शिवयोगी) के प्रति भी वह नित्य भक्ति करे ।।५८।।

एक एव शिवः साक्षात् सर्वानुग्रहकारकः।
गुरुजङ्गमलिङ्गात्मा वर्तते भुक्तिमुक्तिदः।।५९।।

भावार्थ : सबके प्रति अनुग्रह करने वाले तथा भोग और मोक्ष देने वाले एक ही शिव गुरु जङ्गम और लिङ्ग के रूप में व्यवहार कर रहे हैं (ऐसा समझना चाहिये) ।।५९।।

लिङ्गं च द्विविधं प्रोक्तं जङ्गमाजङ्गमात्मना।
अजङ्गमे यथा भक्तिर्जङ्गमे च तथा स्मृता।।६०।।

भावार्थ : जङ्गम और अजङ्गम (अर्थात् स्थावर) के रूप में लिङ्ग दो प्रकार का कहा गया है। अजङ्गम के प्रति जैसी भक्ति होती है जङ्गम के प्रति भी वैसी ही भक्ति मानी गयी है ।।६१।।

अजङ्गमं तु यल्लिङ्गं मृच्छिलादिविनिर्मितम्।
तद्वरं जङ्गमं लिङ्गं शिवयोगीति विश्रुतम्।।६१।।

भावार्थ : जो अजङ्गम (अर्थात् स्थावर) लिङ्ग है वह मिट्टी अथवा पत्थर आदि से बना होता है। जङ्गम लिङ्ग उनकी अपेक्षा श्रेष्ठ होता है और वह शिवयोगी के नाम से प्रसिद्ध होता है ।।६१।।

अचरे मन्त्रसंस्काराल्लिङ्गे वसति शङ्करः।
सदाकालं वसत्येव चरलिङ्गे महेश्वरः।।६२।।

भावार्थ : श्रेष्ठता का कारण बतलाते हैं— स्थावर लिङ्ग में शिव का निवास मन्त्रों के द्वारा उसका संस्कार करने के कारण होता है किन्तु चरलिङ्ग (अर्थात् शिवयोगी) में महेश्वर सदा (विना संस्कार आदि के) निवास करते हैं ।।६३।।

शिवयोगिनि यद्दत्तं तदक्षयफलं भवेत्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तस्मै देयं महात्मने।।६३।।

यत्फलं लभते जन्तुः पूजया शिवयोगिनः।
तदक्षयमिति प्रोक्तं सकलागमपारगैः।।६४।।

भावार्थ : जो कुछ शिवयोगी को दिया जाता है वह अक्षय फलकारक होता है। इसलिये सम्पूर्ण प्रयास कर उस महात्मा (शिवयोगी) को देना चाहिये। शिवयोगी की पूजा से जीव जिस फल को प्राप्त करता है सकल आगमों के विद्वान् उस (फल) को अक्षय मानते हैं ।।६३-६४।।

नावमन्येत कुत्रापि शिवयोगिनमागतम्।
अवमानाद्भवेत्तस्य दुर्गतिश्च न संशयः।।६५।।

भावार्थ : सामने आये हुए शिवयोगी का कभी भी अपमान नहीं करना चाहिये। अवमान के कारण उस (=अवमन्ता) की दुर्गति होती है यह निश्चित है ।।६५।।

शिवयोगी शिवः साक्षादिति कैङ्कर्यभक्तितः।
पूजयेदादरेणैव यथा लिङ्गं यथा गुरुः।।६६।।

भावार्थ : शिवयोगी साक्षात् शिव है— ऐसा मानकर सेवक भाव से जैसे लिङ्ग और गुरु की वैसी ही आदरपूर्वक उस (शिवयोगी) की पूजा करनी चाहिये ।।६६।।

चतुर्विधसारायस्थल (प्रसादस्वीकारस्थल) - (१२)

पादोदकं यथा भक्त्या स्वीकरोति महेशितुः।
तथा शिवात्मनोर्नित्यं गुरुजङ्गमयोरपि।।६७।।

भावार्थ : **चतुर्विध सारायस्थल वर्णन**— (साधक) जिस प्रकार भगवान् शंकर का चरणोदक भक्ति के साथ ग्रहण करता है उसी प्रकार नित्य उसे गुरु और जङ्गम (अर्थात् शिवयोगी) का चरणोदक लेना चाहिये ।।६७।।

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपावनपावनम्।
सर्वसिद्धिकरं पुंसां शम्भोः पादाम्बुधारणम्।।६८।।

भावार्थ : चूँकि शंकर का चरणाम्बु लेना समस्त मङ्गलों का मङ्गल, सभी पवित्रकों का पवित्रक और मनुष्यों के लिये समस्त सिद्धियों का दाता है (इसलिये उसे प्रतिदिन लेना चाहिये) ।।६८।।

शिरसा धारयेद्यस्तु पत्रं पुष्पं शिवार्पितम्।
प्रतिक्षणं भवेत्तस्य पौण्डरीकक्रियाफलम्।।६९।।

भावार्थ : जो भक्त शिव को चढ़ाया हुआ पत्र पुष्प शिर पर धारण करता है उसको प्रतिक्षण पौण्डरीक क्रिया (अर्थात् पौण्डरीक याग) का फल मिलता है ।।६९।।

भुञ्जीयाद् रुद्रभुक्तान्नं रुद्रपीतं जलं पिबेत्।
रुद्राघ्रातं सदा जिघ्रेदिति जाबालिकी श्रुतिः।।७०।।

भावार्थ : रुद्र को समर्पित अन्न का भोजन करना चाहिये। रुद्र को समर्पित जल का पान करना चाहिये। रुद्र के द्वारा सूँघे गये अर्थात् रुद्र को चढ़ाये गये (पुष्प) को सूँघना चाहिये ऐसा जाबालोपनिषद्[१] कहती है ।।७०।।

अर्पयित्वा निजे लिङ्गे पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
अन्नाद्यं सर्वभोज्यं च स्वीकुर्याद् भक्तिमान्नरः।।७१।।

भावार्थ : भक्तिमान् मनुष्य को चाहिये कि वह पत्र पुष्प फल जल अन्न आदि सम्पूर्ण भोज्य पदार्थ को अपने इष्ट लिङ्ग को अर्पित कर ग्रहण करे ।।७१।।

---

१. अहरहरभ्यर्च्य विश्वेश्वरं लिङ्गं तत्र रुद्रसूक्तैरभिषिच्य तदेव स्नपन्यः त्रिःपीत्वा महापातकेभ्यो विमुच्यते। भस्मजाबालो०

गुरुत्वात् सर्वभूतानां शम्भोरमिततेजसः।
तस्मै निवेदितं सर्वं स्वीकार्यं तत्परायणैः।।७२।।

भावार्थ : समस्त प्राणियों की अपेक्षा तेजस्वी शिव के श्रेष्ठ होने के कारण उनको निवेदित सब कुछ उनके भक्तों के द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिये ।।७२।।

ये लिङ्गधारिणो लोके ये शिवैकपरायणाः।
तेषां तु शिवनिर्माल्यमुचितं नान्यजन्तुषु।।७३।।

भावार्थ : इस संसार में जो लोग शिवलिङ्ग का धारण करने वाले हैं और जो एकमात्र शिव के भक्त हैं उनके लिये शिव का प्रसाद ग्रहण करना उचित है अन्य जीवों के लिये नहीं ।।७३।।

अन्नजाते तु भक्तेन भुज्यमाने शिवार्पिते।
सिक्थे सिक्थेऽश्वमेधस्य यत्फलं तदवाप्यते।।७४।।

भावार्थ : भक्त के द्वारा शिव को समर्पित अन्न में से एक-एक चावल या कण में वही फल प्राप्त होता है जो कि अश्वमेध याग से ।।७४।।

निर्माल्यं निर्मलं शुद्धं शिवेन स्वीकृतं यतः।
निर्मलैस्तत्परैर्धार्यं नान्यैः प्राकृतजन्तुभिः।।७५।।

भावार्थ : चूँकि शिव के द्वारा स्वीकृत होता है अतः (सम्पूर्ण नैवेद्य) निर्माल्यं अर्थात् निर्मल अर्थात् शुद्ध होता है। वह अत्यन्त शुद्ध लोगों के द्वारा गृहीत होना चाहिये न कि सामान्य (अर्थात् अशुद्ध) लोगों के द्वारा ।।७५।।

शिवभक्तिविहीनानां जन्तूनां पापकर्मणाम्।
विशुद्धे शिवनिर्माल्ये नाऽधिकारोऽस्ति कुत्रचित्।।७६।।

भावार्थ : शिवभक्ति से रहित पाप कर्म करने वाले जीवों का विशुद्ध शिवनिर्माल्य के विषय में कोई अधिकार नहीं है ।।७६।।

शिवलिङ्गप्रसादस्य स्वीकाराद् यत्फलं भवेत्।
तथा प्रसादस्वीकाराद् गुरुजङ्गमयोरपि।।७७।।

तस्माद् गुरुं महादेवं शिवयोगिनमेव च।
पूजयेत् तत्प्रसादान्नं भुञ्जीयात् प्रतिवासरम्।।७८।।

भावार्थ : शिवलिंग के प्रसाद का ग्रहण करने से जो फल मिलता है वही फल गुरु और जंगम (अर्थात् शिवयोगी) के प्रसाद का भी प्राप्त होता है। इस कारण गुरु लिंग

और शिवयोगी की प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये और उनके प्रसादस्वरूप अन्न को स्वीकार करना चाहिये ॥७७-७८॥

सोपाधिदानस्थल - (१३)

शिवलिङ्गे शिवाचार्ये शिवयोगिनि भक्तिमान्।
दानं कुर्याद्यथाशक्ति तत्प्रसादयुतः सदा।।७९।।

भावार्थ : सोपाधि निरुपाधि सहजदान स्थल वर्णन— भक्तिमान् (साधक) को चाहिये कि वह शिवलिंग, शिवाचार्य और शिवयोगी को उनकी कृपा से युक्त होकर सदा अपनी शक्ति के अनुसार दान दे ॥७९॥

दानं च त्रिविधं प्रोक्तं सोपाधिनिरुपाधिकम्।
सहजं चेति सर्वेषां सर्वतन्त्रविशारदैः।।८०।।

भावार्थ : समस्त शास्त्रों के विद्वान् लोगों के द्वारा सबके लिये दान सोपाधि निरुपाधि और सहज भेद से तीन प्रकार का कहा गया है ॥८०॥

फलाभिसान्धिसंयुक्तं दानं यद्विहितं भवेत्।
तत् सोपाधिकमाख्यातं मुमुक्षुभिरनादृतम्।।८१।।

भावार्थ : जो दान फल की आकांक्षा से युक्त होकर किया जाता है वह सोपाधिक दान कहा गया है। मोक्षार्थी जन उस प्रकार के दान का आदर नहीं करते ॥८१॥

निरुपाधिदानस्थल - (१४)

फलाभिसन्धिनिर्मुक्तमीश्वरार्पितकाङ्क्षितम्।
निरुपाधिकमाख्यातं दानं दानविशारदैः।।८२।।

भावार्थ : दान के विशारद लोग फल की इच्छा से रहित ईश्वरार्पणबुद्ध्या किये गये दान को निरुपाधिक दान कहे हैं ॥८२॥

सहजदानस्थल - (१५)

आदातृदातृदेयानां शिवभावं विचिन्तयन्।
आत्मनोऽकर्तृभावं च यद्दत्तं सहजं भवेत्।।८३।।

भावार्थ : परिगृहीत दाता एवं देय को शिव रूप सोचने वाला तथा (दान के विषय में) अपने को कर्त्ता न समझते हुए दिया गया दान सहज होता है ॥८३॥

सहजं दानमुत्कृष्टं सर्वदानोत्तमोत्तमम्।
शिवज्ञानप्रदं पुंसां जन्मरोगनिवर्तकम्।।८४।।

भावार्थ : (तीनों प्रकार के दानों में) सहज दान उत्कृष्ट और सब प्रकार के दानों में उत्तम होता है। वह मनुष्यों को शिवज्ञान देने वाला तथा जन्मरूपी रोग को दूर करने वाला होता है ॥८४॥

शिवाय शिवभक्ताय दीयते यदि किञ्चन।
भक्त्या तदपि विख्यातं सहजं दानमुत्तमम्।।८५।।

भावार्थ : शिव को अथवा शिवभक्त को जो कुछ भक्तिपूर्वक दिया जाता है वह भी उत्तम सहज दान कहा गया है ॥८५॥

दानात् स्वर्णसहस्रस्य सत्पात्रे यत्फलं भवेत्।
एकपुष्पप्रदानेन शिवे तत्फलमिष्यते।।८६।।

भावार्थ : उत्तम एवं योग्य व्यक्ति को एक सहस्र स्वर्णमुद्रा का जो फल होता है शिव को एक पुष्प (भक्तिपूर्वक) अर्पित करने से वही फल होता है ॥८६॥

शिव एव परं पात्रं सर्वविद्यानिधिर्गुरुः।
तस्मै दत्तं तु यत्किञ्चित्तदनन्तफलं भवेत्।।८७।।

भावार्थ : समस्त विद्याओं के आकर गुरु रूप शिव ही (दान के) सर्वोत्कृष्ट पात्र हैं अथवा शिव एवं सर्वविद्यानिधि गुरु दोनों उत्तमोत्तम पात्र हैं। उनको जो कुछ दिया जाता है वह अनन्त फल वाला होता है ॥८७॥

शिवयोगी शिवः साक्षाच्छिवज्ञानमहोदधिः।
यत्किञ्चिद्दीयते तस्मै तद्दानं पारमार्थिकम्।।८८।।

भावार्थ : शिवज्ञान के समुद्ररूप शिवयोगी साक्षात् शिव होते हैं उनको जो कुछ दिया जाता है वह दान परम अर्थ (अर्थात् शिवसायुज्य) को देने वाला होता है ॥८८॥

शिवयोगी महत्पात्रं सर्वेषां दानकर्मणि।
तस्मान्नास्ति परं किञ्चित्पात्रं शास्त्रविचारतः।।८९।।

भावार्थ : (समस्त) दान कर्म में सबके लिये शिवयोगी उत्तम पात्र है। शास्त्रों की दृष्टि में उनसे बढ़कर कोई सत्पात्र नहीं है ॥८९॥

भिक्षामात्रप्रदानेन शान्ताय शिवयोगिने।
यत्फलं लभ्यते नैतद् यज्ञकोटिशतैरपि।।९०।।

भावार्थ : शान्त शिवयोगी को केवल भिक्षा अर्थात् एक ग्रास देने से जो फल प्राप्त होता है वह करोड़ों यज्ञ से भी नहीं मिलता ॥९०॥

शिवयोगिनि संतृप्ते तृप्तो भवति शङ्करः।
तत्तृप्त्या तन्मयं विश्वं तृप्तिमेति चराचरम्।।९१।।

भावार्थ : शिवयोगी के तृप्त होने पर स्वयं शिव तृप्त होते हैं। उन (=शिव) की तृप्ति से उनसे व्याप्त चर-अचर समस्त विश्व तृप्त होता है ॥९१॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन येन केनापि कर्मणा।
तृप्तिं कुर्यात् सदाकालमन्नाद्यैः शिवयोगिनः।।९२।।

भावार्थ : इस कारण सम्पूर्ण प्रयास कर जिस किसी धर्म के द्वारा सब समय अन्न आदि से शिवयोगी को तृप्त करना चाहिये ॥९२॥

निरुपाधिकचिद्रूपपरानन्दात्मवस्तुनि ।
समाप्तं सकलं यस्य स दानी शङ्करः स्वयम्।।९३।।

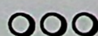
भावार्थ : बिना किसी आकांक्षा वाले चिद्रूप परानन्द तत्त्व के विषय में अर्थात् उसके नाम पर जिसका सब कुछ समाप्त अर्थात् समर्पित हो जाता है वह दानी स्वयं शंकर हो जाता है ॥९३॥

उक्ताखिलाचारपरायणोऽसौ
सदा वितन्वन् सहजं तु दानम्।
ब्रह्मादिसम्पत्सु विरक्तचित्तो
भक्तो हि माहेश्वरतामुपैति।।९४।।

भावार्थ : पूर्वोक्त समस्त आचरणों को करने वाला, सदा सहज दान देता हुआ और ब्रह्मा आदि की सम्पत्ति के प्रति भी मन में राग न रखने वाला यह भक्त माहेश्वर हो जाता है ॥९४॥

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ भक्तस्थले भक्तमार्गक्रियास्थलादिसप्तविध-स्थलप्रसङ्गो नाम नवमः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के भक्तमार्गक्रियास्थलवर्णन नामक नवम परिच्छेद की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदिकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।९।।



दशमः परिच्छेदः

अंगस्थलान्तर्गत

माहेश्वरस्थल

अगस्त्य उवाच-

भक्तस्थलं समाख्यातं भवता गणनायक।
केन वा धर्मभेदेन भक्तो माहेश्वरो भवेत्।।१।।

भावार्थ : (माहेश्वरस्थल वर्णन)— अगस्त्य ने कहा— हे गणनायक! आपने भक्त स्थल का वर्णन किया। (अब यह बतलाइये कि) किस धर्मभेद से भक्त माहेश्वर होता है ।।१।।

रेणुक उवाच-

केवले सहजे दाने निष्णातः शिवतत्परः।
ब्रह्मादिस्थानाविमुखो भक्तो माहेश्वरः स्मृतः।।२।।

भावार्थ : रेणुकाचार्य ने कहा— (जो व्यक्ति) केवल सहज दान में निष्णात एवं शिवभक्ति में लगा हुआ है तथा ब्रह्मा आदि के भी पद का अभिलाषी नहीं है ऐसा भक्त माहेश्वर माना गया है ।।२।।

भक्तेर्यदा समुत्कर्षो भवेद्वैराग्यगौरवात्।
तदा माहेश्वरः प्रोक्तो भक्तः स्थिरविवेकवान्।।३।।

भावार्थ : जब वैराग्य की अधिकता से (मनुष्य के अन्दर) भक्ति का उत्कर्ष होता है तब वह स्थिरविवेक वाला भक्त माहेश्वर कहा जाता है ।।३।।

माहेश्वरस्थलं वक्ष्ये यथोक्तं शम्भुना पुरा।
माहेश्वरप्रशंसादौ लिङ्गनिष्ठा ततः परम्।।४।।

पूर्वाश्रयनिरासश्च तथाद्वैतनिराकृतिः।
आह्वानवर्जनं पश्चादष्टमूर्तिनिराकृतिः।।५।।

सर्वगत्वनिरासश्च शिवत्वं शिवभक्तयोः।
एवं नवविधं प्रोक्तं माहेश्वरमहास्थलम्।।६।।

भावार्थ : (अब मैं) माहेश्वर स्थल को बतलाऊँगा जैसा कि भगवान् शिव ने पहले कहा है। पहले माहेश्वर की प्रशंसा उसके बाद लिङ्गार्चन में निष्ठा और पूर्व आश्रय का त्याग, उसी प्रकार अद्वैत का निराकरण, आह्वानवर्जन, अष्टमूर्त्ति का निराकरण तथा सर्वगत्व का निरास, शिवजगन्मयस्थल और अन्त में भक्तदेहिक लिङ्गस्थल इस प्रकार माहेश्वर महास्थल नव प्रकार का कहा गया है ॥४-६॥

आदितः क्रमशो वक्ष्ये स्थलभेदस्य लक्षणम्।
समाहितेन मनसा श्रूयतां भवता मुने।।७।।

भावार्थ : हे मुने! मैं स्थलभेद का लक्षण प्रारम्भ से बतलाऊँगा। आप समाहितचित्त होकर सुने ॥७॥

माहेश्वरप्रशंसास्थल - (१६)

विश्वस्मादधिको रुद्रो विश्वानुग्रहकारकः।
इति यस्य स्थिरा बुद्धिः स वै माहेश्वरः स्मृतः।।८।।

भावार्थ : 'भगवान् शिव विश्व से बढ़कर हैं। वे ही विश्व पर अनुग्रह करने वाले हैं'— इस प्रकार जिसकी निश्चित धारणा होती है वह माहेश्वर माना गया है ॥८॥

ब्रह्माद्यैर्मलिनप्रायैर्निर्मले परमेश्वरे।
साम्योक्तिं यो न सहते स वै माहेश्वराभिधः।।९।।

भावार्थ : जो मलिनप्राय ब्रह्मा आदि के साथ निर्मल परमेश्वर की तुलना को नहीं सह सकता उसका नाम माहेश्वर है ॥९॥

ईश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां महानिति।
बुद्धियोगात्तदासक्तो भक्तो माहेश्वरः स्मृतः।।१०।।

भावार्थ : 'ब्रह्मा आदि समस्त प्राणियों में परमेश्वर महान् हैं'— इस प्रकार के विचार से जो भक्त उन परमेश्वर में सदा आसक्त रहता है वह माहेश्वर कहा गया है ॥१०॥

ब्रह्मादिदेवताजालं मोहितं मायया सदा।
अशक्तं मुक्तिदाने तु क्षयातिशयसंयुतम्।।११।।

अनादिमुक्तो भगवानेक एव महेश्वरः।
मुक्तिदश्चेति यो वेद स वै माहेश्वरः स्मृतः।।१२।।

भावार्थ : ब्रह्मा आदि देवताओं का समूह सर्वदा माया ग्रस्त है। क्षय और अतिशय से युक्त वह समूह मुक्ति देने में असमर्थ है। केवल भगवान् शिव ही अनादि

मुक्त हैं और वही मुक्ति प्रदाता है ऐसा जो समझता है वही माहेश्वर कहा गया है ॥११-१२॥

क्षयातिशयसंयुक्ता ब्रह्मविष्ण्वादिसम्पदः।
तृणवन्मन्यते युक्त्या वीरमाहेश्वरः सदा।।१३।।

शब्दस्पर्शादिसम्पन्ने सुखलेशे तु निःस्पृहः।
शिवानन्दे समुत्कण्ठो वीरमाहेश्वरो भवेत्।।१४।।

भावार्थ : ब्रह्मा, विष्णु आदि का ऐश्वर्य क्षयशील और अतिशययुक्त है। वीर माहेश्वर उसको सदा तृण के समान (तुच्छ) मानता है। वह शब्द स्पर्श आदि से युक्त क्षणिक सुख की इच्छा नहीं रखता तथा शिवानन्द की प्राप्ति के लिये उत्कण्ठित रहता है। ऐसा व्यक्ति वीरमाहेश्वर होता है ॥१३-१४॥

परस्त्रीसङ्गनिर्मुक्तः परद्रव्यपराङ्मुखः।
शिवार्थकार्यसम्पन्नः शिवागमपरायणः।।१५।।

शिवस्तुतिरसास्वादमोदमानमनाः शुचिः।
शिवोत्कर्षप्रमाणानां सम्पादनसमुद्यतः।।१६।।

निर्ममो निरहङ्कारो निरस्तक्लेशपञ्जरः।
अस्पृष्टमदसम्बन्धो मात्सर्यावेशवर्जितः।।१७।।

निरस्तमदनोन्मेषो निर्धूतक्रोधविप्लवः।
सदा सन्तुष्टहृदयः सर्वप्राणिहिते रतः।।१८।।

निवारणसमुद्योगी शिवकार्यविरोधिनाम्।
सहचारी सदाकालं शिवोत्कर्षाभिधायिभिः।।१९।।

शिवापकर्षसम्प्राप्तौ प्राणत्यागेऽप्यशङ्कितः।
शिवैकनिष्ठः सर्वात्मा वीरमाहेश्वरो भवेत्।।२०।।

भावार्थ : परस्त्री का समागम न करने वाला, दूसरे का धन न चाहने वाला, शिव के लिये कार्य करने वाला, शैवागम का अध्ययन करने वाला, शिवस्तुति के रस का आस्वाद करने में लगा हुआ, (संसार के प्रति) ममतारहित, अहङ्कारशून्य, (अविद्या अस्मिता आदि) क्लेश के जाल को तोड़ने वाला, मद से अस्पृष्ट, मात्सर्य के आवेश से रहित, कामभावना से शून्य, क्रोध के वेग से दूर, सदा सन्तोषयुक्त, सब प्राणियों के हित में निरत, शिवकार्य का विरोध करने वालों को नष्ट करने में लगा हुआ, शिवोत्कर्ष

का प्रचार करने वालों का सदा सहचर, शिव का अपकर्ष प्राप्त होने पर प्राणत्याग करने को तत्पर, केवल शिव में निष्ठा रखने वाला सर्वात्मा व्यक्ति वीरमाहेश्वर होता है ॥१५-२०॥

लिङ्गनिष्ठास्थल (१७)

अस्य माहेश्वरस्योक्तं लिङ्गनिष्ठामहास्थलम्।
प्राणात्ययेऽपि सम्पन्ने यदत्याज्यं विधीयते।।२१।।

भावार्थ : (लिङ्गनिष्ठास्थल वर्णन)—प्राण संकट की स्थिति में भी जिस लिङ्ग के त्याग का विधान नहीं है वह इस माहेश्वर का लिङ्गनिष्ठ स्थल कहा गया है ॥२१॥

अपगच्छतु सर्वस्वं शिरश्छेदनमस्तु वा।
माहेश्वरो न मुञ्चेत लिङ्गपूजामहाव्रतम् ।।२२।।

भावार्थ : समस्त धन सम्पत्ति भले ही चली जाय, शिर कट जाय किन्तु माहेश्वरलिङ्गपूजारूपी महाव्रत का कभी भी त्याग नहीं करता ॥२२॥

लिङ्गपूजामकृत्वा तु ये न भुञ्जन्ति मानवाः।
तेषां महात्मनां हस्ते मोक्षलक्ष्मीरुपस्थिता।।२३।।

भावार्थ : जो मनुष्य बिना लिङ्गपूजा किये भोजन नहीं करते उन महात्माओं के हाथ में मोक्षलक्ष्मी सदा उपस्थित रहती है ॥२३॥

किमन्यैर्धर्मकलिलैः कीकषार्थप्रदायिभिः।
साक्षान्मोक्षप्रदः शम्भोर्धर्मो लिङ्गार्चनात्मकः।।२४।।

भावार्थ : क्षुद्र घृणास्पद अर्थ को देने वाले अन्य मलिन धर्मों से क्या लाभ? शम्भु का लिङ्गार्चनात्मक धर्म साक्षात् मोक्ष देने वाला है ॥२४॥

अर्पितेनान्नपानेन लिङ्गे नियमपूजिते।
ये देहवृत्तिं कुर्वन्ति महामाहेश्वरा हि ते।।२५।।

भावार्थ : समर्पित अन्नपान के द्वारा जो लोग नियमपूर्वक लिङ्ग की पूजा करते हैं तथा देह को (उसी समर्पित अन्न पान से) जीवित रखते हैं वे महा माहेश्वर हैं ॥२५॥

चिन्मये शाङ्करे लिङ्गे स्थिरं येषां मनः सदा।
विमुक्तेतरसर्वार्थं ते शिवा नात्र संशयः।।२६।।

भावार्थ : जिनका मन शिवस्वरूपी लिंग में सदा स्थित रहता है तथा (मुक्ति से) भिन्न सभी विषयों का जिसने त्याग कर दिया है वे शिव हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥२६॥

लिङ्गे यस्य मनो लीनं लिङ्गस्तुतिपरा च वाक्।
लिङ्गार्चनपरौ हस्तौ स रुद्रो नात्र संशयः।।२७।।

भावार्थ : जिसका मन लिङ्ग में लीन है, जिसकी वाणी लिङ्ग की स्तुति में लगी रहती है जिसके दोनों हाथ लिङ्गार्चन में निरत रहते हैं वह रुद्र है, इसमें सन्देह नहीं ॥२७॥

लिङ्गनिष्ठस्य किं तस्य कर्मणा स्वर्गहेतुना।
नित्यानन्दशिवप्राप्तिर्यस्य शास्त्रेषु निश्चिता।।२८।।

भावार्थ : जिस भक्त की शिवानन्द प्राप्ति शास्त्रों के अनुसार निश्चित है। लिङ्गार्चन में लगे हुए उस (भक्त) के स्वर्गहेतुक कर्म से क्या लाभ? या क्या प्रयोजन? ॥२८॥

लिङ्गनिष्ठापरं शान्तं भूतिरुद्राक्षसंयुतम्।
प्रशंसन्ति सदाकालं ब्रह्माद्या देवता मुदा।।२९।।

भावार्थ : ब्रह्मा आदि देवता लिङ्ग में निष्ठा रखने वाले, शान्त, भस्म और रुद्राक्ष धारण करने वाले (भक्त) की आनन्द के साथ सदा प्रशंसा करते हैं ॥२९॥

पूर्वाश्रयनिरसनस्थल - (१८)

लिङ्गैकनिष्ठहृदयः सदा माहेश्वरो जनः।
पूर्वाश्रयगतान् धर्मांस्त्यजेत्स्वाचाररोधकान्।।३०।।

भावार्थ : **(पूर्वाश्रयनिरसनस्थल वर्णन)**— एकमात्र लिङ्गार्चन में निष्ठा रखने वाले माहेश्वर जन को चाहिये कि वह अपने आचार (अर्थात् वीरशैवाचार) के विरोधी पहले स्वीकृत धर्मों का त्याग कर दे ॥३०॥

स्वजातिकुलजान् धर्मान् लिङ्गनिष्ठाविरोधिनः।
त्यजन् माहेश्वरो ज्ञेयः पूर्वाश्रयनिरासकः।।३१।।

भावार्थ : अपनी जाति अपने कुल के भी धर्मों अर्थात् जननाशौच मरणाशौच आदि को, यदि वे लिङ्गनिष्ठा के विरोधी हैं तो उनका त्याग करने वाला पूर्वाश्रयनिरासक भक्त माहेश्वर जाना जाता है ॥३१॥

शिवसंस्कारयोगेन विशुद्धानां महात्मनाम्।
किं पूर्वकालिकैर्धर्मैः प्राकृतानां हि ते मताः।।३२।।

भावार्थ : शिवसंस्कार के योग के कारण शुद्ध हुए महात्माओं को पूर्व में वर्त्तमान एवं अनुष्ठित धर्मों से क्या प्रयोजन? वे धर्म प्राकृत अर्थात् साधारण लोगों के लिये कहे गये हैं ॥३२॥

विशेष— जिस प्रकार सन्यासी सन्यास से पूर्व वाले आश्रम धर्मो को छोड़ने पर दोषदुष्ट नहीं होता उसी प्रकार वीरशैव धर्म स्वीकार करने वाला व्यक्ति यदि अन्य धर्माचरणों का त्याग करता है तो वह प्रायश्चित्ती नहीं होता इस विषय में टीकाकार ने 'नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति.....' गीता वाक्य को उद्धृत किया है ।

शिवसंस्कारयोगेन शिवधर्मानुषङ्गिणाम्।
प्राकृतानां न धर्मेषु प्रवृत्तिरुपपपद्यते।।३३।।

भावार्थ : शिवसंस्कार के योग से शिवधर्म का पालन करने वाले प्राकृत जनों की (अन्य) धर्मों में प्रवृत्ति नहीं होती ॥३३॥

विशुद्धाः प्राकृताश्चेति द्विविधा मानुषा स्मृताः।
शिवसंस्कारिणः शुद्धाः प्राकृता इतरे मताः।।३४।।

भावार्थ : मनुष्य दो प्रकार के कहे गये हैं— विशुद्ध और प्राकृत। दीक्षारूपी शिव के संस्कार से युक्त मनुष्य शुद्ध होते हैं दूसरे लोग प्राकृत माने गये हैं ॥३४॥

वर्णाश्रमधर्माणां व्यवस्था हि द्विधा मता।
एका शिवेन निर्दिष्टा ब्रह्मणा कथिताऽपरा।।३५।।

भावार्थ : वर्णाश्रम आदि धर्मों की व्यवस्था दो प्रकार की मानी गयी है— एक शिव के द्वारा निर्दिष्ट है दूसरी का निर्देश ब्रह्मा ने किया है ॥३५॥

शिवोक्तधर्मनिष्ठा तु शिवाश्रमनिषेविणाम्।
शिवसंस्कारहीनानां धर्मः पैतामहः स्मृतः।।३६।।

भावार्थ : शैवाश्रम में रहने वालों (वीरशैवधर्मवालों) की शिवोक्त धर्म में निष्ठा होती है। जो लोग शिवसंस्कार से हीन हैं उनका धर्म ब्रह्मा के द्वारा निर्दिष्ट कहा गया है ॥३६॥

शिवसंस्कारयुक्तेषु जातिभेदो न विद्यते।
काष्ठेषु वह्निदग्धेषु यथा रूपं न विद्यते।।३७।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शिवसंस्कारसंयुतः।
जातिभेदं न कुर्वीत शिवभक्ते कदाचन।।३८।।

भावार्थ : अग्नि से दग्ध काष्ठों का जैसे उसका रूप दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार शिवसंस्कार से युक्त लोगों में जातिगत भेद नहीं होता है। इसलिए शिव संस्कार संपन्न शिवभक्तों में जातिभेद नहीं करना चाहिए ॥३७-३८॥

सर्वाद्वैतनिरसनस्थल - (१९)

पूज्यपूजकयोर्लिङ्गजीवयोर्भेदवर्जने ।
पूजाकर्माद्यसम्पत्तेर्लिङ्गनिष्ठाविरोधतः ।।३९।।

सर्वाद्वैतविचारस्य ज्ञानाभावे व्यवस्थितेः।
भवेन्माहेश्वरः कर्मी सर्वाद्वैतनिरासकः ।।४०।।

भावार्थ : पूज्य पूजक अर्थात् लिङ्ग और जीव के भेद को दूर करने पर पूजा कर्म आदि की अप्राप्ति, लिङ्गनिष्ठा का विरोध हो जाता है। समस्त अद्वैत विचार की व्यवस्था के ज्ञान का अभाव, होने पर कर्मी माहेश्वर सर्वाद्वैत निरासक होता है ।।३९-४०।।

प्रेरकं शङ्करं बुद्ध्वा प्रेर्यमात्मानमेव च।
भेदात् तं पूजयेन्नित्यं न चाद्वैतपरो भवेत् ।।४१।।

भावार्थ : शंकर को प्रेरक और अपने को प्रेर्य मानकर भेदज्ञानपूर्वक उनकी नित्य पूजा करनी चाहिये। अद्वैतपरक नहीं बनना चाहिये ।।४१।।

पतिः साक्षान्महादेवः पशुरेष तदाश्रयः।
अनयोः स्वामिभृत्यत्वमभेदे कथमिष्यते ।।४२।।

भावार्थ : महादेव साक्षात् पति हैं। उनके अधीन रहने वाला यह जीव पशु है। इन दोनों में स्वस्वामी भावरूप सम्बन्ध है। फिर अभेद मानने पर यह कैसे होगा? ।।४२।।

साक्षात्कृतं परं तत्त्वं यदा भवति बोधतः।
तदाद्वैतसमापत्तिर्ज्ञानहीनस्य न क्वचित् ।।४३।।

भावार्थ : ज्ञान के कारण जब पर तत्त्व का साक्षात्कार हो जाता है तब अद्वैत की प्राप्ति होती है। ज्ञान से रहित मनुष्य को यह प्राप्ति कभी नहीं होती ।।४३।।

भेदस्य कर्महेतुत्वाद् व्यवहारः प्रवर्तते।
लिङ्गपूजादिकर्मस्थो न चाद्वैतं समाचरेत् ।।४४।।

भावार्थ : भेद का व्यवहार कर्म के कारण होता है। इसलिये लिङ्गपूजा आदि कर्म करने वाले को अद्वैत का आचरण नहीं करना चाहिये ।।४४।।

पूजादिव्यवहारः स्याद्भेदाश्रयतया सदा।
लिङ्गपूजापरस्तस्मान्नाद्वैते निरतो भवेत् ।।४५।।

भावार्थ : पूजा आदि का व्यवहार सर्वदा भेद के आधार पर होता है, इसलिये लिङ्गपूजा में लगे हुए (भक्त) को अद्वैत में निरत नहीं होना चाहिये ।।४५।।

आह्वाननिरसनस्थल - (२०)

लिङ्गार्चनपरः शुद्धः सर्वाद्वैतनिरासकः।
स्वेष्टलिङ्गे शिवाकारे न तमाह्वयेच्छिवम्।।४६।।

भावार्थ : लिङ्गार्चन में लगा हुआ सर्वाद्वैत का निषेध वाला परिशुद्ध (वीर माहेश्वर) शिवरूपी अपने इष्ट लिङ्ग में उस शिव का आवाहन न करे ॥४६॥

यदा शिवकलायुक्तं लिङ्गं दद्यान्महागुरुः।
तदारभ्य शिवस्तत्र तिष्ठत्याह्वानमत्र किम्।।४७।।

भावार्थ : (इसका कारण यह है कि) महागुरु जिस दिन से शिवकलायुक्त लिङ्ग (शिष्य को) देते हैं उस दिन से शिव उसमें रहते ही हैं फिर उसमें उनका आवाहन क्या? ॥४७॥

ससंस्कारेषु लिङ्गेषु सदा सन्निहितः शिवः।
तत्राह्वानं न कर्तव्यं प्रतिपत्तिविरोधकम्।।४८।।

भावार्थ : संस्कारयुक्त लिङ्गों में शिव सर्वदा सन्निहित रहते हैं। उसमें भक्ति अथवा ज्ञान का विरोधी आवाहन नहीं करना चाहिये ॥४८॥

नाह्वानं न विसर्गं च स्वेष्टलिङ्गे तु कारयेत्।
लिङ्गनिष्ठापरो नित्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः।।४९।।

भावार्थ : लिङ्गपूजा में निष्ठा रखने वाला (भक्त) अपने इष्ट लिङ्ग में न तो शिव का आवाहन करे और न विसर्जन। ऐसा शास्त्र का निश्चय है ॥४९॥

अष्टमूर्तिनिरसनस्थल - (२१)

यथात्मशिवयोरैक्यं न मतं कर्मसङ्गिनः।
तथा शिवात्पृथिव्यादेरद्वैतमपि नेष्यते।।५०।।

भावार्थ : **(अष्टमूर्त्तिनिरसनस्थल वर्णन)**— जिस प्रकार (शिवपूजा लिङ्गधारण आदि) कर्म में आसक्ति रखने वाला आत्मा और शिव में ऐक्य नहीं मानता उसी प्रकार पृथिवी आदि का भी शिव के साथ ऐक्य इष्ट नहीं है। ॥५०॥

पृथिव्याद्यष्टमूर्तित्वमीश्वरस्य प्रकीर्तितम्।
तदधिष्ठातृभावेन न साक्षादेकभावतः।।५१।।

भावार्थ : ईश्वर पृथिवी आदि अष्ट मूर्त्ति का रूप है। (इसका तात्पर्य यह है कि ईश्वर) उन (=आठ मूर्त्तियों) का अधिष्ठाता है न कि उनसे अभिन्न ॥५१॥

विशेष— जैसे स्तन और दूध में परस्पर भेद होने पर भी बालक स्तन पी रहा है— ऐसा लाक्षणिक व्यवहार होता है उसी प्रकार पृथिवी आदि का शिव की मूर्त्ति के रूप में कथन लाक्षणिक है। इसकी पुष्टि के लिये 'यस्य पृथिवी शरीरम्' इत्यादि श्रुति वाक्य प्रमाण है।

पृथ्व्यादिकमिदं सर्वं कार्यं कर्ता महेश्वरः।
नैतत्साक्षान्महेशोऽयं कुलालो मृत्तिका यथा।।५२।।

भावार्थ : यह समस्त पृथिवी आदि कार्य है। महेश्वर इसके कर्त्ता हैं। यह (पृथिवी आदि) साक्षात् महेश्वर नहीं है जैसे कि मिट्टी और कुम्हार (एक नहीं) हैं ।।५२।।

पृथिव्याद्यात्मपर्यन्तप्रपञ्चो ह्यष्टधा स्थितः।
तनुरीशस्य चात्मायं सर्वतत्त्वनियामकः।।५३।।

भावार्थ : पृथिवी से लेकर आत्मा तक (अर्थात् पृथिवी जल तेज वायु आकाश चन्द्रमा सूर्य और अग्नि अर्थात् आत्मा) यह प्रपञ्च आठ प्रकार से स्थित है। यह सब परमेश्वर का शरीर है और यह आत्मा समस्त तत्त्वों का नियामक है ।।५३।।

शरीरभूतादेतस्मात् प्रपञ्चात्परमेष्ठिनः।
आत्मभूतस्य देवस्य नाभेदो न पृथक्स्थितिः।।५४।।

भावार्थ : परमेष्ठी के शरीरभूत इस प्रपञ्च से आत्मभूत परमेश्वर का न अभेद है और न घट-पट के समान सर्वथा उनकी पृथक् स्थिति है ।।५४।।

अचेतनात्वात् पृथ्व्यादेरज्ञत्वाद् आत्मनस्तथा।
सर्वज्ञस्य महेशस्य नैकरूपत्वमिष्यते।।५५।।

भावार्थ : पृथिवी आदि अचेतन अर्थात् जड़ है। जीवात्मा अज्ञ अर्थात् अल्पज्ञ है। परमेश्वर सर्वज्ञ है। इन तीनों की एकरूपता नहीं हो सकती ।।५५।।

इति यश्चिन्तयेन्नित्यं पृथिव्यादेरष्टमूर्तितः।
विलक्षणं महादेवं सोऽष्टमूर्तिनिरासकः।।५६।।

भावार्थ : जो साधक इस प्रकार महादेव को पृथिवी आदि अष्टमूर्ति से विलक्षण समझता और ध्यान करता है वह अष्टमूर्त्तिनिरासक माना जाता है ।।५५।।

सर्वगतनिरसनस्थल - (२२)

सर्वगत्वे महेशस्य सर्वत्राराधनं भवेत्।
न लिङ्गमात्रे तन्निष्ठो न शिवं सर्वगं स्मरेत्।।५७।।

भावार्थ : (सर्वगतनिरसनस्थल वर्णन)— चूँकि महेश्वर सर्वव्यापी हैं। इसलिये उनकी सर्वत्र आराधना की जा सकती है न कि केवल लिङ्ग में। यदि शिव को केवल लिङ्ग में स्थित मान लिया जाय तो वह सर्वव्यापी के रूप में स्मृत नहीं होंगे (फिर लिङ्ग की पूजा कैसे युक्तियुक्त होगी?) ॥५७॥

सर्वगोऽपि स्थितः शम्भुः स्वाधारे हि विशेषतः।
तस्मादन्यत्र विमुखः स्वेष्टलिङ्गे यजेच्छिवम्॥५८॥

भावार्थ : यद्यपि शिव सर्वव्यापी हैं फिर भी अपने आधार अर्थात् लिङ्ग में विशेष रूप से स्थित हैं। इस कारण अन्यत्र विमुख होकर अपने इष्टलिङ्ग में ही शिव की पूजा करनी चाहिये ॥५८॥

शिवः सर्वगतश्चापि स्वाधारे व्यज्यते भृशम्।
शमीगर्भे यथा वह्निर्विशेषेण विभाव्यते॥५९॥

भावार्थ : यद्यपि शिव सर्वगत हैं तथापि वे अपने आधार अर्थात् इष्टलिंग में विशेष रूप से अभिव्यक्ति होते हैं। जैसे कि अग्नि सभी वृक्षों में रहती है फिर भी शमी के अन्दर विशेष रूप से व्यक्त होती है ॥५९॥

सर्वगत्वं महेशस्य सर्वशास्त्रविनिश्चितम्।
तथाप्याश्रयलिङ्गादौ पूजार्थमधिका स्थितिः॥६०॥

भावार्थ : महेश्वर की सर्वव्यापकता सब शास्त्रों में निश्चित है तो भी आश्रयभूत लिङ्ग आदि में पूजा के लिये (शिव की) विशेष स्थिति रहती है ॥६०॥

नित्यं भासि तदीयस्त्वं या ते रुद्र शिवा तनूः।
अघोराऽपापकाशीति श्रुतिराह सनातनी॥६१॥

भावार्थ : 'हे रुद्र! जो आपकी अघोर अर्थात् अभयङ्कर मङ्गलकारी दोषरहित (लिंगरूपी) शरीर है'— ऐसा सनातनी श्रुति कहती है उस शरीर वाले तुम नित्य प्रकाशित हो रहे हो ॥६१॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वस्थानपराङ्मुखः।
स्वेष्टलिङ्गे महादेवं पूजयेत्पूजकोत्तमः॥६२॥

भावार्थ : इसलिय उत्तम पूजक को चाहिये कि वह सब स्थानों से पराङ्मुख होकर अपने इष्टलिंग में महादेव की पूजा करे ॥६२॥

शिवस्य सर्वगत्वेऽपि सर्वत्र रतिवर्जितः।
स्वेष्टलिङ्गे यजन् देवं सर्वगत्वनिरासकः।।६३।।

भावार्थ : यद्यपि शिव सर्वगामी है तो भी जो सर्वत्र अनुरागरहित होकर केवल अपने इष्टलिङ्ग में देव की पूजा करता है वह सर्वगत्व निरासक कहा जाता है ।।६३।।

शिवजगन्मयस्थल - (२३)

पूजाविधौ नियम्यत्वाल्लिङ्गमात्रे स्थितं शिवम्।
पूजयन्नपि देवस्य सर्वगत्वं विभावयेत्।।६४।।

भावार्थ : (शिवजगन्मयस्थल वर्णन)— पूजा की विधि में नियमित होने के कारण लिङ्ग मात्र में स्थित शिव की पूजा करता हुआ भी भक्त देवाधिदेव की सर्वव्यापकता की भावना करता रहे ।।६४।।

यस्मादेतत् समुत्पन्नं महादेवाच्चराचरम्।
तस्मादेतन्न भिद्येत यथा कुम्भादिकं मृदः।।६५।।

भावार्थ : चूँकि यह चराचर महादेव से उत्पन्न है इस कारण वह जैसे (मिट्टी से उत्पन्न कुम्भ) आदि मिट्टी से भिन्न नहीं होते उसी प्रकार महादेव से भिन्न नहीं है ।।६५।।

शिवतत्त्वात्समुत्पन्नं जगदस्मान्न भिद्यते।
फेनोर्मिबुद्बुदाकारं यथा सिन्धोर्न भिद्यते।।६६।।

भावार्थ : चूँकि यह चराचर शिवतत्त्व से उत्पन्न है अतः उससे उसी प्रकार भिन्न नहीं है जैसे (समुद्र से उत्पन्न) फेन लहर बुदबुद समुद्र से भिन्न नहीं होते ।।६६।।

यथा तन्तुभिरुत्पन्नः पटस्तन्तुमयः स्मृतः।
तथा शिवात्समुत्पन्नं शिव एव चराचरम्।।६७।।

भावार्थ : जिस प्रकार तन्तुओं से उत्पन्न पट तन्तुमय कहा जाता है उसी प्रकार शिव से उत्पन्न चराचर शिव ही है ।।६७।।

आत्मशक्तिविकासेन शिवो विश्वात्मना स्थितः।
कुटीभावाद् यथा भाति पटः स्वस्य प्रसारणात्।।६८।।

भावार्थ : शिव अपनी शक्ति के विकास से विश्व के रूप में ठीक उसी प्रकार स्थित जैसे पट अपने प्रसार से तम्बू के रूप में स्थित होता है ।।६८।।

तस्माच्छिवमयं सर्वं जगदेतच्चराचरम्।
तदभिन्नतया भाति सर्पत्वमिव रज्जुतः।।६९।।

भावार्थ : इसलिये शिवमय यह समस्त जगत् रज्जु से सर्पत्व[१] की भाँति उस शिव से अभिन्न रूप में भासित होता है ॥६९॥

रज्जौ सर्पवद्भाति शुक्तौ तु रजतत्ववत्।
चोरत्ववदपि स्थाणौ मरीच्यां च जलत्ववत्।।७०।।

गन्धर्वपुरवद्व्योम्नि सच्चिदानन्दलक्षणे।
निरस्तभेदसद्भावे शिवे विश्वं विराजते।।७१।।

भावार्थ : रस्सी में सर्पत्व, शुक्ति में रजतत्व, स्थाणु में चोरत्व, मृगमरीचिका में जलत्व, आकाश में गन्धर्वनगरत्व के आरोप की भाँति सच्चिदानन्दस्वरूप भेदरहित शिव में विश्व आभासित होता है ॥७०-७१॥

पत्रशाखादिरूपेण यथा तिष्ठति पादपः।
तथा भूम्यादिरूपेण शिव एको विराजते।।७२।।

भावार्थ : जिस प्रकार (एक) वृक्ष (अनेक) पत्ते शाखा आदि के रूप में स्थित होता है उसी प्रकार शिव (अनेक) भूमि आदि रूप में विराजमान हैं ॥७२॥

विशेष : प्रकाशस्वरूप शिव अपने अन्दर समवेत विमर्श शक्ति के द्वारा अनेक रूपों में भासित होते हैं। धृति के कारण धरणी, करूणा के कारण जल, उज्ज्वलता के कारण तेज, आनन्दस्पन्दन के कारण वायु, चैतन्य की व्याप्ति के कारण आकाश तथा सङ्कुचित चैतन्य के कारण जीवरूप में प्रकाशितं हो रहे हैं। शिव यद्यपि निरंश है तथापि अपनी दुर्घटकारिणी शक्ति के कारण वे नाना एवं सावयवरूप में वर्त्तमान है। जहाँ तक प्रतिभासिक प्रतीति का प्रश्न है। उसमें भी अपनी शक्ति की न्यूनता के द्वारा शिव ही भासित होते हैं। टीकाकार बाध्यबाधक भाव स्वीकार नहीं करते क्योंकि शुक्ति में रजत की प्रतीति एवं उसके बाध का काल भिन्न होता है। 'इदं रजतम्' 'नेदं रजतम्' दोनों ज्ञानों का स्थिति काल भिन्न है अतः बाध्यबाधक भाव नहीं हो सकता। ज्ञान गुण है और निरंश है अतः वहाँ वह सम्भव नहीं है। अतः रजतज्ञान और शुक्तिज्ञान शिव के उन्मेष निमेष है।

भक्तदेहिकलिङ्गस्थल - (२४)

समस्तजगदात्मापि शङ्करः परमेश्वरः।
भक्तानां हृदयाम्भोजे विशेषेण विराजते।।७३।।

---

१. रज्जु में सर्प का भ्रम होने पर वस्तुतः मन्दान्धकार, रज्जु का वक्रत्व आदि दोष के कारण रज्जु में सर्प के धर्म सर्पत्व का आरोप होता है न कि सर्प का। सर्प तो रज्जु से सर्वथा भिन्न है अनारोप्य है।

भावार्थ : (भक्तिदेहिकलिङ्गस्थल वर्णन)— यद्यपि शङ्कर परमेश्वर सम्पूर्ण संसार में व्याप्त हैं तथापि भक्तों के हृदयकमल में वे विशेष रूप से विराजमान रहते हैं ।।७३।।

कैलासे मन्दरे चैव हिमाद्रौ कनकाचले।
हृदयेषु च भक्तानां विशेषेण व्यवस्थित:।।७४।।

भावार्थ : कैलास मन्दर हिमालय कनकाचल अर्थात् सुमेरु इन पर्वतों तथा भक्तों के हृदय में (शिव की) विशेष स्थिति रहती है ।।७४।।

सर्वात्मापि परिच्छिन्नो यथा देहेषु वर्तने।
तथा स्वकीयभक्तेषु शङ्करो भासते सदा।।७५।।

भावार्थ : जिस प्रकार सर्वत्र व्यापक भी परमात्मा देवादि के देहों में परिच्छिन्न होकर प्रतिबिम्ब भाव से रहते हैं उसी प्रकार शङ्कर अपने भक्तों में सदा भासते हैं ।।७५।।

नित्यं भाति त्वदीयेषु या ते रुद्र शिवा तनू:।
अघोराऽपापकाशीति श्रुतिराह सनातनी।।७६।।

भावार्थ : 'हे रुद्र! जो तुम्हारी शिवा अघोरा अपापकाशिनी शरीर है वह तुम्हारे (भक्तों) के अन्दर नित्य भासित होती है'— ऐसा सनातन श्रुति कहती है ।।७६।।

विशुद्धेषु विरक्तेषु विवेकिषु महात्मसु।
शिवस्तिष्ठति सर्वात्मा शिवलाञ्छनधारिषु।।७७।।

भावार्थ : विशुद्ध वैराग्ययुक्त विवेकी तथा शिवचिह्न को धारण करने वाले महात्माओं के अन्दर सर्वात्मा शिव विराजमान रहते हैं ।।७७।।

नित्यं सन्तोषयुक्तानां ज्ञाननिर्धूतकर्मणाम्।
माहेश्वराणामन्त:स्थो विभाति परमेश्वर:।।७८।।

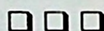
भावार्थ : नित्य सन्तोषयुक्त ज्ञान के द्वारा समस्त कर्मों को भस्म किये हुए महेश्वर के भक्तों के अन्दर स्थित परमेश्वर प्रकाशित होते हैं ।।७८।।

अन्यत्र शम्भो रतिमात्रशून्यो
निजेष्टलिङ्गे नियतान्तरात्मा।
शिवात्मकं विश्वमिदं विबुध्यन्
माहेश्वरोऽसौ भवति प्रसादी।।७९।।

भावार्थ : शम्भु से अतिरिक्त विषयों में अनासक्त अपने इष्टलिङ्ग में संयत अन्तःकरण वाला तथा इस संसार को शिवस्वरूप समझने वाला यह माहेश्वर ही (सर्वदा) प्रसादी अर्थात् स्वयं प्रसन्न रहकर दूसरों को प्रसन्न करने वाला प्रसादी स्थल का साधक बन जाता है ।।७९।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्य-विरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ माहेश्वरस्थले माहेश्वरप्रशंसादिनवविधस्थलप्रसङ्गो नाम दशमः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के नवविधस्थलप्रसङ्ग नामक दशम परिच्छेद की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।१०।।



एकादश: परिच्छेद:

अंगस्थलांतर्गत

प्रसादीस्थल

अगस्त्य उवाच —

उक्तो माहेश्वर: साक्षाल्लिङ्गनिष्ठादिधर्मवान्।
कथमेष प्रसादीति कथ्यते गणनायक।।१।।

भावार्थ : **(प्रसादीस्थल वर्णन)**— अगस्त्य ने कहा— हे गणनायक! साक्षात् लिङ्ग में निष्ठा आदि धर्म से युक्त माहेश्वर का आपने वर्णन किया। यह माहेश्वर फिर 'प्रसादी' क्यों कहा जाता है? (यह बतलाइये) ।।१।।

रेणुक उवाच —

लिङ्गनिष्ठादिभावेन ध्वस्तपापनिबन्धन:।
मन:प्रसादयोगेन प्रसादीत्येष कथ्यते।।२।।

भावार्थ : रेणुकाचार्य ने कहा— लिङ्ग के प्रति निष्ठा आदि भाव के द्वारा समस्त पापरूपी बन्धन को नष्ट करने वाला माहेश्वर मन की प्रसन्नता के कारण 'प्रसादी' कहलाता है ।।२।।

प्रसादिस्थलमित्येतदस्य माहात्म्यबोधकम्।
अन्तरस्थलभेदेन सप्तधा परिकीर्तितम्।।३।।

भावार्थ : यह प्रसादी स्थल इसकी महिमा का ज्ञापक है। अन्तर्गत स्थलों के भेद से यह सात प्रकार का कहा गया है ।।३।।

प्रसादिस्थलमादौ तु गुरुमाहात्म्यकं तत:।
ततो लिङ्गप्रशंसा च ततो जङ्गमगौरवम्।।४।।

ततो भक्तस्य माहात्म्यं तत: शरणकीर्तनम्।
शिवप्रसादमाहात्म्यमिति सप्तप्रकारकम्।।५।।

भावार्थ : पहला प्रसादीस्थल, दूसरा गुरुमाहात्म्य स्थल, तीसरा लिङ्ग-प्रशंसा उसके बाद जङ्गमगौरव, तत्पश्चात् भक्तमाहात्म्य इसके बाद शरण-कीर्त्तनस्थल और अन्त में शिवप्रसादमाहात्म्यस्थल ये सात प्रकार हैं ।।४-५।।

प्रसादिस्थल - (२५)

क्रमाल्लक्षणमेतेषां कथयामि महामुने।
नैर्मल्यं मनसो लिङ्गं प्रसाद इति कथ्यते।।
शिवस्य लिङ्गरूपस्य प्रसादादेव सिद्ध्यति।।६।।

भावार्थ : हे महामुने! (अब मैं) इनका क्रम से लक्षण कह रहा हूँ। मन की निर्मलतारूपी चिह्न प्रसाद कहा जाता है। यह प्रसाद लिङ्गरूपी शिव की कृपा से प्राप्त होता है ।।६।।

शिवप्रसादं यद्द्रव्यं शिवाय विनिवेदितम्।
निर्माल्यं तत्तु शैवानां मनोनैर्मल्यकारणम्।।७।।

भावार्थ : शिव को समर्पित जो शिव का प्रसाद उसकी निर्मलता वीर शैवों के मन की निर्मलता का कारण होती है ।।७।।

मनःप्रसादसिद्ध्यर्थं निर्मलज्ञानकारणम्।
शिवप्रसादं स्वीकुर्वन् प्रसादीत्येष कथ्यते।।८।।

भावार्थ : मन की प्रसन्नता की सिद्धि के लिये निर्मल ज्ञान के कारणभूत शिवप्रसाद को स्वीकार करने वाला 'प्रसादी' कहा जाता है ।।८।।

अन्नशुद्ध्या हि सर्वेषां तत्त्वशुद्धिरुदाहृता।
विशुद्धमन्नजातं हि यच्छिवाय समर्पितम्।।९।।

तदेव सर्वकालं तु भुञ्जानो लिङ्गतत्परः।
मनःप्रसादमतुलं लभते ज्ञानकारणम्।।१०।।

भावार्थ : अन्न की शुद्धि से सबकी तत्त्वशुद्धि कही गयी है। विशुद्ध अन्न वह होता है जो शिव को समर्पित किया होता है। लिङ्ग की आराधना में तत्पर भक्त सदा उस अन्न को खाने से ज्ञानोत्पत्ति के कारणीभूत असीम मनःप्रसाद को प्राप्त करता है ।।९-१०।।

आत्मभोगाय नियतं यद्यद्द्रव्यं समाहितम्।
तत्तत् समर्प्य देवाय भुञ्जीयादात्मशुद्धये।।११।।

भावार्थ : आत्मभोग के लिये निश्चित रूप से जो-जो द्रव्य एकत्रित किया गया आत्मशुद्धि के लिये उस-उस को महादेव को समर्पित कर खाना चाहिये ।।११।।

नित्यसिद्धेन देवेन भिषजा जन्मरोगिणाम्।
यद्यत् प्रसादितं भुक्त्वा तत्तज्जन्मरसायनम्।।१२।।

भावार्थ : जन्मरूपी रोग वालों के लिये नित्यसिद्ध वैद्यरूपी शिव देव के द्वारा भोग लगाकर जो-जो वस्तु प्रसाद बनायी गयी वह सब वस्तु जन्मरसायन अर्थात् पुनर्जन्म से मुक्ति पाने के लिये औषधि है ॥१२॥

आरोग्यकारणं पुंसामन्त:करणशुद्धिदम्।
तापत्रयमहारोगसमुद्धरणभेषजम् ।।१३।।

विद्यावैशद्यकरणं विनिपातविघातनम्।।
द्वारं ज्ञानावतारस्य मोहोच्छेदस्य कारणम्।।१४।।

वैराग्यसम्पदो मूलं महानन्दप्रवर्धनम्।
दुर्लभं पापचित्तानां सुलभं शुद्धकर्मणाम्।।१५।।

आदृतं ब्रह्मविष्ण्वाद्यैर्वसिष्ठाद्यैश्च तापसै:।
शिवस्वीकृतमन्नाद्यं स्वीकार्यं सिद्धिकाङ्क्षिभि:।।१६।।

भावार्थ : सिद्धि को चाहने वाले लोगों को चाहिये कि वे शिव के द्वारा स्वीकृत अर्थात् शिव को समर्पित अन्नादि का ग्रहण करें। इस अन्नादि की विशेषतायें निम्नलिखित हैं— यह पुरुषों के आरोग्य का कारण है। उनके अन्त:करण को शुद्ध करने वाला है। तीन ताप रूपी महारोग से उद्धार करने के लिये औषध है। विद्या को विशद बनाता है। पतन अर्थात् कृत्रिदोष को रोकता है। ज्ञानावतार का द्वार तथा मोहोच्छेद का कारण है। वैराग्यरूपी सम्पत्ति का मूल तथा महानन्द को बढ़ाने वाला है। पापियों के लिये दुर्लभ और शुद्ध आचार वालों के लिये सुलभ है। ब्रह्मा विष्णु आदि देवता तथा वशिष्ठ आदि तपस्वियों के द्वारा प्रसाद का आदर किया गया है ॥१३-१६॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यच्छिवाय निवेदितम्।
तत्तत्स्वीकारयोगेन सर्वपापक्षयो भवेत्।।१७।।

भावार्थ : पत्र पुष्प फल जल जो कुछ शिव के लिये निवेदित है उस-उस का स्वीकार करने से समस्त पापों का क्षय हो जाता है ॥१७॥

यथा शिवप्रसादान्नं स्वीकार्यं लिङ्गतत्परै:।
तथा गुरो: प्रसादान्नं तथैव शिवयोगिनाम्।।१८।।

भावार्थ : लिङ्ग की आराधना में तत्पर लोगों के द्वारा जैसे शिव का प्रसाद रूपी अन्न स्वीकार्य होता है उसी प्रकार गुरु एवं शिवयोगियों का भी प्रसादान्न स्वीकार्य होना चाहिये ॥१८॥

गुरुमाहात्म्यस्थल - (२६)

गुरुरेवात्र सर्वेषां कारणं सिद्धिकर्मणाम्।
गुरुरूपो महादेवो यतः साक्षादुपस्थितः।।१९।।

भावार्थ : इस जगत् में समस्त सिद्धि कर्मों का कारण गुरु ही है क्योंकि गुरु के रूप में साक्षात् महादेव उपस्थित हैं ।।१९।।

निष्कलो हि महादेवो नित्यज्ञानमहोदधिः।
सकलो गुरुरूपेण सर्वानुग्राहको भवेत्।।२०।।

भावार्थ : नित्य ज्ञान के समुद्र महादेव निष्कल हैं वही गुरु के रूप में सकल होकर सर्वानुग्रह कारक होते हैं ।।२०।।

यः शिवः स गुरुर्ज्ञेयो यो गुरुः स शिवः स्मृतः।
न तयोरन्तरं कुर्याद् ज्ञानावाप्तौ महामतिः।।२१।।

भावार्थ : जो शिव है उन्हीं को गुरु समझना चाहिये। जो गुरु है वही शिव कहे गये हैं अर्थात् गुरु शिवसायुज्यरूप मोक्ष के कारण भूत ज्ञान का दाता होने से शिव से अभिन्न है। ज्ञानलाभ के सन्दर्भ में विद्वान् उन दोनों में अन्तर न करे ।।२१।।

हस्तपादादिसाम्येन नेतरैः सदृशं वदेत्।
आचार्यं ज्ञानदं शुद्धं शिवरूपतया स्थितम्।।२२।।

भावार्थ : ज्ञान देने वाले, शुद्ध तथा शिवरूप में स्थित आचार्य को हाथ पैर आदि की समानता के कारण अन्य सामान्य लोगों के सदृश नहीं कहना चाहिये ।।२२।।

आचार्यस्यावमानेन श्रेयःप्राप्तिर्विहन्यते।
तस्मान्निःश्रेयसप्राप्त्यै पूजयेत् तं समाहितः।।२३।।

भावार्थ : आचार्य का अपमान करने से मोक्ष लाभ में विघ्न पड़ता है। इसलिये निःश्रेयस की प्राप्ति के लिये समाहित चित्त होकर उनकी पूजा करनी चाहिये ।।२३।।

गुरुभक्तिविहीनस्य शिवभक्तिर्न जायते।
ततः शिवे यथा भक्तिस्तथा भक्तिर्गुरावपि।।२४।।

भावार्थ : जो व्यक्ति गुरुभक्ति से रहित है उसके अन्दर शिवभक्ति नहीं उत्पन्न होती। इसलिये जैसी शिव में वैसी ही भक्ति गुरु में भी करनी चाहिये ।।२४।।

लिङ्गमाहात्म्यस्थल - (२७)

गुरुमाहात्म्ययोगेन निजज्ञानातिरेकतः।
लिङ्गस्यापि च माहात्म्यं सर्वोत्कृष्टं विभाव्यते।।२५।।

भावार्थ : (लिङ्गमाहात्म्यस्थल वर्णन)— गुरु की महिमा और अपने ज्ञान की अधिकता से लिङ्ग का भी माहात्म्य सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है ॥२५॥

शिवस्य बोधलिङ्गं यद् गुरुबोधितचेतसा।
तदेव लिङ्गं विज्ञेयं शाङ्करं सर्वकारणम्।।२६।।

भावार्थ : जो शिव का बोधलिङ्ग है गुरु के द्वारा प्रबोधित चित्त वाले मनुष्य को चाहिये कि वह उसी बोधलिङ्ग को सर्वकारणशाङ्कर लिङ्ग समझे ॥२६॥

परं पवित्रममलं लिङ्गं ब्रह्म सनातनम्।
शिवाभिधानं चिन्मात्रं सदानन्दं निरङ्कुशम्।।२७।।

कारणं सर्वलोकानां वेदानामपि कारणम्।
पूरणं सर्वतत्त्वस्य तारणं जन्मवारिधेः।।२८।।

ज्योतिर्मयमनिर्देश्यं योगिनामात्मनि स्थितम्।
कथं विज्ञायते लोके महागुरुदयां विना।।२९।।

भावार्थ : शिव नामक लिङ्ग परम पवित्र, निर्मल, सनातन, ब्रह्म, चिन्मात्र, सदानन्द, निरङ्कुश, समस्त लोकों का कारण, वेदों का भी कारण, सम्पूर्ण तत्त्वों का पूरक, जन्मरूपी समुद्र के पार ले जाने वाला, ज्योतिर्मय, अनिर्देश्य, योगियों के हृदय में रहने वाला है। ऐसा लिङ्ग महागुरु की महाकृपा के बिना इस संसार में कैसे जाना जा सकता है? ॥२७-२९॥

ब्रह्मणा विष्णुना पूर्वं यल्लिङ्गं ज्योतिरात्मकम्।
अपरिच्छेद्यमभवत् केन वा परिचोद्यते।।३०।।

भावार्थ : जिस ज्योतिस्वरूप लिङ्ग का प्राचीन काल में ब्रह्मा और विष्णु ने पार नहीं पाया उसको कौन जान सकता है? ॥३०॥

बहुनात्र किमुक्तेन लिङ्गं ब्रह्म सनातनम्।
योगिनो यत्र लीयन्ते मुक्तपाशनिबन्धनाः।।३१।।

भावार्थ : अधिक कहने से क्या लाभ? यह लिङ्ग रूपी ब्रह्म सनातन है। योगी लोग पाशबन्ध से मुक्त होकर उसमें लीन हो जाते हैं ॥३१॥

पीठिका परमा शक्तिर्लिङ्गं साक्षात्परः शिवः।
शिवशक्तिसमायोगं विश्वं लिङ्गं तदुच्यते।।३२।।

भावार्थ : पीठिका (=अर्घा) परमा शक्ति है। लिङ्ग साक्षात् परमशिव है। शिव और शक्ति का जो समायोग है वह विश्व लिङ्ग कहा जाता है ॥३२॥

ब्रह्मादयः सुराः सर्वे मुनयः शौनकादयः।
शिवलिङ्गार्चनादेव स्वं स्वं पदमवाप्नुयुः।।३३।।

भावार्थ : ब्रह्मा आदि देवता शौनक आदि ऋषिगण ये सब शिवलिङ्ग की पूजा से ही अपने-अपने पद को प्राप्त हुए ॥३३॥

विश्वाधिपत्वमीशस्य लिङ्गमूर्तेः स्वभावजम्।
अनन्यदेवसादृश्यं श्रुतिराह सनातनी।।३४।।

भावार्थ : लिङ्गस्वरूप ईश्वर का विश्वाधिप होना स्वभावसिद्ध है। इसके समान विश्वाधिपत्व किसी अन्य देव में नहीं मिलता ऐसा सनातनी श्रुति अर्थात् वेद कहती है ॥३४॥

जङ्गममाहात्म्यस्थल - (२८)

गुरुशिष्यसमारूढलिङ्गमाहात्म्यसम्पदः ।
सर्वं चिद्रूपविज्ञानाज्जङ्गमाधिक्यमुच्यते।।३५।।

भावार्थ : (जङ्गममाहात्म्यस्थल वर्णन)— गुरु और शिष्य के बीच उत्पन्न लिङ्गमाहात्म्य की सम्पत्ति की अपेक्षा चिद्रूप विज्ञान के कारण जङ्गमलिङ्ग का माहात्म्य अधिक माना गया है ॥३५॥

जानन्त्यतिशयाद् ये तु शिवं विश्वप्रकाशकम्।
स्वस्वरूपतया ते तु जङ्गमा इति कीर्तिताः।।३६।।

भावार्थ : जो लोग विश्व के प्रकाशक शिव को अतिशय के कारण आत्मरूप से जानते हैं वे जङ्गम कहे गये हैं ॥३६॥

ये पश्यन्ति जगज्जालं चिद्रूपं शिवयोगतः।
निर्धूतमलसंस्पर्शास्ते स्मृताः शिवयोगिनः।।३७।।

भावार्थ : जो अपने शिवयोगसामर्थ्य से जगज्जाल को चिद्रूप जानते हैं नष्टमलस्पर्श वाले वे शिवयोगी कहे गये हैं ॥३७॥

घोरसंसारतिमिरपरिध्वंसनकारणम् ।
येषामस्ति शिवज्ञानं ते मताः शिवयोगिनः।।३८।।

भावार्थ : जिनके पास घोर संसाररूपी अन्धकार का नाशक शिव ज्ञान है वे शिवयोगी माने गये हैं ॥३८॥

जितकामा जितक्रोधा मोहग्रन्थिविभेदिनः।
समलोष्टाश्मकनकाः साधवः शिवयोगिनः।।३९।।

समौ शत्रौ च मित्रे च साक्षात्कृतशिवात्मकाः।
निस्पृहा निरहंङ्कारा वर्तन्ते शिवयोगिनः।।४०।।

भावार्थ : काम और क्रोध को जीतने वाले, मोह रूपी ग्रन्थि को तोड़ने वाले, मिट्टी के ढेले पत्थर और स्वर्ण में समान दृष्टि रखने वाले साधु शिवयोगी होते हैं। शत्रु और मित्र में सम, शिव का साक्षात्कार करने वाले जो निस्पृह और निरहङ्कार होकर व्यवहार करते हैं वे शिवयोगी हैं ॥३९-४०॥

दुर्लभं हि शिवज्ञानं दुर्लभं शिवचिन्तनम्।
येषामेतद्द्वयं चास्ति ते हि साक्षाच्छिवात्मकाः।।४१।।

भावार्थ : शिव का ज्ञान दुर्लभ है। शिव का ध्यान दुर्लभ है। जिनके पास ये दोनों है वे साक्षात् शिवस्वरूप हैं ॥४१॥

पादाग्ररेणवो यत्र पतन्ति शिवयोगिनाम्।
तदेव सदनं पुण्यं पावनं गृहमेधिनाम्।।४२।।

सर्वसिद्धिकरं पुंसां दर्शनं शिवयोगिनाम्।
स्पर्शनं पापशमनं पूजनं मुक्तिसाधनम्।।४३।।

भावार्थ : शिवयोगियों के पैर के अग्रभाग की धूल जहाँ गिरती है गृहस्थों का वह घर पुण्यप्रद और पवित्र हो जाता है। शिवयोगियों का दर्शन पुरुषों के लिये सर्वसिद्धिकर है। उनका स्पर्श पाप का शमन करने वाला और पूजन मुक्ति को देने वाला होता है ॥४२-४३॥

महतां शिवतात्पर्यवेदिनामनुमोदिनाम्।
किं वा फलं न सिद्ध्येत सम्पर्काच्छिवयोगिनाम्।।४४।।

भावार्थ : शिवतात्पर्य को जानने वाले शिवस्वरूप सुख में रमण करने वाले महान शिवयोगियों के सम्पर्क से क्या-क्या फल नहीं मिलता? (अर्थात् सम्पूर्ण कामना की सिद्धि होती है) ॥४४॥

भक्तमाहात्म्यस्थल - (२९)

गुरोर्लिङ्गस्य माहात्म्यकथनाच्छिवयोगिनाम्।
सिद्धं भक्तस्य माहात्म्यं तथाप्येष प्रशस्यते।।४५।।

भावार्थ : (भक्तमाहात्म्यस्थल वर्णन)— यद्यपि गुरु लिङ्ग और शिवयोगियों की महिमा का वर्णन करने से भक्त का माहात्म्य सिद्ध हो जाता है तो भी इस भक्त की प्रशंसा अग्रिम श्लोकों में की जाती है ॥४५॥

ये भजन्ति महादेवं परमात्मानमव्ययम्।
कर्मणा मनसा वाचा ते भक्ता इति कीर्तिताः।।४६।।

भावार्थ : (भक्त का लक्षण)— जो लोग अव्यय परमात्मा महादेव का मन वाणी और कर्म से भजन अर्थात् सेवा करते हैं वे भक्त कहे गये हैं ।।४६।।

दुर्लभा हि शिवे भक्तिः संसारभयतारिणी।
सा यत्र वर्तते साक्षात् स भक्तः परिगीयते।।४७।।

भावार्थ : संसारूपी भय से पार ले जाने वाली शिवभक्ति दुर्लभ है। वह जिसके अन्दर है वह साक्षात् भक्त कहा जाता है ।।४७।।

किं वेदैः किं ततः शास्त्रैः किं यज्ञैः किं तपोव्रतैः।
नास्ति चेच्छाङ्करी भक्तिर्देहिनां जन्मरोगिणाम्।।४८।।

भावार्थ : जन्मरूपी रोग से ग्रस्त देहधारी मनुष्यों के अन्दर यदि शिवभक्ति नहीं है तो (उनके द्वारा अधीत) वेद शास्त्र (तथा उनके द्वारा किये गये) यज्ञ तपस्या और व्रत से क्या लाभ? अर्थात् शिवभक्ति के विना सब व्यर्थ है ।।४८।।

शिवभक्तिविहीनस्य सुकृतं चापि निष्फलम्।
विपरीतफलं च स्याद् दक्षस्यापि महाध्वरे।।४९।।

भावार्थ : जो शिव भक्ति से रहित है उसका पुण्य भी निष्फल होता है। दक्ष (सदृश प्रतापी) के भी महायज्ञ में (शिवभक्तिविहीन होने का) विपरीत फल[१] मिला ।।४९।।

अत्यन्तपापकर्मापि शिवभक्त्या विशुद्ध्यति।
चण्डो यथा पुरा भक्त्या पितृहाऽपि शिवोऽभवत्।।५०।।

भावार्थ : अत्यन्त पाप करने वाला भी शिवभक्ति के द्वारा शुद्ध हो जाता है। जैसे कि प्राचीन काल में पितृघाती चण्ड भी शिवभक्ति के द्वारा शिवस्वरूप हो गया ।।५०।।

---

१. प्रजापति दक्ष शिव जी की पूर्व पत्नी सती के पिता थे। एक बार दक्ष ने यज्ञ का आरम्भ किया। चूँकि दक्ष को अपने प्रजापति होने का अभिमान था और शिव जी उनको कभी प्रणाम नहीं किये अतः दक्ष उनसे अप्रसन्न रहा करते थे। एक बार दक्ष ने यज्ञ किया अनामन्त्रित होने पर भी सती वहाँ गयी और यज्ञ में शिव का आसन न देखकर तथा उनकी प्रतिमा को द्वारपाल की जगह रखी हुई देखकर सती ने योगाग्नि से स्वदेहत्याग कर दिया। फलतः शिव की आज्ञा से वीरभद्र आदि ने दक्ष का यज्ञ विध्वंस कर दिया और दक्ष का शिर काट कर हवनकुण्ड में डाल दिया।

सुकृतं दुष्कृतं वापि शिवभक्तस्य नास्ति हि।
शिवभक्तिविहीनानां कर्मपाशनिबन्धनम्।।५१।।

भावार्थ : शिव भक्त के लिये न पुण्य है न पाप। कर्मपाश का बन्धन केवल शिवभक्ति से रहित (जीवों) के लिये है ॥५१॥

शिवाश्रितानां जन्तूनां कर्मणा नास्ति सङ्गमः।
वाजिनां दिननाथस्य कथं तिमिरजं भयम्।।५२।।

भावार्थ : शिव के ऊपर निर्भर जीवों को कर्म का फल नहीं मिलता। सूर्य के घोड़ों को अन्धकार का भय कैसे हो सकता है? ॥५२॥

निरोद्धुं न क्षमं कर्म शिवभक्तान् विशृङ्खलान्।
कथं मत्तगजान् रुन्धेच्छृङ्खला बिसतन्तुजा।।५३।।

भावार्थ : विशृङ्खल अर्थात् बन्धन से रहित शिवभक्तों को कर्म नहीं रोक सकते। मतवाले हाथी को बिसतन्तु (=कमलनाल को तोड़ने पर निकलने वाला तन्तु) की शृङ्खला कैसे बाँध सकती है? ॥५३॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यो वा शूद्र एव वा।
अन्त्यजो वा शिवे भक्तः शिववन्मान्य एव सः।।५४।।

भावार्थ : ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा अन्त्यज भी यदि शिव के प्रति भक्ति रखता है तो वह शिव के ही समान मान्य है ॥५४॥

शिवभक्तिसमावेशे क्व जातिपरिकल्पना।
इन्धनेष्वग्निदग्धेषु को वा भेदः प्रकीर्त्यते।।५५।।

भावार्थ : शिव भक्ति का समावेश हो जाने पर जाति की परिकल्पना कहाँ सम्भव हो सकती है। इन्धनों के आग में जल जाने पर इन्धन में अथवा इन्धन के नानाविध होने से कौन सा भेद कहा जा सकता है? ॥५५॥

शुद्धा नियमसंयुक्ताः शिवार्पितफलागमाः।
अर्चयन्ति शिवं लोके विज्ञेयास्ते गणेश्वराः।।५६।।

भावार्थ : (दीक्षा आदि से) परिशुद्ध, नियम से बँधे हुए, अपनी अर्चना का फल शिव को अर्पित करने वाले जो लोग इस संसार में शिव का अर्चन पूजन करते हैं वे गणेश्वर होते हैं ॥५६॥

शरणमाहात्म्यस्थल - (३०)

गुरुलिङ्गादिमाहात्म्यबोधान्वेषणसङ्गतः।
सर्वात्मना शिवापत्तिः शरणस्थानमुच्यते।।५७।।

भावार्थ : (शरणमाहात्म्यस्थल वर्णन)— गुरु लिङ्ग आदि के माहात्म्य के ज्ञान के अन्वेषण के साथ सब प्रकार से शिव की शरण में जाना शरणस्थल कहा जाता है ।।५७।।

ब्रह्मादिविबुधान् सर्वान् मुक्त्वा प्राकृतवैभवान्।
प्रपद्यते शिवं यत्तु शरणं तदुदाहृतम्।।५८।।

भावार्थ : प्रकृति के वैभव से युक्त ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं को छोड़कर जो शिव की शरण में जाता है उसे शरण कहा गया है ।।५८।।

शरण्यः सर्वभूतानां शङ्करः शशिशेखरः।
सर्वात्मना प्रपन्नस्तं शरणागत उच्यते।।५९।।

भावार्थ : जिसके शिर पर चन्द्रमा है ऐसे शङ्कर समस्त प्राणियों के शरण दाता है। जो सर्वात्मना उनकी शरण में जाता है उसे शरणागत कहते हैं ।।५९।।

विमुक्तभोगलालस्यो देवतान्तरनिस्पृहः।
शिवमभ्यर्थयन् मोक्षं शरणार्थीति गीयते।।६०।।

भावार्थ : जिसकी भोगलालसा खत्म हो गयी है और अन्य देवताओं के विषय में जो निःस्पृह है ऐसा व्यक्ति यदि शिव से मोक्ष की अभ्यर्थना अर्थात् याचना करता है तो वह शरणार्थी कहा जाता है ।।६०।।

ये प्रपन्ना महादेवं मनोवाक्कायकर्मभिः।
तेषां तु कर्मजातेन किं वा देवादितर्पणैः।।६१।।

भावार्थ : जो लोग मन वाणी और कर्म से महादेव की शरण में गये हैं उनको याग आदि कर्मसमूह और देवता आदि के तर्पणों से क्या लेना देना? (अर्थात् उनको कर्म आदि करने की आवश्यकता नहीं है) ।।६१।।

सर्वेषामपि यज्ञानां क्षयः स्वर्गः फलायते।
अक्षयं फलमाप्नोति प्रपन्नः परमेश्वरम्।।६२।।

भावार्थ : सम्पूर्ण यज्ञों का फल स्वर्ग क्षयशील है किन्तु जो भक्त परमेश्वर की शरण में आ गया वह अक्षय फल अर्थात् शिवसायुज्य प्राप्त करता है ।।६२।।

प्रपन्नपारिजातस्य भवस्य परमात्मनः।
प्रपत्त्या किं न जायेत पापिनामपि देहिनाम्।।६३।।

भावार्थ : परमात्मा शिव प्रपन्न के लिये कल्पवृक्ष के समान हैं। ऐसे शिव के प्रति प्रपत्ति से पापी जीवों को क्या नहीं मिलता? अर्थात् सब कुछ प्राप्त हो जाता है ।।६३।।

प्रपन्नानां महादेवं परिपक्वान्तरात्मनाम्।
जन्मैव जन्म नान्येषां वृथा जननसङ्गिनाम्।।६४।।

भावार्थ : महादेव की शरण में गये हुए तथा परिशुद्ध हृदय वालों का ही जन्म जन्म है (अर्थात् सफल है)। जन्म लेने वाले अन्य लोगों का जन्म लेना व्यर्थ है ।।६४।।

दुर्लभं मानुषं प्राप्य जननं ज्ञानसाधनम्।
ये न जानन्ति देवेशं तेषामात्मा निरर्थकः।।६५।।

भावार्थ : ज्ञान के साधनभूत दूर्लभ मनुष्यजन्म को प्राप्त कर भी जो देवेश अर्थात् परमात्मा शिव को नहीं जानते उनका जीवन व्यर्थ है ।।६५।।

तत्कुलं हि सदा शुद्धं सफलं तस्य जीवितम्।
यस्य चित्तं शिवे साक्षाद् विलीनमबहिर्मुखम्।।६६।।

भावार्थ : जिस व्यक्ति का अबहिर्मुख मन साक्षात् शिव में विलीन हो गया उसका कुल सदा शुद्ध हो गया और उसका जीवन सफल हो गया ।।६६।।

प्रसादमहात्म्यस्थल - (३१)

गुरुलिङ्गादिमाहात्म्यविशेषानुभवस्थितिः ।
यस्माच्छिवप्रसादात् स्यात्तदस्य महिमोच्यते।।६७।।

भावार्थ : **(प्रसादमाहात्म्यस्थल वर्णन)**— जिस शिवप्रसाद के कारण गुरु लिङ्ग आदि के माहात्म्य विशेष का अनुभव होता है वही इस (शिवप्रसाद) की महिमा है ।।६७।।

सदा लिङ्गैकनिष्ठानां गुरुपूजानुषङ्गिणाम्।
प्रपन्नानां विशुद्धानां प्रसीदति महेश्वरः।।६८।।

भावार्थ : जो सदा लिङ्गार्चन में लगे हुए, गुरुपूजा मे तत्पर, प्रपन्न तथा विशुद्ध है उनके ऊपर परमेश्वर प्रसन्न हो जाते हैं ।।६८।।

प्रसादोऽपि महेशस्य दुर्लभः परिकीर्त्यते।
घोरसंसारसन्तापनिवृत्तिर्येन जायते।।६९।।

भावार्थ : जिसके द्वारा घोर संसारसन्ताप की निवृत्ति हो जाती है ऐसी महेश्वर की प्रसन्नता अथवा कृपा भी दुर्लभ कही गयी है ॥६९॥

यज्ञास्तपांसि मन्त्राणां जपश्चिन्ता प्रबोधनम्।
प्रसादार्थं महेशस्य कीर्तितानि न संशयः॥७०॥

भावार्थ : यज्ञ, तप, मन्त्रों का जप, ध्यान, ज्ञान ये सब (साधन के रूप में महेश्वर की प्रसन्नता के लिये कहे गये हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥७०॥

प्रसादमूला सर्वेषां भक्तिरव्यभिचारिणी।
शिवप्रसादहीनस्य भक्तिश्चापि न सिद्ध्यति॥७१॥

भावार्थ : सब लोगों की (शिव के) प्रसाद से उत्पन्न भक्ति अव्यभिचारिणी (अर्थात् एक निष्ठ) है। शिवप्रसाद से रहित व्यक्ति को भक्ति भी नहीं मिलती ॥७१॥

गर्भस्थो जायमानो वा जातो वा ब्राह्मणोऽथवा।
अन्त्यजो वापि मुच्येत प्रसादे सति शाङ्करे॥७२॥

भावार्थ : इस कारण शिव की प्रसन्नता होने पर गर्भस्थ, उत्पन्न होता हुआ तथा उत्पन्न, ब्राह्मण अथवा चाण्डाल कोई भी हो मुक्त हो जाता है ॥७२॥

ब्रह्माद्या विबुधाः सर्वे स्वस्वस्थाननिवासिनः।
नित्यसिद्धा भवन्त्येव प्रसादात् पारमेश्वरात्॥७३॥

भावार्थ : ब्रह्मा आदि समस्त देवगण परमेश्वर के प्रसाद से ही अपने-अपने पदों पर रहते हुए नित्य सिद्ध है ॥७३॥

प्रसादे शाम्भवे सिद्धे परमानन्दकारणे।
सर्वं शिवमयं विश्वं दृश्यते नात्र संशयः॥७४॥

भावार्थ : परम आनन्द के हेतुभूत शाम्भव प्रसाद के सिद्ध (अर्थात् प्राप्त) होने पर सम्पूर्ण संसार शिवमय दिखायी देता है, इसमें सन्देह नहीं ॥७४॥

संसारचक्रनिर्वाहनिमित्तं कर्म केवलम्।
प्रसादेन विना शम्भोर्न कस्यापि निवर्तते॥७५॥

भावार्थ : कर्म केवल संसारचक्र के परिभ्रमंण का कारण है। बिना शिव के प्रसाद के किसी का भी यह कर्म नष्ट नहीं होता ॥७५॥

बहुनात्र किमुक्तेन नास्ति नास्ति जगत्त्रये।
समानमधिकं चापि प्रसादस्य महेशितुः॥७६॥

भावार्थ : इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ? महेश्वर के प्रसाद से अधिक या इसके समान तीनों लोकों में कुछ भी नहीं है ।।७६।।

शिवप्रसादे सति योगभाजि
सर्वं शिवैकात्मतया विभाति।
स्वकर्ममुक्तः शिवभावितात्मा
स प्राणलिङ्गीति निगद्यतेऽसौ।।७७।।

भावार्थ : शिवप्रसाद से युक्त होने पर सब कुछ शिवमय प्रतीत होता है। जो मनुष्य शिव-भावनामय है वह अपने कर्म से मुक्त होकर प्राणलिङ्गी कहा जाता है ।।७७।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ प्रसादिस्थले प्रसादिस्थलादिसप्तविधस्थलप्रसङ्गो नाम एकादशः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के प्रसादी के सप्तविध स्थल नामक एकादश परिच्छेद की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।११।।



द्वादश: परिच्छेद:

अंगस्थलांतर्गत

प्राणलिङ्गीस्थल

प्राणलिङ्गीस्थल - (३२)

अगस्त्य उवाच —

भक्तो माहेश्वरश्चेति प्रसादीति निबोधित:।
एक एव कथं चैव प्राणलिङ्गीति कथ्यते।।१।।

भावार्थ : (प्राणलिङ्गीस्थल वर्णन)— अगस्त्य ने कहा— एक ही व्यक्ति भक्त माहेश्वर और प्रसादी होता है यह (आपने मुझे) बतलाया। वही प्रसादी 'प्राणलिङ्गी' कैसे कहा जाता है ।।१।।

श्रीरेणुक उवाच —

भक्तो माहेश्वरश्चैष प्रसादीति च कीर्तित:।
कर्मप्राधान्ययोगेन ज्ञानयोगोऽस्य कथ्यते।।२।।

भावार्थ : श्री रेणकाचार्य ने कहा— (एक ही मनुष्य) जो भक्त माहेश्वर और प्रसादी कहा जाता है वह कर्मप्राधान्य के कारण। (अब) इस (प्रसादी) का ज्ञानयोग कहा जा रहा है अर्थात् ज्ञानयोग के कारण ही प्रसादी प्राणलिङ्गी कहा जाता है ।।२।।

लिङ्गं चिदात्मकं ब्रह्म तच्छक्ति: प्राणरूपिणी।
तद्रूपलिङ्गविज्ञानी प्राणलिङ्गीति कथ्यते।।३।।

भावार्थ : चित्स्वरूप ब्रह्म लिङ्ग है। उसकी शक्ति प्राण है। इस रूप वाले लिङ्ग के विशेष रूप से जानने वाला प्राणलिङ्गी कहा जाता है ।।३।।

प्राणलिङ्गिस्थलं चैतत् पञ्चस्थलसमन्वितम्।
प्राणलिङ्गिस्थलं चादौ प्राणलिङ्गार्चनं तत:।।४।।

शिवयोगसमाधिश्च ततो लिङ्गनिजस्थलम्।
अङ्गलिङ्गिस्थलं चाथ क्रमादेषां भिदोच्यते।।५।।

भावार्थ : यह प्राणलिङ्गी स्थल पाँच स्थलों से युक्त है। पहले प्राणलिङ्गी स्थल उसके बाद प्राणलिङ्गार्चन फिर शिवयोगसमाधि तत्पश्चात् निजलिङ्ग स्थल और अन्त में अङ्गलिङ्ग स्थल है। अब क्रमशः इनका भेद बतलाया जा रहा है ॥४-५॥

प्राणापानसमाघातात्　कन्दमध्याद्यदुत्थितम्।
प्राणलिङ्गं तदाख्यातं प्राणापाननिरोधिभिः॥६॥

भावार्थ : प्राण और अपान के परस्पर आघात से कन्द के मध्य से जो (ज्योती) उठती है। प्राण एवं अपान का निरोध करने वाले योगी लोग उसे प्राणलिङ्ग कहते हैं ॥६॥

प्राणो यत्र लयं याति भास्करे तुहिनं यथा।
तत्प्राणलिङ्गमुद्दिष्टं तद्धारी स्यात् तदाकृतिः॥७॥

भावार्थ : जिस प्रकार तुहिन अर्थात् पाला सूर्य में लीन हो जाता है उस प्रकार जिसके प्राण परब्रह्म मयशिवलिङ्ग में लीन हो जाता है वह प्राणलिङ्ग कहा गया है। उसका धारण करने वाला तद्रूप अर्थात् प्राणलिङ्गी हो जाता है ॥७॥

ज्ञानिनां योगयुक्तानामन्तः स्फुरति दीपवत्।
चिदाकारं　परब्रह्मलिङ्गमज्ञैर्न　भाव्यते॥८॥

भावार्थ : चिदाकार परब्रह्म ज्ञानियों और शिवयोगियों (अथवा शिव योग समन्वित ज्ञानियों) के अन्दर दीपक की भाँति चमकता रहता है। अज्ञानी जन उसको नहीं जान पाते ॥८॥

अन्तःस्थितं परं लिङ्गं ज्योतीरूपं शिवात्मकम्।
विहाय बाह्यलिङ्गस्था विमूढा इति कीर्तिताः॥९॥

भावार्थ : शिवात्मक ज्योतिरूप तथा अपने अन्दर स्थित उत्कृष्ट लिङ्ग को छोड़कर बाह्य लिङ्ग में आस्था रखने वाले मूर्ख कहे जाते हैं ॥९॥

संविल्लिङ्गपरामर्शी बाह्यवस्तुपराङ्मुखः।
यः सदा वर्तते योगी प्राणलिङ्गी स उच्यते॥१०॥

भावार्थ : जो संवित्रूपी लिङ्ग का बार-बार ध्यान करता है तथा बाह्य वस्तु से पराङ्मुख होकर व्यवहार करता है वह योगी प्राणलिङ्गी कहा जाता है ॥१०॥

मायाविकल्पजं विश्वं हेयं सञ्चिन्त्य नित्यशः।
चिदानन्दमये लिङ्गे विलीनः प्राणलिङ्गवान्॥११॥

भावार्थ : प्रतिदिन विश्व को मायाविकल्पों से उत्पन्न समझता हुआ चिदानन्दमय लिङ्ग में सदा लीन रहने वाला प्राणलिङ्गी होता है ॥११॥

सत्ता प्राणमयी शक्तिः सद्रूपं प्राणलिङ्गकम्।
तत्सामरस्यविज्ञानात् प्राणलिङ्गीति कथ्यते।।१२।।

भावार्थ : ('मैं हूँ' इस प्रकार का अनुभव करने वाली) सत्ता ही प्राणमयी शक्ति है। प्राणलिङ्ग (=शिव) भी सद्रूप है (इस प्रकार सत्तारूपी शक्ति और प्राणरूपी शिव) इन दोनों के सामरस्य का विज्ञानी प्राणलिङ्गी कहा जाता है ॥१२॥

प्राणलिङ्गार्चनस्थल - (३३)

अन्तर्गतं चिदाकारं लिङ्गं शिवमयं परम्।
पूज्यते भावपुष्पैर्यत् प्राणलिङ्गार्चनं हि तत्।।१३।।

भावार्थ : **(प्राणलिङ्गार्चनस्थल वर्णन)**— (हृदयकमल के) अन्दर जो चित्स्वरूप शिवमय उत्तम लिङ्ग है उसकी जो भावनात्मक पुष्पों से पूजा की जाती है वह प्राणलिङ्गार्चन है ॥१३॥

अन्तः पवनसंस्पृष्टे सुसूक्ष्माम्बरशोभिते।
मूर्धन्यचंद्रविगलत्सुधासेकातिशीतले ।।१४।।

बद्धेन्द्रियनवद्वारे बोधदीपे हृदालये।
पद्मपीठे समासीनं चिल्लिङ्गं शिवविग्रहम्।।
भावयित्वा सदाकालं पूजयेद् भाववस्तुभिः।।१५।।

भावार्थ : अन्तःपवन (अर्थात् प्राणवायु) से संस्पृष्ट सूक्ष्म आकाश से सुशोभित सहस्रार में स्थित चन्द्रमा से द्रवित होने वाले अमृत के सिञ्चन से शीतल, बद्ध नव इन्द्रिय रूपी द्वार वाले, बोधदीप से युक्त हृदय के अन्दर कमल पर विराजमान चित्स्वरूप शिव की भावना कर सब समय उनकी भाव वस्तुओं[१] से पूजा करनी चाहिये ॥१४-१५॥

---

१. तुलनीय—
रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं
नानारत्नविभूषितं मृगमदामोदाङ्कितं चन्दनम्।
जाती चम्पकबिल्वपत्ररचितं पुष्पं च धूपं तथा
दीपं देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम्॥
शि०मा०पू०

क्षमाऽभिषेकसलिलं विवेको वस्त्रमुच्यते।
सत्यमाभरणं प्रोक्तं वैराग्यं पुष्पमालिका।।१६।।

गन्धः समाधिसम्पत्तिरक्षता निरहङ्कृतिः।
श्रद्धा धूपो महाज्ञानं जगद्भासि प्रदीपिका।।१७।।

भ्रान्तिमूलप्रपञ्चस्य निवेद्यं तन्निवेदनम्।
मौनं घण्टापरिस्पन्दस्ताम्बूलं विषयार्पणम्।।१८।।

विषयभ्रान्तिराहित्यं तत्प्रदक्षिणकल्पना।
बुद्धेस्तदात्मिका शक्तिर्नमस्कारक्रिया मता।।१९।।

एवंविधैर्भावशुद्धैरुपचारैरदूषितैः ।
प्रत्युन्मुखमना भूत्वा पूजयेल्लिङ्गमान्तरम्।।२०।।

भावार्थ : (इस पूजा में) क्षमा अभिषेक जल, विवेक वस्त्र, सत्य अलङ्कार, वैराग्य पुष्पमाला, समाधि गन्ध, निरहङ्कार अक्षत, श्रद्धा धूप, महाज्ञान जगद्भासक दीप, मूलप्रपञ्च का भ्रम नैवेद्य, मौन घण्टा का बजना, कामक्रोध आदि विषयों का समर्पण ताम्बूल, विषय भ्रम का दूर हो जाना प्रदक्षिणा, बुद्धिवृत्ति का लिङ्ग में लय होना नमस्कार कहा गया है। इस प्रकार के दोषरहित भावशुद्ध पूजासाधनों के द्वारा अन्तर्मुखी होकर आन्तर (अर्थात् हृदय में वर्त्तमान चित्स्वरूप) शिवलिङ्ग की पूजा करनी चाहिये ।।१६-२०।।

शिवयोगसमाधिस्थल - (३४)

अन्तःक्रियारतस्यास्य प्राणलिङ्गार्चनक्रमैः।
शिवात्मध्यानसम्पत्तिः समाधिरिति कथ्यते।।२१।।

भावार्थ : **(शिवयोग समाधिस्थल वर्णन)**— प्राणलिङ्गार्चन के क्रम से आभ्यन्तर पूजा में निरत इस (प्राणलिङ्गी) को जो शिवध्यान की सम्पत्ति की प्राप्ति होती है वह समाधि कही जाती है ।।२१।।

सर्वतत्त्वोपरि गतं सच्चिदानन्दभासुरम्।
स्वप्रकाशमनिर्देश्यमवाङ्मानसगोचरम्।।२२।।

उमाख्यया महाशक्त्या दीपितं चित्स्वरूपया।
हंसरूपं परात्मानं सोऽहंभावेन भावयेत्।।
तदेकताननतासिद्धिः समाधिः परमो मतः।।२३।।

भावार्थ : (पृथिवी आदि) समस्त छत्तीस तत्त्वों से परे, सत् चित् आनन्द के रूप में देदीप्यमान, स्वप्रकाश, अनिर्देश्य, वाणी और मन की सीमा से परे, चित्स्वरूप उमा नाक महाशक्ति से दीपित हंसरूप परमात्मा की सोऽहं भाव (अर्थात् मैं वह हूँ, वह मैं है इस प्रकार के भाव) से भावना करनी चाहिये। ऐसी भावना का एकतान होना (अर्थात् बीच में किसी अन्य विचार का न आना) परम समाधि कही गयी है ॥२२-२३॥

परब्रह्म महालिङ्गं प्राणो जीवः प्रकीर्तितः।
तदेकभावमननात् समाधिस्थः प्रकीर्तितः॥२४॥

भावार्थ : महालिङ्ग को परमब्रह्म और प्राण को जीव कहा गया है। उन दोनों को एक और अभिन्न समझने वाला समाधिस्थ कहा गया है ॥२४॥

अन्तः षट्चक्ररूढानि पङ्कजानि विभावयेत्।
ब्रह्मादिस्थानभूतानि भ्रूमध्यान्तानि मूलतः॥२५॥

भ्रूमध्यादूर्ध्वभागे तु सहस्रदलमम्बुजम्।
भावयेत्तत्र विमलं चन्द्रबिम्बं तदन्तरे॥२६॥

सूक्ष्मरंध्रं विजानीयात् तत्कैलासपदं विदुः।
तत्रस्थं भावयेच्छम्भुं सर्वकारणकारणम्॥२७॥

भावार्थ : (साधक अपने) अन्दर छह चक्रों[१] पर स्थित छह कमलों की भावना करे। ये मूलाधार से लेकर भ्रूमध्य तक स्थित है तथा ब्रह्मा आदि के स्थान है।[२] भ्रूमध्य के ऊपरी भाग में सहस्रदल कमल की भावना करे। उसके भीतर चन्द्रबिम्ब का ध्यान करे। उस चन्द्र के अन्दर सूक्ष्म छिद्र की भावना करे। इस सूक्ष्मरन्ध्र को कैलास कहा गया है। उस पर समस्त कारणों के कारण शिव बैठे हैं— ऐसी भावना करनी चाहिये ॥२५-२७॥

बहिर्वासनया विश्वं विकल्पार्थं प्रकाशते।
अन्तर्वासितचित्तानामात्मानन्दः प्रकाशते॥२८॥

भावार्थ : बहिर्वासना के कारण विकल्पात्मक विषयों वाला विश्व प्रकाशित होता है। जिनके चित्त अन्तर्मुखी हैं उनको आत्मानन्द का साक्षात्कार होता है ॥२८॥

---

१. मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, शाकिनी और आज्ञा ये छह चक्र हैं।
२. ब्रह्मा आदि का स्थान इस प्रकार है— १. मूलाधार—ब्रह्मा, २. स्वाधिष्ठान—विष्णु, ३. मणिपूर—रुद्र, ४. अनाहत—ईश्वर, ५. शाकिनी—सदाशिव, ६. आज्ञा—शिव + शक्ति। सहस्रार में शिव और शक्ति का यामलरूप विद्यमान है।

आत्मारणिसमुत्थेन　प्रमोदमथनात्सुधीः।
ज्ञानाग्निना दहेत्सर्वं पाशजालं जगन्मयम्।।२९।।

भावार्थ : विद्वान् को चाहिये कि वह प्रमोदरूपी (अर्थात् शिवानन्दरूपी) विचारमन्थन के द्वारा आत्मारूपी[१] अरणि से उत्पन्न ज्ञानरूपी अग्नि के द्वारा जगत्‌रूप समस्त पाशजाल को दग्ध कर दे ।।२९।।

संसारविषवृक्षस्य　पञ्चक्लेशपलाशिनः[२]।
छेदने कर्ममूलस्य परशुः शिवभावना।।३०।।

भावार्थ : कर्म से उत्पन्न यह संसार विषवृक्ष (के सदृश) है। (अविद्या अस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश अर्थात् मृत्यु से भय ये) पाँच क्लेश इसके पत्ते हैं। इसको काटने के लिये शिवभावना कुठार सदृश है ।।३०।।

अज्ञानराक्षसोन्मेषकारिणः　संहृतात्मनः।
शिवध्यानं तु संसारतमसश्चण्डभास्करः।।३१।।

भावार्थ : आत्मा को आवृत करने वाला अज्ञानरूपी राक्षस को उद्दीप्त करने वाले संसाररूपी अन्धकार को दूर करने के लिये शिवध्यान प्रचण्ड सूर्य के समान है ।।३१।।

लिङ्गनिजस्थल - (३५)

स्वान्तस्थशिवलिङ्गस्य प्रत्यक्षानुभवस्थितिः।
यस्यैव परलिङ्गस्य निजमित्युच्यते बुधैः।।३२।।

भावार्थ : **(निजलिङ्गस्थल वर्णन)**— जिसको स्वान्तस्थ शिवलिङ्ग का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है। उस परलिङ्ग को स्वात्मरूप से अनुभव करने वापले प्राणलिङ्ग को विद्वान् निजलिङ्ग कहते हैं ।।३२।।

ब्रह्मविष्णवादयो देवाः सर्वे वेदादयस्तथा।
लीयन्ते यत्र गम्यन्ते तल्लिङ्गं ब्रह्म शाश्वतम्।।३३।।

भावार्थ : ब्रह्मा विष्णु आदि समस्त देव तथा सभी वेद आदि (=आगम पुराण स्मृति आदि) जिसमें लीन होते हैं तथा पुनः उत्पन्न होते हैं वह लिङ्ग केवल ब्रह्म है ।।३३।।

---

१. तुलनीय— आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ज्ञाननिर्मथनाभ्यासात् पाशं दहति पण्डितः।। कैवल्योपनिषत् ११

२. अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः। (पा०यो०सू० २/३)

चिदानन्दमयः साक्षच्छिव एव निरञ्जनः।
लिङ्गमित्युच्यते नान्यद् यतः स्याद्विश्वसंभवः।।३४।।

भावार्थ : चित्-आनन्द-स्वरूप निरञ्जन (अर्थात् निष्कलङ्क) शिव ही साक्षात् लिङ्ग कहे जाते हैं। इन्हीं से विश्व की उत्पत्ति होती है ।।३४।।

बहुनात्र किमुक्तेन लिङ्गमित्युच्यते बुधैः।
शिवाभिदं परं ब्रह्म चिद्रूपं जगदास्पदम्।।३५।।

भावार्थ : इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ? शिव नामक परब्रह्म, जो कि चिद्‌रूप और संसार का आधार है, विद्वान् लोगों के द्वारा लिङ्ग कहा जाता है ।।३५।।

वेदान्तवाक्यजां विद्यां लिङ्गमाहुस्तथापरे।
तदसज्ज्ञेयरूपत्वाल्लिङ्गस्य ब्रह्मरूपिणः।।३६।।

भावार्थ : जो दूसरे लोग (तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि, अयमात्मा ब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्म)[१] इन चार वेदान्त महावाक्यों से उत्पन्न ज्ञान को लिङ्ग कहते हैं उनका कथन असङ्गत है क्योंकि ब्रह्मरूपी लिङ्ग ज्ञेय है एवं उनके कथन का ब्रह्म अवाङ्मनसगोचर है ।।३६।।

अव्यक्तं लिङ्गमित्याहुर्जगतां मूलकारणम्।
लिङ्गी महेश्वरश्चेति मतमेतदसङ्गतम्।।३७।।

भावार्थ : (कुछ विद्वान्) संसार के मूल कारण अव्यक्त तत्त्व को लिङ्ग कहते हैं और महेश्वर को लिङ्गी। यह मत असङ्गत है क्योंकि प्रकृति जड है अत एव हेय है जबकि वीरशैव मत में परमेश्वर की शक्ति चेतन है ।।३७।।

न सूर्यो भाति तत्रेन्दुर्न विद्युन्न च पावकः।
न तारका महालिङ्गे द्योतमाने परात्मनि।।३८।।

भावार्थ : उस परमात्मा महालिङ्ग के प्रकाशमान होने पर न सूर्य चमकता है न चन्द्रमा न विद्युत् न अग्नि और न तारायें चमकती हैं[२] ।।३८।।

ज्योतिर्मयं परं लिङ्गं श्रुतिराह शिवात्मकम्।
तस्य भासा सर्वमिदं प्रतिभाति न संशयः।।३९।।

---

१. तत्त्वमसि— सामवेद का, प्रज्ञानं ब्रह्म—ऋग्वेद का, अयमात्मा ब्रह्म— यजुर्वेद का तथा अहं ब्रह्मास्मि—अथर्ववेद का महावाक्य है।

२. तुलनीय— न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।
(श्वे०उ० ६।१४)

भावार्थ : श्रुति शिवात्मक परलिङ्ग को ज्योतिर्मय कहती है। उसकी चमक से यह समस्त जगत् देदीप्यमान हो रहा है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।।३९।।

विशेष : अग्नि सूर्य और चन्द्रमा, प्रमाता प्रमाण और प्रमेयरूप है। यह त्रिपुटी महालिङ्ग के अधीन रहकर प्रकाशित होती है। यदि महालिङ्ग को भी वेदान्त जन्य ज्ञान से प्रकाश्य माना जायगा तो परप्रकाश्य होने के कारण यह महालिङ्ग घटादि के समान जड़ हो जायगा। अत: वह महालिङ्ग स्वप्रकाश अर्थात् स्वसंवेद्यं है।

लिङ्गान्नास्ति परं तत्त्वं यदस्माज्जायते जगत्।
यदेतद्रूपतां धत्ते यदत्र लयमश्नुते।।४०।।

भावार्थ : लिङ्ग से बढ़कर कोई तत्त्व नहीं है क्योंकि इसी से संसार उत्पन्न होता है। उस लिङ्ग में ही संसार इस रूप में स्थित होता है और इसी में लीन हो जाता है ।।४०।।

तस्माल्लिङ्गं परं ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम्।
निजरूपमिति ध्यानात् तदवस्था प्रजायते।।४१।।

भावार्थ : इस कारण सत्-चित्-आनन्दस्वरूप ब्रह्म ही परलिङ्ग है। 'वही अपना रूप है' ऐसा ध्यान करने से निजलिङ्गावस्था उत्पन्न होती है ।।४१।।

अंगलिंगस्थल - (३६)

ज्ञानमङ्गमिति प्राहुर्ज्ञेयं लिङ्गं सनातनम्।
विद्यते तद्द्वयं यस्य सोऽङ्गलिङ्गीति कीर्तितः।।४२।।

भावार्थ : **(अङ्गलिङ्गस्थल वर्णन)**— (विद्वान् लोग) ज्ञान को अङ्ग और ज्ञेय को सनातन लिङ्ग कहते हैं। इन दोनों का ज्ञान जिसके पास हो वह अङ्गालिङ्गी कहा गया है ।।४२।।

अङ्गे लिङ्गं समारूढं लिङ्गे चाङ्गमुपस्थितम्।
एतदस्ति द्वयं यस्य स भवेदङ्गलिङ्गवान्।।४३।।

भावार्थ : अङ्ग में लिङ्ग आरूढ है और लिङ्ग में अङ्ग ओतप्रोत है। बीजाङ्कुरन्याय से ये दोनों प्रकार के ज्ञान जिसके पास हैं वह अङ्गलिङ्गवान् होता है ।।४३।।

ज्ञात्वा यः सततं लिङ्गं स्वान्तस्थं ज्योतिरात्मकम्।
पूजयेद्भावयन्नित्यं तं विन्द्यादङ्गलिङ्गिनम्।।४४।।

भावार्थ : जो मनुष्य अपने अन्दर स्थित ज्योतिर्मय लिङ्ग को शास्त्र, गुरु अथवा अपने अनुभव के द्वारा जानकर नित्य उसकी पूजा तथा भावना करता है उसे अङ्गलिङ्गी समझना चाहिये ।।४४।।

ज्ञायते लिङ्गमेवैकं सर्वैः शास्त्रैः सनातनैः।
ब्रह्मेति विश्वधामेति विमुक्तेः पदमित्यपि।।४५।।

मुक्तिरूपमिदं लिङ्गमिति यस्य मनःस्थितिः।
स मुक्तो देहयोगेऽपि स ज्ञानी स महागुरुः।।४६।।

भावार्थ : एक ही लिङ्ग को समस्त सनातन शास्त्र ब्रह्म, विश्वधाम, मुक्तिपद के रूप में जानते हैं। 'यह लिङ्ग मुक्तिस्वरूप है'—ऐसा जो मन में समझता है वह देह से युक्त रहते हुए भी मुक्त (अर्थात् जीवन्मुक्त) है। वही ज्ञानी और वही महागुरु है ।।४५-४६।।

अनादिनिधनं लिङ्गं कारणं जगतामिह।
ये न जानन्ति ते मूढा मोक्षमार्गबहिष्कृताः।।४७।।

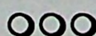
भावार्थ : आदि और अन्त अर्थात् उत्पत्ति विनाश से रहित लिङ्ग संसार का कारण है— ऐसा जो लोग नहीं जानते वे मूर्ख हैं तथा मोक्षमार्ग से बहिष्कृत हैं ।।४७।।

यः प्राणलिङ्गार्चनभावपूर्वै-
र्धर्मैरुपेतः शिवभावितात्मा।
स एव तुर्यः परिकीर्तितोऽसौ
संविद्विपाकाच्छरणाभिधानः।।४८।।

भावार्थ : जो प्राणलिङ्गार्चन भाव से पूर्ण धर्मों से युक्त है तथा आत्मा में सर्वदा शिव की भावना करता रहता है वही चतुर्थ अवस्था को प्राप्त कहा गया है। संवित् के परिपाक के कारण वह शरणस्थल कहा जाता है ।।४८।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ प्राणलिङ्गिस्थले प्राणलिङ्गिस्थलादिपञ्चविध-स्थलप्रसङ्गो नाम द्वादशः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के प्राणलिङ्गिपञ्चस्थलप्रसङ्ग नामक द्वादश परिच्छेद की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।१२।।



त्रयोदश: परिच्छेद:

अंगस्थलांतर्गत

शरणस्थल

अगस्त्य उवाच —

माहेश्वर: प्रसादीति प्राणलिङ्गीति बोधित:।
कथमेष समादिष्ट: पुन: शरणसंज्ञक:।।१।।

भावार्थ : **(शरणस्थल वर्णन)**— अगस्त्य ने कहा— माहेश्वर प्रसादी और प्राणलिङ्गी का (आपने) ज्ञान करा दिया। यही शरणस्थली कैसे कहा जाता है। (कृपया इसे बतलाइये) ।।१।।

रेणुक उवाच —

अङ्गलिङ्गी ज्ञानरूप: सती ज्ञेय: शिव: पति:।
यत्सौख्यं तत्समावेशे तद्वान् शरणनामवान्।।२।।

भावार्थ : रेणुकाचार्य ने कहा— ज्ञान रूप अङ्गलिङ्गी सती है। ज्ञेय शिव उसके पति हैं। इस सती और पति का (सामरस्य या यामलरूप) जो सुख है उस का अनुभव करने वाला शरणस्थल कहा जाता है ।।२।।

स्थलमेतत्समाख्यातं चतुर्धा धर्मभेदत:।
आदौ शरणमाख्यातं ततस्तामसवर्जनम्।।३।।

ततो निर्देशमुद्दिष्टं शीलसम्पादनं तत:।
क्रमाल्लक्षणमेतेषां कथयामि निशम्यताम्।।४।।

भावार्थ : धर्म के भेद से यह स्थल चार प्रकार का कहा गया है। पहले शरणस्थल फिर तामसनिरसनस्थल इसके बाद निर्देशस्थल तत्पश्चात् शीलसम्पादनस्थल होता है। (अब मैं) क्रम से इनका लक्षण बतला रहा हूँ। सुनो ।।३-४।।

शरणस्थल - (३७)

सतीव रमणे यस्तु शिवे शक्तिं विभावयन्।
तदन्यविमुख: सोऽयं ज्ञात: शरणनामवान्।।५।।

भावार्थ : जिस प्रकार सती स्त्री अपने रमण अर्थात् प्रियतम पति के प्रति भावना रखती है। उस प्रकार जो व्यक्ति शिव के विषय में अपने को शक्ति समझते हुए भावना करता है तथा उस (शिव) से अन्य (देवता आदि) के विषय में विमुख है उसे शरणनामवाला माना गया है ॥५॥

परिज्ञाते शिवे साक्षात् को वाऽन्यमभिकाङ्क्षति।
निधाने महति प्राप्ते कः काचं याचतेऽन्यतः॥६॥

भावार्थ : शिव का साक्षात् ज्ञान होने पर कौन ऐसा व्यक्ति है जो किसी दूसरे की इच्छा करेगा। विपुल धनराशि प्राप्त होने पर कौन अन्य से काँच की याचना करता है ॥६॥

शिवानन्दं समासाद्य को वाऽन्यमुपतिष्ठते।
गङ्गामृतं परित्यज्य कः काङ्क्षेन्मृगतृष्णिकाम्॥७॥

भावार्थ : शिव का आनन्द प्राप्त कर कौन दूसरे की उपासना करता है। गङ्गाजल रूपी अमृत को छोड़कर कौन मृगमरीचिका की इच्छा करता है ॥७॥

संसारतिमिरच्छेदे विना शङ्करभास्करम्।
प्रभवन्ति कथं देवाः खद्योता इव देहिनाम्॥८॥

भावार्थ : जो देवता लोग संसारी जीवों के लिये जुगुन् के समान हैं वे विना शङ्कररूपी सूर्य के संसाररूपी अन्धकार का नाश करने में कैसे समर्थ हो सकते हैं? ॥८॥

संसारार्तः शिवं यायाद् ब्रह्माद्यैः किं फलं सुरैः।
चकोरस्तृषितः पश्येच्चन्द्रं किं तारका अपि॥९॥

भावार्थ : संसार से पीड़ित व्यक्ति को शिव के पास जाना चाहिये। ब्रह्मा आदि देवताओं से कोई फल मिलने वाला नहीं है। प्यासा चकोर चन्द्रमा को देखता है। क्या वह ताराओं (को भी देखता है? अर्थात् नहीं देखता) ॥९॥

शिव एव समस्तानां शरण्यः शरणार्थिनाम्।
संसारोरगदष्टानां सर्वज्ञः सर्वदोषहा॥१०॥

शिवज्ञाने समुत्पन्ने परानन्दः प्रकाशते।
तदासक्तमना योगी नान्यत्र रमते सुधीः॥११॥

भावार्थ : संसाररूपी सर्प के द्वारा काटे गये अत एव (विषमूर्च्छित) समस्त शरणार्थियों के एकमात्र शरण शिव हैं जो कि सर्वज्ञ हैं और सम्पूर्ण दोषों को नष्ट करने

वाले हैं। शिवज्ञान के उत्पन्न होने पर परानन्द का अनुभव होता है। उसमें संसक्त चित्त वाला बुद्धिमान् योगी अन्यत्र आनन्द का आस्वादन नहीं करता ॥१०-११॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शङ्करं शरणं गतः।
तदनन्तसुखं प्राप्य मोदते नान्यचिन्तया॥१२॥

भावार्थ : इसलिये सम्पूर्ण प्रयास कर शङ्कर की शरण में गया हुआ योगी उस अनन्त सुख को प्राप्त कर आनन्दमग्न रहता है न कि अन्य (देवता आदि) का ध्यान करने से ॥१२॥

तामसनिरसनस्थल - (३८)

शिवासक्तपरानन्दमोदिना गुरुणा यतः।
निरस्यन्ते तमोभावाः स तामसनिरासकः॥१३॥

भावार्थ : **(तामसनिरसनस्थल वर्णन)**— शिव में आसक्त अत एव परानन्द से आनन्दित होने वाले जिस गुरु के द्वारा समस्त तमोभाव निरस्त कर दिये जाते हैं वह तामसनिरासक कहा जाता है ॥१३॥

यस्य ज्ञानं तमोमिश्रं न तस्य गतिरिष्यते।
सत्त्वं हि ज्ञानयोगस्य नैर्मल्यं विदुरुत्तमाः॥१४॥

भावार्थ : जिसका ज्ञान तमोगुणमिश्रित है उसकी सद्गति नहीं होती। उत्तम पुरुष सत्त्व को ज्ञानयोग के नैर्मल्य का कारण कहते हैं ॥१४॥

शमो दमो विवेकश्च वैराग्यं पूर्णभावना।
क्षान्तिः कारुण्यसम्पत्तिः श्रद्धा सत्यसमुद्भवा॥१५॥

शिवभक्तिः परो धर्मः शिवज्ञानस्य बान्धवाः।
एतैर्युक्तो महायोगी सात्त्विकः परिकीर्तितः॥१६॥

भावार्थ : शम, दम, विवेक, वैराग्य, पूर्णभावना अर्थात् अखण्ड ज्ञान, क्षमा, करुणा, सत्य से उत्पन्न श्रद्धा, शिव भक्ति, परमधर्म अर्थात् उत्कृष्ट वीरशैवाचार ये सब शिवज्ञान के बन्धु हैं। इन सबसे महायोगी सात्त्विक कहलाता है ॥१५-१६॥

कामक्रोधमहामोहमदमात्सर्यवारणाः ।
शिवज्ञानमृगेन्द्रस्य कथं तिष्ठन्ति सन्निधौ॥१७॥

भावार्थ : काम, क्रोध, महामोह, महामद, मात्सर्य रूपी हाथियों का झुण्ड शिवज्ञान रूपी सिंह के पास कैसे ठहर सकते हैं ॥१७॥

यत्र कुत्रापि वा द्वेष्टि प्रपञ्चे शिवरूपिणि।
शिवद्वेषी स विज्ञेयो रजसाविष्टमानसः।।१८।।

भावार्थ : शिवरूप प्रपञ्च में जहाँ कहीं भी कोई द्वेष करता है रजोगुण से आविष्ट चित्त वाला वह शिवद्वेषी समझा जाना चाहिये ।।१८।।

यो द्वेष्टि सकलान् लोकान् यो वाऽहङ्कुरुते सदा।
योऽसत्यभावानायुक्तः स तामस इति स्मृतः।।१९।।

भावार्थ : जो सब लोगों से द्वेष करता है अथवा जो सदा अहङ्कारयुक्त रहता है तथा जो असत्य भावना से युक्त है वह तामस माना गया है ।।१९।।

तमोमूला हि सञ्जाता रागद्वेषादिपादपाः।
शिवज्ञानकुठारेण छेद्यन्ते हि निरन्तरम्।।२०।।

भावार्थ : राग द्वेष आदि के वृक्ष तमोमूलक हैं (अर्थात् ये तमोगुण के कारण उत्पन्न होते हैं) ये शिवज्ञानरूपी·कुठार के द्वारा सदा काटे जाते हैं ।।२०।।

शिवज्ञाने समुत्पन्ने सहस्रादित्यसन्निभे।
कुतस्तमोविकाराः स्युर्महतां शिवयोगिनाम्।।२१।।

भावार्थ : सहस्र सूर्य के समान शिवज्ञान के उत्पन्न होने पर महा शिवयोगियों के लिये तमो विकार कहाँ ।।२१।।

निर्देशस्थल - (३९)

निराकृत्य तमोभागं संसारस्य प्रवर्तकम्।
निर्दिश्यते तु यज्ज्ञानं स निर्देश इति स्मृतः।।२२।।

भावार्थ : (निर्देशस्थल वर्णन)— संसार के प्रवर्त्तक अर्थात् मूल-कारणभूत तमोभाग को दूर कर जो ज्ञान निर्दिष्ट होता है वह निर्देश कहा जाता है ।।२२।।

गुरुरेव परं तत्त्वं प्रकाशयति देहिनाम्।
को वा सूर्यं विना लोके तमसो विनिवर्तकः।।२३।।

भावार्थ : गुरु ही मनुष्यों को परमतत्त्व का ज्ञान कराते हैं। सूर्य के बिना संसार में अन्धकार का विनिवर्त्तक कौन हो सकता है? ।।२३।।

अन्तरेण गुरुं सिद्धं कथं संसारनिष्कृतिः।
निदानज्ञं विना वैद्यं किं वा रोगो निवर्तते।।२४।।

भावार्थ : सिद्ध गुरु के बिना संसार की निष्कृति अर्थात् निवृत्ति कैसे सम्भव है। क्या निदानज्ञ वैद्य के विना रोग की निवृत्ति होती है ॥२४॥

अज्ञानमलिनं चित्तदर्पणं यो विशोधयेत्।
प्रज्ञाविभूतियोगेन तमाहुर्गुरुसत्तमम्।।२५।।

भावार्थ : जो प्रज्ञारूपी भस्म से अज्ञानमलिन चित्तदर्पण को शुद्ध करता है उसे (विद्वान् लोग) उत्तम गुरु कहते हैं ॥२५॥

अपरोक्षिततत्त्वस्य जीवन्मुक्तस्वभाविनः।
गुरोः कटाक्षे संसिद्धे को वा लोकेषु दुर्लभः।।२६।।

भावार्थ : तत्त्व का साक्षात्कार करने वाले अत एव स्वभावतः जीवन्मुक्त गुरु की कृपादृष्टि प्राप्त हो जाने पर लोक में क्या दुर्लभ है? ॥२६॥

कैवल्यकल्पतरवो गुरवः करुणालयाः।
दुर्लभा हि जगत्यस्मिन् शिवाद्वैतपरायणाः।।२७।।

भावार्थ : कैवल्यरूपी फल देने के लिये कल्पवृक्ष के समान, करुणा के सागर तथा शिवाद्वैतपरायण गुरु इस संसार में दुर्लभ हैं ॥२७॥

क्षीराब्धिरिव सिन्धूनां सुमेरुरिव भूभृताम्।
ग्रहाणमिव तिग्मांशुर्मणीनामिव कौस्तुभः।।२८।।

द्रुमाणामिव भद्रश्रीर्देवानामिव शङ्करः।
गुरुः शिवः परः श्लाघ्यो गुरूणां प्राकृतात्मनाम्।।२९।।

भावार्थ : जिस प्रकार समुद्रों में क्षीर सागर, पर्वतों में सुमेरु, ग्रहों में सूर्य, मणियों में कौस्तुभ, वृक्षों में चन्दन तथा देवताओं में शङ्कर श्रेष्ठ और श्लाघ्य हैं। उसी प्रकार प्राकृत गुरुओं की अपेक्षा शिवज्ञानी गुरु श्रेष्ठ और प्रशस्य है ॥२८-२९॥

शीलसम्पादनस्थल - (४०)

जिज्ञासा शिवतत्त्वस्य शीलमित्युच्यते बुधैः।
निर्देश्ययोगादार्याणां तद्वान् शीलीति कथ्यते।।३०।।

भावार्थ : (शीलसम्पादनस्थल वर्णन)—गुरुओं के द्वारा निर्देश्य अर्थात् उपदेश्य होने के कारण विद्वान् लोग शिवतत्त्व की जिज्ञासा को शील कहते हैं। वह जिसके पास है वह शीली कहा जाता है ॥३०॥

प्रपन्नार्तिहरे देवे परमात्मनि शङ्करे।
भावस्य स्थिरतायोगः शीलमित्युच्यते बुधैः।।३१।।

भावार्थ : शरणागत के कष्ट को दूर करने वाले देवाधिदेव परमात्मा शङ्कर के प्रति भाव की स्थिरता को विद्वान् लोग शील कहते हैं ।।३१।।

शीलं शिवैकविज्ञानं शिवध्यानैकतानता।
शिवप्राप्तिसमुत्कण्ठा तद्योगी शीलवान् स्मृतः।।३२।।

भावार्थ : केवल शिव का ज्ञान, शिव का निरन्तर ध्यान और शिव की प्राप्ति के लिये उत्कण्ठा शील कहलाता है। वह जिसके पास है वह शीलवान् माना गया है ।।३२।।

शिवादन्यत्र विज्ञाने वैमुख्यं यस्य सुस्थिरम्।
तदासक्तमनोवृत्तिस्तमाहुः शीलभाजनम्।।३३।।

भावार्थ : शिव से भिन्न विज्ञान के विषय में जिसकी पराङ्मुखता स्थिर है तथा जिसकी मनोवृत्ति उस (अर्थात् शिव) में आसक्त है वह शील का पात्र अर्थात् शीलवान् होता है ।।३३।।

पतिव्रताया यच्छीलं पतिरागात् प्रशस्यते।
तथा शिवानुरागेण सुशीलोऽभक्त उच्यते।।३४।।

भावार्थ : जैसे पतिव्रता का जो शील है उसकी प्रशंसा पति के प्रति उसकी रागात्मिका भावना के कारण होती है। वैसे ही शिव के प्रति अनुराग के कारण अभक्त अर्थात् शिव के प्रति प्रीति से अवियुक्त मनुष्य भी सुशील कहा जाता है ।।३४।।

पतिं विना यथा स्त्रीणां सेवान्यस्य तु गर्हणा।
शिवं विना तथान्येषां सेवा निन्द्या कृतात्मनाम्।।३५।।

भावार्थ : जिस प्रकार स्त्रियों के लिये पति से अन्य पुरुष की सेवा निन्दनीय होती है उसी प्रकार शिव के बिना अन्य देवताओं की सेवा कृतकृत्य लोगों के लिये निन्दनीय है ।।३५।।

बहुनात्र किमुक्तेन शिवज्ञानैकनिष्ठता।
शीलमित्युच्यते सद्भिः शीलवांस्तत्परो मतः।।३६।।

भावार्थ : इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ? सज्जन लोग शिवज्ञान के प्रति एकनिष्ठता को शील कहते हैं और उसमें जो लगा हुआ है वह शीलवान् माना गया है ।।३६।।

शिवात्मबोधैकरतः स्थिराशयः
शिवं प्रपन्नो जगतामधीशम्।
शिवैकनिष्ठाहितशीलभूषणः
शिवैक्यवानेष हि कथ्यते बुधैः।।३७।।

भावार्थ : केवल शिवबोध में लगा हुआ, स्थिर भावना से युक्त, संसार के स्वामी शिव की शरण में गया हुआ, केवल शिव में निष्ठारूपी आभूषण को धारण करने वाला यह मनुष्य विद्वानों के द्वारा शिवैक्यवान् कहा जाता है ।।३७।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ शरणस्थले शरणस्थलादिचतुर्विधस्थलप्रसङ्गो नाम त्रयोदशः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के शरणके चतुःस्थलप्रसङ्गनामक त्रयोदश परिच्छेद की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।१३।।



चतुर्दश: परिच्छेद:

अंगस्थलान्तर्गत

ऐक्यस्थल

अगस्त्य उवाच —

तामसत्यागसम्बन्धान्निर्देशाच्छीलतस्तथा।
शरणाख्यस्य भूयोऽस्य कथमैक्यनिरूपणम्।।१।।

भावार्थ : (ऐक्यस्थल वर्णन)— अगस्त्य ने कहा— तामस गुण का त्याग, ज्ञाननिर्देश तथा शीलसम्पादन के द्वारा शरण नामक साधक का पुन: ऐक्य कैसे होता है? ।।१।।

श्रीरेणुक उवाच —

प्राणलिङ्गादियोगेन सुखातिशयमेयिवान्।
शरणाख्य: शिवेनैक्यभावनादैक्यवान् भवेत्।।२।।

भावार्थ : श्री रेणुकाचार्य ने कहा— प्राणलिङ्ग ध्यान योग के द्वारा अतिशय सुख को प्राप्त करने वाला शरण नामक साधक शिव के साथ ऐक्यभावना के कारण ऐक्यवान् हो जाता है ।।२।।

विशेष : लिङ्ग और अङ्ग का भेद सम्भव नहीं है क्योंकि दोनों चित्स्वरूप हैं। दोनों के चित्स्वरूप होने से दोनों में नितान्त पार्थक्य भी नहीं है क्योंकि तब अपना ज्ञान होने के समय घट पट आदि का ज्ञान नहीं होगा। वे दोनों नितान्त एक भी नहीं हो सकते क्योंकि तब वीरशैव सिद्धान्त का व्याघात हो जायगा। वीरशैव सिद्धान्त के अनुसार शिव और जीव में सेव्य-सेवक भाव होना चाहिये। इसलिये दोनों के बीच भेद की कल्पना करनी पड़ती है। इसके द्वारा भेद होने पर फिर ऐक्य भावना सम्भव है।

ऐक्यस्थलमिदं प्रोक्तं चतुर्धा मुनिपुङ्गव।
ऐक्यमाचारसम्पत्तिरेकभाजनमेव च।।
सहभोजनमित्येषां क्रमाल्लक्षणमुच्यते।।३।।

भावार्थ : हे मुनिश्रेष्ठ! यह ऐक्यस्थल चार प्रकार का कहा गया है। ऐक्यस्थल आचारसम्पत्ति स्थल, एकभाजनस्थल और सहभोजन स्थल। अब इनका क्रम से लक्षण कहा जा रहा है ॥३॥

ऐक्यस्थल - (४१)

विषयानन्दकणिकानिस्पृहो निर्मलाशयः ।
शिवानन्दमहासिन्धुमज्जनादैक्यमुच्यते ॥४॥

भावार्थ : (ऐक्यस्थल वर्णन)— विषयानन्द के लेशमात्र में भी निस्पृह, निर्मल चित्त वाला साधक शिवानन्द महासमुद्र में मज्जन अर्थात् स्थापित करने वाला ऐक्यस्थल कहलाता है ॥४॥

निर्धूतमलसम्बन्धो निष्कलङ्कमनोगतः।
शिवोऽहमिति भावेन निरूढो हि शिवैक्यताम्॥५॥

भावार्थ : मल को हटाकर उससे असम्बद्ध, निष्कलङ्क मन वाला, साधक 'शिवोऽहम्' इस भावना से शिवैक्य को प्राप्त करता है ॥५॥

शिवेनैक्यं समापन्नश्चिदानन्दस्वरूपिणा।
न पश्यति जगज्जालं मायाकल्पितवैभवम्॥६॥

भावार्थ : चित् आनन्द रूप शिव से ऐक्य को प्राप्त मनुष्य माया के द्वारा रचित वैभव वाले संसार जाल को नहीं देखता ॥६॥

ब्रह्माण्डबुद्बुदोद्भेदविजृम्भी तत्त्ववीचिमान्।
मायासिन्धुर्लयं याति शिवैक्यवडवानले॥७॥

भावार्थ : ब्रह्माण्ड रूपी बुद्बुद के उद्भव से बाढ़ वाला, छत्तीस तत्त्वरूपी लहरों से युक्त मायारूपी समुद्र शिवैक्यरूपी वाडवाग्नि में लीन हो जाता है ॥७॥

मायाशक्तितिरोधानाच्छिवे भेदविकल्पना।
आत्मनस्तद्विनाशे तु नाद्वैतात्किञ्चिदिष्यते॥८॥

भावार्थ : मायाशक्ति का शिव में तिरोधान अर्थात् प्रसरण होने पर जीव का शिव से भेदभाव होता है। उस तिरोधान शक्ति के नष्ट होने पर अद्वैत के अतिरिक्त कुछ नहीं बचता ॥८॥

पशुत्वं च पतित्वं च मायामोहविकल्पितम्।
तस्मिन् प्रलयमापन्ने कः पशुः को नु वा पतिः॥९॥

भावार्थ : पशुभाव और पतिभाव ये दोनों मायामोह की विकल्पनायें हैं। उस मायामोह का प्रलय होने पर कौन पशु और कौन पति ॥९॥

घोरसंसारसर्पस्य भेदवल्मीकशायिनः।
बाधकं परमाद्वैतभावना परमौषधम्।।१०।।

भावार्थ : यह परमाद्वैत भावना भेदरूपी[1] बिल में सोने वाले भयंकर संसार रूपी सर्प का बाधक परम औषधि है ॥१०॥

भेदबुद्धिसमुत्पन्नमहासंसारसागरम् ।
अद्वैतबुद्धिपोतेन समुत्तरति देशिकः।।११।।

भावार्थ : आचार्य अथवा शिवलिङ्गैक्य भावना वाला व्यक्ति भेदबुद्धि से उत्पन्न महा संसारसागर को अद्वैत बुद्धिरूपी जहाज से पार कर जाता है ॥११॥

अज्ञानतिमिरोद्रिक्ता कामरक्षःक्रियाकरी।
संसारकालरात्रिस्तु नश्येदद्वैतभानुना।।१२।।

तस्मादद्वैतभावस्य सदृशो नास्ति योगिनाम्।
उपायो घोरसंसारमहातापनिवृत्तये।।१३।।

भावार्थ : अज्ञानरूपी अन्धकार से भरी हुई, कामरूपी राक्षसी कृत्य करने वाली संसाररूपी कालरात्रि शिवाद्वैतरूपी सूर्य के द्वारा नष्ट हो जाती है। इस कारण योगियों के लिये घोर संसाररूपी महाताप को दूर करने के हेतु अद्वैत भाव के समान कोई दूसरा उपाय नहीं है ॥१२-१३॥

अद्वैतभावनाजातं क्षणमात्रेऽपि यत्सुखम्।
तत्सुखं कोटिवर्षेण प्राप्यते नैव भोगिभिः।।१४।।

चित्तवृत्तिसमालीनजगतः शिवयोगिनः।
शिवानन्दपरिस्फूर्तिर्मुक्तिरित्यभिधीयते।।१५।।

भावार्थ : अद्वैत भावना से उत्पन्न तथा एक क्षण के लिये जो सुख होता है वह राजभोगी लोग करोड़ों वर्षों में भी नहीं प्राप्त कर सकते। जिसने संसार को अपनी चित्तवृत्ति में लीन कर लिया है ऐसे शिवयोगी की शिवानन्दपरिस्फूर्त्ति मुक्ति कही जाती है ॥१४-१५॥

---

१. यह भेद पाँच प्रकार का है— जड़-अजड़ भेद, जीव-अजीव भेद, जीव-जड़ भेद, जीव-ईश्वर भेद और जड़-ईश्वर भेद ।

आचारसंपत्तिस्थल - (४२)

शिवैकभावनापन्नशिवत्वे देहवानपि।
देशिको हि न लिप्येत स्वाचारै सूतकादिभिः।।१६।।

भावार्थ : (आचारसम्पत्तिस्थल वर्णन)— 'शिव ही एकमात्र सत्य है'— ऐसी भावना से युक्त अतएव शिवत्व वाला आचार्य शरीरधारण करने पर भी सूतक आदि अपने सम्प्रदाय या समाज के आचारों से लिप्त अर्थात् दूषित नहीं होता ॥१६॥

शिवाद्वैतपरिज्ञाने स्थिते सति मनस्विनाम्।
कर्मणा किं नु भाव्यं स्यादकृतेन कृतेन वा।।१७।।

भावार्थ : शिवाद्वैत का परिज्ञान होने पर मनस्वियों के सत्कर्म अथवा असत्कर्म का कोई फल नहीं होता ॥१७॥

शम्भोरेकत्वभावेन सर्वत्र समदर्शनः।
कुर्वन्नपि महाकर्म न तत्फलमवाप्नुयात्।।१८।।

भावार्थ : (जीवात्मा और) शिव के एकत्व की भावना से सर्वत्र एक एवं तुल्य दृष्टि वाला महान् अर्थात् बड़े-बड़े सत् या असत् कर्मों को करता हुआ भी उनके फल से लिप्त नहीं होता ॥१८॥

सुकृती दुःष्कृती वापि ब्राह्मणो वान्त्यजोऽपि वा।
शिवैकभावयुक्तानां सदृशो भवति ध्रुवम्।।१९।।

भावार्थ : चाहे पुण्यकर्मा हो या पापी, ब्राह्मण हो या चाण्डाल, शिवैकभाव से युक्त योगियों के लिये वे सब निश्चित रूप से समान हैं ॥१९॥

वर्णाश्रमंसदाचारैर्ज्ञानिनां किं प्रयोजनम्।
लौकिकस्तु सदाचारः फलाभावेऽपि भाव्यते।।२०।।

भावार्थ : शिवज्ञानियों को लौकिक वर्ण आश्रम के सदाचार से क्या प्रयोजन। (नित्य नैमित्तिक आदि) लौकिक सदाचार फल न देने पर भी उनके द्वारा किया जाता है ॥२०॥

निर्दग्धकर्मबीजस्य निर्मलज्ञानवह्निना।
देहिवद्भासमानस्य देहयात्रा तु लौकिकी।।२१।।

भावार्थ : निर्मल ज्ञानरूपी अग्नि से जिसका कर्मबीज दग्ध हो गया है, देही के समान प्रतीत होने वाले ऐसे शरीरधारी की देहयात्रा (=आहार निद्रा आदि)

लौकिकी अर्थात् अन्य लोगों की भाँति होती है (किन्तु उस यात्रा से फल और संस्कार नहीं बनते) ॥२१॥

शिवज्ञानसमापन्नस्थिरवैराग्यलक्षणः।
स्वकर्मणा न लिप्येत पद्मपत्रमिवाम्भसा॥२२॥

भावार्थ : शिवज्ञान से युक्त स्थिरवैराग्य वाला साधक अपने कर्म से उसी प्रकार लिप्त नहीं होता जिस प्रकार की जल से कमल का पत्ता ॥२२॥

गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् वापि जाग्रन् वापि महामतिः।
शिवज्ञानसमायोगाच्छिवपूजापरः सदा॥२३॥

भावार्थ : चलता हुआ, खड़ा हुआ, सोता अथवा जागता हुआ महामतिमान् शिवज्ञान से सम्बद्ध होने के कारण सदा शिवपूजा करता रहता है।[1] ॥२३॥

यद्यत्पश्यति सामोदं वस्तु लोकेषु देशिकः।
शिवदर्शनसम्पत्तिस्तत्र तत्र महात्मनः॥२४॥

भावार्थ : शिवलिङ्गैक्य आचार्य इस संसार में आनन्द के साथ जिस-जिस वस्तु को देखता है उस-उस में उस महात्मा को शिव की प्रतीति होती है ॥२४॥

यद्यच्चिन्तयते योगी मनसा शुद्धभावनः।
तत्तच्छिवमयत्वेन शिवध्यानमुदाहृतम्॥२५॥

भावार्थ : शुद्धभावना वाला योगी मन से जिस-जिस का ध्यान करता है वह-वह शिवमय होने से शिवध्यान कहा गया है ॥२५॥

यत्किञ्चिद्भाषितं लोके स्वेच्छया शिवयोगिना।
शिवस्तोत्रमिदं सर्वं यस्मात् सर्वात्मकः शिवः॥२६॥

भावार्थ : शिवयोगी स्वेच्छा से इस संसार में जो कुछ कहता है वह सब शिवस्तोत्र हो जाता है क्योंकि शिव सब में विद्यमान हैं ॥२६॥

---

१. तुलनीय—
आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वागिरः
यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥
(शि०मा०पू०)

या या चेष्टा समुत्पन्ना जायते शिवयोगिनाम्।
सा सा पूजा महेशस्य सर्वदा तद्गतात्मनाम्।।२७।।

भावार्थ : शिवयोगियों को जो-जो चेष्टायें (उनके शरीर में) उत्पन्न होती हैं वह सब शिवमय आत्मा वाले उनके लिये सदाशिव की पूजा होती है ।।२७।।

एकभाजनस्थल - (४३)

विश्वं शिवमयं चेति सदा भावयतो धिया।
शिवैकभाजनात्मत्वादेकभाजनमुच्यते ।।२८।।

भावार्थ : **(एकभाजनस्थल वर्णन)**— 'यह विश्व शिवमय है'— मन से ऐसी भावना करना शिवैकभाजनात्मक होने से एकभाजन कहा जाता है ।।२८।।

स्वस्य सर्वस्य लोकस्य शिवस्याद्वैतदर्शनात्।
एकभाजनयोगेन प्रसादैक्यमतिर्भवेत्।।२९।।

भावार्थ : अपने सम्पूर्ण संसार तथा शिव को एक समझने के कारण एक पात्र होने से प्रसादविषयिणी अद्वैत बुद्धि होती है इस प्रकार चरमूर्त्ति अर्थात् लिङ्गैक्य का पादोदक और प्रसाद दोनों समान रूप से ग्राह्य होते हैं ।।२९।।

शिवे विश्वमिदं सर्वं शिवः सर्वत्र भासते।
आधाराधेयभावेन शिवस्य जगतः स्थितिः।।३०।।

भावार्थ : यह समस्त विश्व शिव में है और शिव सर्वत्र प्रकाशमान हो रहे हैं इस प्रकार शिव और संसार की आधारआधेय सम्बन्ध से स्थिति है (अर्थात् शिव और जगत् दोनों एक साथ एक दूसरे के आधार और आधेय हैं ।।३०।।

चित्तैकभाजनं यस्य चित्तवृत्तेः शिवात्मकम्।
नान्यत्तस्य किमेतेन मायामूलेन वस्तुना।।३१।।

भावार्थ : जिसकी चित्तवृत्ति शिवात्मक और मात्र चैतन्य विषय वाली है किसी दूसरे विषय वाली नहीं उसको मायामूलक इस वस्तु से क्या लेना देना? ।।३१।।

चित् प्रकाशयते विश्वं तद्विना नास्ति वस्तु हि।
चिदेकनिष्ठचित्तानां किं मायापरिकल्पितैः।।३२।।

भावार्थ : चित् ही घट आदि से उपलक्षित समस्त प्रपञ्चमय विश्व को प्रकाशित करता है। उसके बिना कोई वस्तु है ही नहीं। जिनका चित्त केवल एकमात्र चित् में लगा हुआ है उनके लिये माया परिकल्पित (वस्तुओं) से क्या प्रयोजन? ।।३२।।

वृत्तिशून्ये स्वहृदये शिवलीने निराकुले।
यः सदा वर्तते योगी स मुक्तो नात्र संशयः।।३३।।

भावार्थ : जो योगी सर्वदा वृत्तिशून्य शिव में लीन अतएव निराकुल अर्थात् शान्त अपने हृदय में ध्यानस्थ रहता है वह मुक्त होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।।३३।।

सहभोजनस्थल - (४४)

गुरोः शिवस्य शिष्यस्य स्वस्वरूपतया स्मृतिः।
सहभोजनमाख्यातं सर्वग्रासात्मभावतः।।३४।।

भावार्थ : (सहभोजनस्थल वर्णन)— गुरु शिव और शिष्य का अपने रूप में स्मरण सर्वग्रासात्मभाव के कारण सहभोजन कहा गया है ।।३४।।

शिवं विश्वं गुरुं साक्षाद्योजयेन्नित्यमात्मनि।
एकत्वेन चिदाकारे तदिदं सहभोजनम्।।३५।।

भावार्थ : शिव विश्व और गुरु को प्रतिदिन साक्षात् चिदाकार आत्मा में एक रूप में जोड़ने वाला सहभोजन कहलाता है ।।३५।।

विशेष : सहभोजन का तात्पर्य है शिव गुरु और विश्व का अपने स्वरूप से अभिन्न रूप में परामर्श करना।

अयं शिवो गुरुश्चैष जगदेतच्चराचरम्।
अहं चेति मतिर्यस्य नास्त्यसौ विश्वभोजकः।।३६।।

भावार्थ : यह शिव है यह गुरु है और यह चराचर जगत् है और यह मैं हूँ— ऐसी जिसकी भेदबुद्धि होती है वह विश्वभोजक नहीं होता ।।३६।।

अहं भृत्यः शिवः स्वामी शिष्योऽहं गुरुरेव वै।
इति यस्य मतिर्नास्ति स चाद्वैतपदे स्थितः।।३७।।

भावार्थ : मैं सेवक हूँ और शिव स्वामी है, मैं शिष्य हूँ और ये गुरु है— ऐसी जिसकी भेदबुद्धि नहीं है वह अद्वैतपद में स्थित होता है ।।३७।।

पराहन्तामये स्वात्मपावके विश्वभास्वति।
इदन्ताहव्यहोमेन विश्वहोमीति कथ्यते।।३८।।

भावार्थ : विश्व को आभासित करने वाली पर अहन्तारूपी आत्मारूपी अग्नि में इदन्तारूपी हव्य का होम करने वाला विश्वहोमी कहा जाता है ।।३८।।

अहं शिवो गुरुश्चाहमहं विश्वं चराचरम्।
यया विज्ञायते सम्यक् पूर्णाहन्तेति सा स्मृता।।३९।।

भावार्थ : मैं ही शिव हूँ, मैं ही गुरु हूँ, मैं ही चर-अचर विश्व हूँ— ऐसा जिसके द्वारा जाना जाता है वह पूर्णाहन्ता मानी गयी है ।।३९।।

विशेष : यह संसार अकारादि क्षकारान्त ५० वर्णों के विकास का फल है। साधना के द्वारा इस अ ह दो वर्णों में प्रत्याहृत कर लेने के पश्चात् उसका भी बिन्दु के रूप में प्रत्याहरण हो जाता है। यह बिन्दु अ ह का सूक्ष्मतम रूप है। इसमें मयूराण्डरसन्यायेन सम्पूर्ण विश्व प्रच्छन्न रहता है। यही पूर्ण अहंभाव है। जिसमें समस्त जगत् सूक्ष्म रूप से प्रतिबिम्बित होता रहता है।

आधारवह्नौ चिद्रूपे भेदजातं जगद्धविः।
जुहोति ज्ञानयज्वा यः स ज्ञेयो विश्वहव्यभुक्।।४०।।

भावार्थ : जो ज्ञानयज्ञ का कर्त्ता चिद्रूपी आधारवह्नि अर्थात् आज्ञाचक्र में स्थित तेज में भेदसमूह वाले जगत् रूपी हवि का हवन करता है उसे विश्वहव्यभुक् समझना चाहिये ।।४०।।

चिदाकारे पराकाशे परमानन्दभास्वति।
विलीनचित्तवृत्तीनां का वा विश्वक्रमस्थितिः।।४१।।

भावार्थ : परम आनन्दरूपी सूर्य वाले चित्स्वरूप पराकाश में जिनकी चित्तवृत्तियाँ विलीन हो गयी हैं उनके लिये विश्वक्रम अर्थात् विश्वव्यवहार की क्या स्थिति हो सकती है ।।४१।।

निरस्तविश्वसम्बाधे निष्कलङ्के चिदम्बरे।
भावयेल्लीनमात्मानं सामरस्यस्वभावतः।।४२।।

सैषा विद्या परा ज्ञेया सत्तानन्दप्रकाशिनी।
मुक्तिरित्युच्यते सद्भिर्जगन्मोहनिवर्तिनी।।४३।।

भावार्थ : विश्व की बाधा अर्थात् जन्म-मृत्यु आदि का बन्धन जहाँ दूर हो गया है ऐसे निष्कलङ्क चिदाकाश में अपने को सामरस्यभाव से लीन समझना चाहिये। सज्जनों के द्वारा यह जगत् का मोह दूर करने वाली मुक्ति कही जाती है ।।४२-४३।।

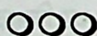
भक्तादिधामार्पितधर्मयोगात्
प्राप्तैकभावः परमाद्भुतेन।

शिवेन चिद्व्योममयेन साक्षान्
मोक्षश्रियो भाजनतामुपैति।।४४।।

भावार्थ : भक्त आदि स्थल के लिये समर्पित धर्मयोग के कारण चिदाकाशमय परम अद्भुत शिवलिङ्ग के साथ ऐक्य को प्राप्त ऐक्यस्थली व्यक्ति साक्षात् मोक्ष का पात्र होता है ।।४४।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ ऐक्यस्थले ऐक्यस्थलादिचतुर्विधस्थलप्रसङ्गो नाम चतुर्दशः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के शिवलिङ्गैक्यसम्बन्धी चतुर्विधस्थलप्रसङ्गनामक चतुर्दश परिच्छेद की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।१४।।



पञ्चदश: परिच्छेद:

लिंगस्थलांतर्गत

भक्तस्थल

श्रीरेणुक उवाच—

षट्स्थलोक्तसदाचारसम्पन्नस्य यथाक्रमम्।
लिङ्गस्थलानि कथ्यन्ते जीवन्मुक्तिपराणि च।।१।।

भावार्थ : श्री रेणुकाचार्य ने कहा— छह स्थलों में वर्णित सदाचार से सम्पन्न साधक के जीवन्मुक्तिपरक लिङ्गस्थल क्रम से कंहे जा रहे है ।।१।।

अगस्त्य उवाच—

भक्ताद्यैक्यावसानानि षडुक्तानि स्थलानि च।
लिङ्गस्थलानि कानीह कथ्यन्ते कति वा पुन:।।२।।

भावार्थ : अगस्त्य ने कहा— भक्तस्थल से लेकर ऐक्यस्थल तक छह स्थल कहे गये। लिङ्ग स्थल कौन-कौन से हैं और कितने हैं यह बतलाइये ।।२।।

गुर्वादिज्ञानशून्यान्ता भक्तादिस्थलसंश्रिता:।
स्थलभेदा: प्रकीर्त्यन्ते पञ्चाशत् सप्त चाधुना।।३।।

भावार्थ : भक्त आदि छह स्थलों पर आधृत दीक्षागुरु स्थल से लेकर ज्ञानशून्य स्थल तक सत्तावन स्थलभेद अब बतलाये जायेंगे ।।३।।

आदौ नवस्थलानीह भक्तस्थलसमाश्रयात्।
कथ्यन्ते गुणसारेण नामान्येषां पृथक् शृणु।।४।।

भावार्थ : भक्तस्थल के आधार पर यहाँ पहले नवस्थल उनके गुणों के अनुसार कहे जा रहे हैं। उनके पृथक्-पृथक् नामों को सुनो ।।४।।

दीक्षागुरुस्थलं पूर्वं तत: शिक्षागुरुस्थलम्।
प्रज्ञागुरुस्थलं चाथ क्रियालिङ्गस्थलं तत:।।५।।

भावलिङ्गस्थलं चाथ ज्ञानलिङ्गस्थलं तत:।
स्वयं चरं परं चेति तेषां लक्षणमुच्यते।।६।।

भावार्थ : पहले दीक्षागुरुस्थल उसके बाद शिक्षागुरुस्थल, फिर प्रज्ञागुरुस्थल तत्पश्चात् क्रियालिङ्गस्थल, फिर भावलिङ्गस्थल उसके बाद ज्ञानलिङ्गस्थल, स्वयस्थल, परस्थल और चरस्थल (ये नव स्थल है अब) इनका लक्षण कहा जा रहा है ॥५-६॥

दीक्षागुरुस्थल - (४५)

दीयते परमं ज्ञानं क्षीयते पाशबन्धनम्।
यया दीक्षेति सा तस्यां गुरुर्दीक्षागुरुः स्मृतः।।७।।

भावार्थ : **(दीक्षागुरुस्थल वर्णन)**— जिसके द्वारा परम ज्ञान दिया जाता है और पाशबन्धन का क्षय किया जाता है वह दीक्षा होती है। उस विषय में जो गुरु होता है वह दीक्षागुरु कहा गया है ॥७॥

गुणातीतं गुकारं च रूपातीतं रुकारकम्।
गुणातीतमरूपं च यो दद्यात् स गुरुः स्मृतः।।८।।

भावार्थ : 'गु' का अर्थ है—गुणातीत, 'रु' का अर्थ है—रूपातीत। जो गुणों से परे अर्थात् निर्गुण एवं रूपरहित तत्त्व को देता है अर्थात् उसको ज्ञान कराता है वह गुरु कहा गया है ॥८॥

आचिनोति च शास्त्रार्थानाचारे स्थापयत्यलम्।
स्वयमाचरते यस्मादाचार्यस्तेन चोच्यते।।९।।

भावार्थ : जो शास्त्रों के तात्पर्य का सञ्चयन करता और अपने शिष्यों को उसको बोध कराता है तथा स्वयं उसका आचरण करता है इस कारण वह आचार्य कहा जाता है ॥९॥

षडध्वातीतयोगेन यतते यस्तु देशिकः।
मायाब्धितारणोपायहेतुर्विश्वगुरुः शिवः।।१०।।

भावार्थ : जो आचार्य षडध्वा से परे योग को लेकर प्रयत्न करता है, वह देशिक कहलाता है। मायारूपी समुद्र के पार जाने का उपाय बताने वाला विश्वगुरु है, वही 'शिव' भी है ॥१०॥

अखण्डं येन चैतन्यं व्यज्यते सर्ववस्तुषु।
आत्मयोगप्रभावेण स गुरुर्विश्वभासकः।।११।।

भावार्थ : जिसके द्वारा अपने योग के प्रभाव से सब वस्तुओं में अखण्ड चैतन्य की अभिव्यक्ति की जाती है वह गुरु विश्व का प्रकाशक होता है ॥११॥

शिक्षागुरुस्थल - (४६)

दीक्षागुरुरसौ शिक्षाहेतु: शिष्यस्य बोधक:।
प्रश्नोत्तरप्रवक्ता च शिक्षागुरुरितीर्यते।।१२।।

भावार्थ : (शिक्षागुरुस्थल वर्णन)— यह दीक्षागुरु शिष्य को ज्ञान कराने वाला होने के कारण उसका शिक्षागुरु होता है। जो (शिष्य के द्वारा किये गये) प्रश्न का उत्तर देने वाला है वह शिक्षागुरु कहा जाता है ।।१२।।

बोधकोऽयं समाख्यातो बोध्यमेतदिति स्फुटम्।
शिष्यो नियुज्यते येन स शिक्षागुरुरुच्यते।।१३।।

भावार्थ : यह (शिवसिद्धान्त का) बोधक अर्थात् परतत्त्व का प्रकाशक कहा गया है। यह अर्थात् शिवयोग बोध्य है। जो शिष्य में इस ज्ञान को नियुक्त अर्थात् नियमित करे, वह शिक्षागुरु कहा जाता है ।।१३।।

संसारतिमिरोन्माथिशरच्चन्द्रमरीचय: ।
वाचो यस्य प्रवर्तन्ते तमाचार्यं प्रचक्षते।।१४।।

भावार्थ : संसार रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिये जिसकी वाणी शरत्कालीन चन्द्रमा के समान कार्य करती है (विद्वान् लोग) उसको आचार्य कहते हैं ।।१४।।

ददाति य: पतिज्ञानं जगन्मायानिवर्तकम्।
अद्वैतवासनोपायं तमाचार्यवरं विदु:।।१५।।

भावार्थ : जो संसार माया को दूर करने वाले पतिज्ञान को देता है अद्वैतभावना के उपायभूत उस को आचार्य माना गया है ।।१५।।

पूर्वपक्षं समादाय जगद्भेदविकल्पनम्।
अद्वैतकृतसिद्धान्तो गुरुरेष गुणाधिक:।।१६।।

भावार्थ : जगद्विषयक भेद की विकल्पना को पूर्वपक्ष के रूप में स्वीकृत करे जो सिद्धान्त पक्ष के रूप में अद्वैतवाद को स्थापित करता है वह गुरु गुणाधिक अर्थात् श्रेष्ठ है ।।१६।।

सन्देहवनसन्दोहसमुच्छेदकुठारिका ।
यत्सूक्तिधारा विमला स गुरूणां शिखामणि:।।१७।।

भावार्थ : जिस व्यक्ति कि निर्मल सूक्तिधारा सन्देहरूपी जङ्गल के समूह को काटने के लिये कुठार जैसी होती है वह गुरुओं का शिखामणि है ।।१७।।

यत्सूक्तिदर्पणाभोगे निर्मले दृश्यते सदा।
मोक्षश्रीर्बिम्बरूपेण स गुरुर्भवतारकः।।१८।।

भावार्थ : जिसके निर्मल सूक्तिरूपी दर्पण के विस्तार में मोक्षलक्ष्मी सदा बिम्ब के रूप में दिखायी पड़ती है। वह गुरु संसार से पार ले जाने वाला होता है ॥१८॥

शिष्याणां हृदयालेख्यं प्रद्योतयति यः स्वयम्।
ज्ञानदीपिकयाऽनेन गुरुणा कः समो भवेत्।।१९।।

भावार्थ : जो स्वयं अपने ज्ञानदीप से शिष्यों के हृदयचित्र को प्रकाशित करता है (अर्थात् चित्त को निर्मल बनाकर उसमें निजस्वरूप शिव का प्रकाश करता है) उस गुरु के समान कौन है? अर्थात् कोई नहीं ॥१९॥

परमाद्वैतविज्ञानपरमौषधदानतः।
संसाररोगनिर्माथी देशिकः केन लभ्यते।।२०।।

भावार्थ : परम अद्वैतविज्ञानरूपी परम औषधि के दान से संसाररूपी रोग को नष्ट करने वाला आचार्य किसे प्राप्त होता है? अर्थात् शिव की करुणा से ही ऐसे गुरु की उपलब्धि होती है ॥२०॥

ज्ञानगुरुस्थल - (४७)

उपदेष्टोपदेशानां संशयच्छेदकारकः।
सम्यग्ज्ञानप्रदः साक्षादेष ज्ञानगुरुः स्मृतः।।२१।।

भावार्थ : (ज्ञानगुरुस्थल वर्णन)— (शिवयोग के) उपदेशों को उपदेष्टा, (शिष्य के) संशय को दूर करने वाला समीचीन ज्ञान को देने वाला साक्षात् ज्ञानगुरु कहा गया है ॥२१॥

निरस्तविश्वसम्भेदं निर्विकारं चिदम्बरम्।
साक्षात्करोति यो युक्त्या स ज्ञानगुरुरुच्यते।।२२।।

भावार्थ : विश्व के भेद का निरास करने वाले निर्विकार चिदकाश का जो (अद्वैत शास्त्र की) युक्ति के द्वारा प्रत्यक्ष करता है। वह ज्ञानगुरु कहा जाता है ॥२२॥

कलङ्कवानसौ चन्द्रः क्षयवृद्धिपरिप्लुतः।
निष्कलङ्कस्थितो ज्ञानचन्द्रमा निर्विकारवान्।।२३।।

भावार्थ : यह (=आकाश में दृश्यमान) चन्द्रमा कलङ्कयुक्त तथा ह्रास एवं वृद्धि से पीड़ित है किन्तु ज्ञानरूपी चन्द्रमा निष्कलङ्क एवं निर्विकार है ॥२३॥

पार्श्वस्थतिमिरं हन्ति प्रदीपो मणिनिर्मितः।
सर्वगामि तमो हन्ति बोधदीपो निरङ्कुशः।।२४।।

भावार्थ : मणि से निर्मित दीपक पास में स्थित अन्धकार को दूर करता है किन्तु निर्बाध ज्ञानरूपी दीप सर्वव्यापी अन्धकार को हटा देता है ।।२४।।

सर्वार्थसाधकज्ञानविशेषादेशतत्परः ।
ज्ञानाचार्यः समस्तानामनुग्रहकरः शिवः।।२५।।

भावार्थ : सम्पूर्ण अर्थ के साधनभूत विशेष ज्ञान के दान में तत्पर एवं सबके ऊपर कृपा करने वाला ज्ञानाचार्य साक्षात् शिव होता है ।।२५।।

कटाक्षचन्द्रमा यस्य ज्ञानसागरवर्धनः।
संसारतिमिरच्छेदी स गुरुर्ज्ञानपारगः।।२६।।

भावार्थ : जिसका अनुग्रहकटाक्षरूपी चन्द्रमा ज्ञानरूपी सागर को बढ़ाने वाला होता है, संसाररूपी अन्धकार का नाश करने वाला वह गुरु ज्ञान का पारगामी होता है ।।२६।।

बहिस्तिमिरविच्छेत्ता भानुरेष प्रकीर्तितः।
बहिरन्तस्तमश्छेदी विभुर्देशिकभास्करः।।२७।।

भावार्थ : यह (प्राकृतिक सूर्य) बाह्य अन्धकार का नाशक है किन्तु आचार्यरूपी व्यापक सूर्य बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकार के अज्ञानान्धकार का नाश करता है ।।२७।।

विशेष— यह संसार शिव से भिन्न है— ऐसा समझना बाह्य अज्ञान है। मैं शिव से भिन्न हूँ—ऐसा समझना आन्तर अज्ञान है।

कटाक्षलेशमात्रेण विना ध्यानादिकल्पनम्।
शिवत्वं भावयेद्यत्र स वेदः शाम्भवो भवेत्।।२८।।

भावार्थ : जिससे ध्यान आदि की कल्पना के बिना केवल कृपाकटाक्ष से शिवत्व की भावना उत्पन्न हो जाती है वह शाम्भव ज्ञान कहा जाता है ।।२८।।

शिववेदकरे ज्ञाने दत्ते येन सुनिर्मले।
जीवन्मुक्तो भवेच्छिष्यः स गुरुर्ज्ञानसागरः।।२९।।

भावार्थ : जिसके द्वारा शिवभावना उत्पन्न करने वाला निर्मल ज्ञान दिये जाने पर शिष्य जीवन्मुक्त हो जाता है वह गुरु ज्ञान का सागर है ।।२९।।

क्रियालिङ्गस्थल - (४८)

गुरोर्विज्ञानयोगेन क्रिया यत्र विलीयते।
तत्क्रियालिङ्गमाख्यातं सर्वैरागमपारगैः।।३०।।

भावार्थ : (क्रियालिङ्ग स्थल वर्णन)— गुरु के विज्ञानयोग से क्रिया जिसमें लीन हो जाती है समस्त आगम के पारङ्गत उसे क्रियालिङ्ग कहते हैं ॥३०॥

परानन्दचिदाकारं परब्रह्मैव केवलम्।
लिङ्गं सद्रूपतापन्नं लक्ष्यते विश्वसिद्धये।।३१।।

भावार्थ : परानन्द चिदाकार तथा केवल अर्थात् अद्वितीय परब्रह्म विश्व की रचना (अथवा सम्पूर्ण क्रिया) की सिद्धि के लिये सद्रूपता (=स्थूलरूपता) को प्राप्त प्रतीत होता है ॥३१॥

लिङ्गमेव परं ज्योतिर्भवति ब्रह्म केवलम्।
तस्मात् तत्पूजनादेव सर्वकर्मफलोदयः।।३२।।

भावार्थ : परज्योति केवल परब्रह्म ही लिङ्ग (रूप में स्थित है) इसलिये उसकी पूजा से समस्त कर्मफल का उदय होता है ॥३२॥

परित्यज्य क्रियाः सर्वा लिङ्गपूजैकतत्पराः।
वर्तन्ते योगिनः सर्वे तस्माल्लिङ्गं विशिष्यते।।३३।।

भावार्थ : समस्त योगीजन सारी क्रियाओं को छोड़कर केवल लिङ्गपूजा में तत्पर होते हैं इस कारण क्रियालिङ्ग श्रेष्ठ है ॥३३॥

यज्ञादयः क्रियाः सर्वा लिङ्गपूजांशसंमिताः।
इति यत्पूज्यते सिद्धैस्तत्क्रियालिङ्गमुच्यते।।३४।।

भावार्थ : 'यज्ञ आदि सम्पूर्ण क्रियायें लिङ्गपूजा के अंशमात्र के बराबर हैं'— इस भावना से जिसकी सिद्ध लोग पूजा करते हैं वह क्रियालिङ्ग कहा जाता है ॥३४॥

किं यज्ञैरग्निहोत्राद्यैः किं तपोभिश्च दुश्चरैः।
लिङ्गार्चनरतिर्यस्य स सिद्धः सर्वकर्मसु।।३५।।

भावार्थ : अग्निहोत्र आदि यज्ञों तथा कृच्छ्र चान्द्रायण आदि दुश्चर तपस्याओं से क्या प्रयोजन? जिसकी लिङ्गार्चन में रति है वह सब कार्यों में सिद्ध होता है ॥३५॥

ब्रह्मविष्ण्वादयः सर्वे विबुधा लिङ्गमाश्रिताः।
सिद्धाः स्वस्वपदे भान्ति जगत्तन्त्राधिकारिणः।।३६।।

भावार्थ : ब्रह्मा विष्णु आदि सभी देवता लिङ्ग के ऊपर आश्रित होने से अपने-अपने स्थान पर सिद्ध अर्थात् स्थित हैं तथा जगत् के तन्त्र अर्थात् सृजन आदि के अधिकारी ब्रह्मा विष्णु आदि सब देवता लिङ्ग के ऊपर आश्रित होकर अपने-अपने पदों पर देदीप्यमान हैं ।।३६।।

भावलिंगस्थल - (४९)

क्रिया यथा लयं प्राप्ता तथा भावोऽपि लीयते।
यत्र तद्देशिकैरुक्तं भावलिङ्गमिति स्फुटम्।।३७।।

भावार्थ : **(भावलिङ्गस्थल वर्णन)**— जिस प्रकार क्रिया (क्रियालिङ्ग में) लीन हो गयी उसी प्रकार जहाँ भाव भी लीन हो जाता है उसे आचार्य लोग स्पष्ट भावलिङ्ग कहते हैं ।।३७।।

भावेन गृह्यते देवो भगवान् परमः शिवः।
किं तेन क्रियते तस्य नित्यपूर्णो हि स स्मृतः।।३८।।

भावार्थ : भगवान् परम शिव भाव (अर्थात् निर्मल हृदय की भावना) के द्वारा वश में होते हैं। उस (अर्थात् बाह्य पूजा आदि) से उन्हें क्या लेना देना? वह तो नित्य पूर्ण कहे गये हैं ।।३८।।

अखण्डपरमानन्दबोधरूपः परः शिवः।
भक्तानामुपचारेण भावयोगात् प्रसीदति।।३९।।

भावार्थ : परमशिव अखण्ड परमानन्द और ज्ञानस्वरूप हैं। भक्तों के उपचार (अर्थात् पूजनसामग्री) के द्वारा वह भाव के कारण प्रसन्न होते हैं ।।३९।।

मृच्छिलाविहिताल्लिङ्गाद्भावलिङ्गं विशिष्यते।
निरस्तसर्वदोषत्वाद् ज्ञानमार्गप्रवेशनात्।।४०।।

भावार्थ : मिट्टी और पत्थर के लिङ्ग की अपेक्षा भावलिङ्ग विशिष्ट अर्थात् श्रेष्ठ होता है क्योंकि उसमें सभी दोष निरस्त होते हैं तथा वह (भक्तों का) ज्ञानमार्ग में प्रवेश कराता है ।।४०।।

विहाय बाह्यलिङ्गानि चिल्लिङ्गं मनसि स्मरन्।
पूजयेद् भावपुष्पैर्यो भावलिङ्गीति कथ्यते।।४१।।

भावार्थ : जो भक्त बाह्य लिङ्गों को छोड़कर चित् लिङ्ग का मन में स्मरण करता हुआ भावपुष्पों से उसकी पूजा करता है वह भावलिङ्गी कहा जाता है ॥४१॥

मूलाधारेऽथवा चित्ते भ्रूमध्ये वा सुनिर्मलम्।
दीपाकारं यजन् लिङ्गं भावद्रव्यैः स योगवान्।।४२।।

भावार्थ : मूलाधार, हृदय अथवा भ्रूमध्य में जो निर्मल दीपकलिका के आकार वाले लिङ्ग की भावद्रव्यों से पूजा करता है वह शिवयोगी होता है ॥४२॥

स्वानुभूतिप्रमाणेन ज्योतिर्लिङ्गेन संयुतः।
शिलामृद्दारुसंभूतं न लिङ्गं पूजयत्यसौ।।४३।।

भावार्थ : जो अपने अनुभव से प्रमाणित ज्योतिर्लिंग से युक्त होता है। वह शिला मिट्टी और लकड़ी के लिङ्ग की पूजा नहीं करता ॥४३॥

क्रियारूपा तु या पूजा सा ज्ञेया स्वल्पसंविदाम्।
आन्तरा भावपूजा तु शिवस्य ज्ञानिनां मता।।४४।।

भावार्थ : शिव की जो क्रियारूपी (बाह्य) पूजा है वह अल्पज्ञानी लोगों के द्वारा की जाती है। उनकी आन्तरिक भावपूजा ज्ञानियों की पूजा मानी गयी है ॥४४॥

ज्ञानलिङ्गस्थल - (५०)

तद्भावज्ञापकज्ञानं लयं यत्र समश्नुते।
तज्ज्ञानलिङ्गमाख्यातं शिवतत्त्वार्थकोविदैः।।४५।।

भावार्थ : (ज्ञानलिङ्गस्थल वर्णन)— उस (अर्थात् शिव) भाव का ज्ञापक मान जिसमें लीन हो जाता है शिव तत्त्व रूपी अर्थ (अथवा शिव तत्त्व के अर्थ) को जानने वाले लोग उसे ज्ञानलिङ्ग कहते हैं ॥४५॥

त्रिमूर्तिभेदनिर्मुक्तं त्रिगुणातीतवैभवम्।
ब्रह्म यद्बोध्यते तत्तु ज्ञानलिङ्गमुदाहृतम्।।४६।।

भावार्थ : (ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र रूपी) त्रिमूर्ति के भेद से रहित, (सत्त्व, रजस्, तमस् इन) तीनों गुणों से परे वैभव वाला ब्रह्म जिसके द्वारा बतलाया जाता है वह ज्ञानलिंङ्ग कहा गया है ॥४६॥

स्थूले क्रियासमापत्तिः सूक्ष्मे भावस्य सम्भवः।
स्थूलसूक्ष्मपदातीते ज्ञानमेव परात्मनि।।४७।।

भावार्थ : स्थूल (लिङ्ग) के विषय में क्रिया की समापत्ति (अर्थात् प्राप्ति) होती है अर्थात् क्रिया करनी होती है। सूक्ष्म लिङ्ग के सन्दर्भ में भावमय सामग्री की आवश्यकता होती है। जो स्थूल और सूक्ष्म दोनों स्तरों से ऊपर है उस परात्मा के विषय में ज्ञान ही (पूजासम्भार) होता है ।।४७।।

कल्पितानि हि रूपाणि स्थूलानि परमात्मनः।
सूक्ष्माण्यपि च तैः किं वा परबोधं समाचरेत्।।४८।।

भावार्थ : स्थूल और सूक्ष्म दोनों परमात्मा के ही माया द्वारा कल्पित रूप हैं। उनसे क्या लेना देना अर्थात् वे मोक्षसाधन नहीं हो सकते। परबोधरूप तृप्तिलिङ्ग को आचरण में रखना चाहिये अर्थात् ज्ञान का विषय बनाना चाहिये ।।४८।।

परात्परं तु यदब्रह्म परमानन्दलक्षणम्।
शिवाख्यं ज्ञायते येन ज्ञानलिङ्गीति कथ्यते।।४९।।

भावार्थ : जो परात् पर परमानन्दस्वरूप शिव नामक ब्रह्म को जानता है वह ज्ञानलिङ्गी कहा जाता है ।।४९।।

बाह्यक्रियां परित्यज्य चिन्तामपि मानसीम्।
अखण्डज्ञानरूपत्वं यो भजेन्मुक्त एव सः।।५०।।

भावार्थ : जो भक्त बाह्य क्रिया एवं मानस ध्यान को छोड़कर अखण्ड ज्ञानरूपता का भजन अर्थात् सेवन करता है वह मुक्त ही है ।।५०।।

स्वयस्थल - (५१)

तद्भावज्ञापकं ज्ञानं यत्र ज्ञाने लयं व्रजेत्।
तद्वानेष समाख्यातः स्वाभिधानो मनीषिभिः।।५१।।

भावार्थ : (स्वयंस्थल वर्णन)— उस अर्थात् भावलिङ्ग का ज्ञापक ज्ञान जिस ज्ञान में लीन हो जाता है मनीषियों के द्वारा उस ज्ञान वाला यह व्यक्ति 'स्वयं' नाम से कहा जाता है ।।५१।।

स्वच्छन्दाचारसन्तुष्टो ज्योतिर्लिङ्गपरायणः।
आत्मस्थसकलाकारः स्वाभिधो मुनिसत्तमः।।५२।।

भावार्थ : स्वच्छन्द आचार से सन्तुष्ट, ज्योतिर्लिङ्ग की अर्चना में तत्पर, अपनी आत्मा में सम्पूर्ण आकार या विश्व को देखने वाला मुनिसत्तम स्वयं कहा जाता है ।।५२।।

निर्ममो निरहङ्कारो निरस्तक्लेशपञ्चकः।
भिक्षाशी समबुद्धिश्च मुक्तप्रायो मुनिर्भवेत्।।५३।।

भावार्थ : विषयों के प्रति ममतारहित, शरीर में आत्मभावनारूप अहङ्कार से रहित तथा (अविद्या आदि) पाँच क्लेशों को समाप्त कर देने वाला, भिक्षा माँगकर भोजन करने वाला समबुद्धि मुनि मुक्तप्राय होता है ।।५३।।

यदृच्छालाभसन्तुष्टो भस्मनिष्ठो जितेन्द्रियः।
समवृत्तिर्भवेद्योगी भिक्षुके वा नृपेऽथवा।।५४।।

भावार्थ : जितना और जो कुछ मिलता है उससे सन्तुष्ट, भस्मधारण करने में श्रद्धा रखने वाला, जितेन्द्रिय भिक्षुक अथवा राजा के विषय में समान बुद्धि एवं व्यवहार वाला शिवयोगी होता है ।।५४।।

पश्यन् सर्वाणि भूतानि संसारस्थानि सर्वशः।
स्मयमानः परानन्दे लीनात्मा वर्तते सुधीः।।५५।।

भावार्थ : विद्वान् साधक परानन्द में सदा लीन अतएव संसार में रहने वाले समस्त प्राणियों को मुस्कुराहट (अथवा आश्चर्य) के साथ देखता हुआ व्यवहार करता है ।।५५।।

ध्यानं शैवं तथा ज्ञानं भिक्षा चैकान्तशीलता।
यतेश्चत्वारि कर्माणि न पञ्चममिहेष्यते।।५६।।

भावार्थ : शिव का ज्ञान, शिव का ध्यान, भिक्षा और एकान्तवास— ये चार ही कर्म शिवयोगी के होते हैं। इस संसार में उसके लिये पाँचवा कर्म नहीं है ।।५६।।

चरस्थल - (५२)

स्वरूपज्ञानसम्पन्नो ध्वस्ताहंममताकृतिः।
स्वयमेव स्वयं भूत्वा चरतीति चराभिधः।।५७।।

भावार्थ : (चरस्थल वर्णन)— जो स्वरूप के ज्ञान से सम्पन्न है, जिसने अहङ्कार और ममकार (अर्थात् 'मैं' और 'मेरा') इस भावना को नष्ट कर दिया है और इस प्रकार स्वयंस्थली होकर स्वयं इस संसार में सञ्चार करता है उसको चरस्थल कहते हैं ।।५७।।

कामक्रोधादिनिर्मुक्तः शान्तिदान्तिसमन्वितः।
समबुद्ध्या चरेद् योगी सर्वत्र शिवबुद्धिमान्।।५८।।

भावार्थ : काम क्रोध आदि से रहित शम दम से युक्त सबके विषय में शिवबुद्धि रखने वाले योगी को सर्वत्र समत्व बुद्धि से व्यवहार करना चाहिये ॥५८॥

इदं मुख्यमिदं हीनमिति चिन्तामकल्पयन्।
सर्वत्र सञ्चरेद् योगी सर्वं ब्रह्मेति भावयन्।।५९।।

भावार्थ : 'यह मुख्य है यह गौण है'— ऐसा विचार न करता हुआ तथा 'सब कुछ ब्रह्म है'— ऐसी भावना करता हुआ योगी सर्वत्र सञ्चकरण करे ॥५९॥

न सम्मानेषु सम्प्रीतिं नावमानेषु च व्यथाम्।
कुर्वाणः सञ्चरेद्योगी कूटस्थे स्वात्मनि स्थितः।।६०।।

भावार्थ : सम्मान होने पर हर्ष और अपमान होने पर विषाद न करता हुआ शिवयोगी को चाहिये कि वह कूटस्थ आत्मा में स्थित होकर व्यवहार करे ॥६०॥

अप्रकृतैर्गुणैः स्वीयैः सर्वं विस्मापयन् जनम्।
अद्वैतपरमानन्दमुदितो देहिवच्चरेत्।।६१।।

भावार्थ : अपने अलौकिक गणों से सारे संसार को आश्चर्यचकित करता हुआ तथा अद्वैत परमानन्द में आनन्दित (वह शिवयोगी साधारण) मनुष्य की भाँति आचरण करे ॥६१॥

न प्रपञ्चे निजे देहे न धर्मे न च दुष्कृते।
गतवैषम्यधीर्धीरो यतिश्चरति देहिवत्।।६२।।

भावार्थ : योगी प्रपञ्च अर्थात् संसार अपने शरीर धर्म तथा अधर्म के विषय में वैषम्यबुद्धि से रहित होकर साधारण देही की भाँति व्यवहार करें ॥६२॥

प्राकृतैश्वर्यसम्पत्तिपराङ्मुखमनःस्थितिः।
चिदानन्दनिजात्मस्थो मोदते मुनिपुङ्गवः।।६३।।

भावार्थ : प्रकृति के ऐश्वर्य वैभव के प्रति पराङ्मुख अर्थात् निःस्पृह मन वाला अतएव चित् आनन्द स्वरूप आत्मा में स्थित अर्थात् आत्मा का सदा साक्षात्कार करने वाला मुनिश्रेष्ठ सदा आनन्दमय रहता है ॥६३॥

परस्थल - (५३)

स्वयमेव स्वयं भूत्वा चरतः स्वस्वरूपतः।
परं नास्तीति बोधस्य परत्वमभिधीयते।।६४।।

भावार्थ : (परस्थल वर्णन)— स्वयमेव स्वयं होकर अपने स्वरूप से आचरण करने वाले (शिवयोगी) का (शिव के अतिरिक्त) कोई दूसरा नहीं है। यह ज्ञान उसका परत्व कहा जाता है ।।६४।।

स्वतन्त्रः सर्वकृत्येषु स्वं परत्वेन भावितः।
तृणीकुर्वन् जगज्जालं वर्तते शिवयोगिराट्।।६५।।

भावार्थ : सब कार्यों में स्वतन्त्र और अपने को परतत्त्व के रूप में समझने वाला तथा संसार को तृणवत् तुच्छ मानने वाला शिवयोगविराट् होता है ।।६५।।

वर्णाश्रमसमाचारमार्गनिष्ठापराङ्मुखः ।
सर्वोत्कृष्टं स्वमात्मानं पश्यन् योगी तु मोदते।।६६।।

भावार्थ : वर्ण आश्रम के आचरण के पथ से पराङ्मुख हुआ शिवयोगी अपने को पर अर्थात् सर्वोत्कृष्ट समझता हुआ आनन्दित होता है ।।६६।।

विश्वातीतं परं ब्रह्म शिवाख्यं चित्स्वरूपकम्।
तदेवाहमिति ज्ञानी सर्वोत्कृष्टः स उच्यते।।६७।।

भावार्थ : विश्वातीत शिव नामक चित्स्वरूप ब्रह्म पर अर्थात् अन्तिम तत्त्व हैं। 'मैं भी वही हूँ' इस प्रकार का ज्ञान रखने वाला पर अर्थात् सर्वोत्कृष्ट कहा जाता है ।।६७।।

अचलं ध्रुवमात्मानमनुपश्यन्निरन्तरम्।
निरस्तविश्वविभ्रान्तिर्जीवन्मुक्तो भवेन्मुनिः।।६८।।

भावार्थ : अपने को निरन्तर अचल ध्रुव समझने वाला तथा जिसका समस्त भ्रम दूर हो गया है ऐसा मुनि जीवन्मुक्त होता है ।।६८।।

ब्रह्माद्याः किं नु कुर्वन्ति देवताः कर्ममार्गगाः।
कर्मातीतपदस्थस्य स्वयं ब्रह्मस्वरूपिणः।।६९।।

भावार्थ : कर्म से परे अर्थात् ऊर्ध्व पद में स्थित स्वयं ब्रह्मरूपी योगी का कर्ममार्गी ब्रह्मा आदि देवगण क्या कर सकते हैं? ।।६९।।

स्वेच्छया सञ्चरेद्योगी विमुञ्चन् देहमानिताम्।
दर्शनैः स्पर्शनैः सर्वानज्ञानपि विमोचयेत्।।७०।।

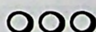
भावार्थ : देह में (अहं भाव और मम भाव) का त्याग करने वाला योगी इस संसार में स्वेच्छा से आचरण करता है तथा अपने दर्शन एवं स्पर्श से समस्त अज्ञानियों को विमुक्त करा देता है ।।७०।।

नित्ये निर्मलभावने निरुपमे निर्धूतविश्वभ्रमे
सत्तानन्दचिदात्मके परशिवे साम्यं गतः संयमी।
प्रध्वस्ताश्रमवर्णधर्मनिगलः स्वच्छन्दसञ्चारवान्
देहीवाद्भुतवैभवो विजयते जीवन्विमुक्तः सुधीः।।७१।।

भावार्थ : नित्य निर्मल भावरूप अनुपम समस्त भ्रम के नाशक सत् चित् आनन्द स्वरूप पर शिव के साथ सामरस्य स्थापित करने वाला संयमी आश्रम वर्ण धर्म की बन्धन शृङ्खला को तोड़कर स्वच्छन्द अर्थात् अपने इच्छानुसार विचरण करने वाला विद्वान् अद्भुत वैभव से युक्त हुआ जीवन्मुक्त होकर भी सामान्य जन की भाँति व्यवहार करता है ।।७१।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां
शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये
श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ
लिङ्गस्थलान्तर्गतभक्तस्थले दीक्षागुरुस्थलादि
नवविधस्थलप्रसङ्गो नाम पञ्चदशः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के भक्तस्थल का
नवविधलिङ्गस्थलप्रसङ्गनामक पञ्चदश परिच्छेद
की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती'
हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।१५।।



षोडश: परिच्छेद:

लिङ्गस्थलान्तर्गत

माहेश्वरस्थल

अगस्त्य उवाच—

स्थलानां नवकं प्रोक्तं भक्तस्थलसमाश्रयम्।
माहेश्वरस्थले सिद्धं स्थलभेदं वदस्व मे।।१।।

भावार्थ : (क्रियागमस्थल वर्णन)— अगस्त्य ने कहा— (हे रेणुकाचार्य! आपने) भक्तस्थल के अन्तर्गत नव स्थलों का वर्णन किया। माहेश्वर स्थल में सिद्ध स्थलभेद का मुझसे वर्णन कीजिये ।।१।।

माहेश्वरस्थले सन्ति स्थलानि नव तापस।
क्रियागमस्थलं पूर्वं ततो भावागमस्थलम्।।२।।

ज्ञानागमस्थलं चाथ सकायस्थलमीरितम्।
ततोऽकायस्थलं प्रोक्तं परकायस्थलं तत:।।३।।

धर्माचारस्थलं चाथ भावाचारस्थलं तत:।
ज्ञानाचारस्थलं चाथ क्रमादेषां भिदोच्यते।।४।।

भावार्थ : रेणुकाचार्य ने कहा— हे तपस्वी! माहेश्वरस्थल में नव स्थल हैं। पहला क्रियागमस्थल उसके बाद भावागमस्थल तत्पश्चात् ज्ञानागमस्थल फिर सकायस्थल कहा गया है। इसके पश्चात् अकायस्थल उसके बाद परकायस्थल कहा गया है। धर्माचारस्थल फिर भावात्मकस्थल और ज्ञानाचारस्थल है। अब क्रम से इनका भेद कहा जा रहा है ।।२-४।।

क्रियागमस्थल - (५४)

शिवो हि परम: साक्षात् पूजा तस्य क्रियोच्यते।
तत्परा आगमा यस्मात् तदुक्तोऽयं क्रियागम:।।५।।

भावार्थ : परलिङ्ग शिवयोगी साक्षात् शिव होता है। उसकी पूजा क्रियां कही जाती है। उस क्रिया को बताने वाला आगम क्रियागम कहा गया है ।।५।।

प्रकाशते यथा नाग्निररण्यां मथनं विना।
क्रियां विना तथान्तस्थो न प्रकाशो भवेच्छिवः।।६।।

भावार्थ : जिस प्रकार अरणि में (प्रच्छन्न रूप से स्थित) अग्नि बिना मन्थन के प्रकट नहीं होती उसी प्रकार क्रिया के बिना अन्दर स्थित शिव प्रकाशित नहीं होते ।।६।।

न यथा विधिलोपः स्यद्यथा देवः प्रसीदति।
यथागमः प्रमाणं स्यत्तथा कर्म समाचरेत्।।७।।

भावार्थ : जिस प्रकार विधान अर्थात् इति कर्त्तव्यता का लोप न हो और जिस विधि से देव अर्थात् शिव प्रसन्न हों और जिसमें आगम प्रमाण हो (अर्थात् आगम जिस कर्म को करने के लिये कहता है) उस प्रकार का कर्म करना चाहिये ।।७।।

विधिः शिवनियोगोऽयं यस्माद्विहितकर्मणि।
शिवाराधनबुद्ध्यैव निरतः स्याद्विचक्षणः।।८।।

भावार्थ : आगम शास्त्रों के द्वारा विहित कर्म के विषय में यह शिव की आज्ञा है ऐसा समझकर विद्वान् को शिवाराधनबुद्धि से (पूजा कर्म में) लगना चाहिये ।।८।।

गुरोरादेशमासाद्य पूजयेत् परमेश्वरम्।
पूजिते परमेशाने पूजिताः सर्वदेवताः।।९।।

भावार्थ : (शिवभक्त) गुरु की आज्ञा लेकर परमेश्वर शिव की पूजा करे। क्योंकि शिव की पूजा होने पर सब देवों की पूजा हो जाती है ।।९।।

सदा शिवार्चनोपायसामग्रीव्यग्रमानसः।
शिवयोगरतो योगी मुच्यते नात्र संशयः।।१०।।

भावार्थ : शिव की पूजा सामग्री को जुटाने में सदा व्यग्र चित्त वाला तथा शिवयोग में निरन्तर लगा हुआ योगी मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं ।।१०।।

अन्धपङ्गुवदन्योन्यसापेक्षे ज्ञानकर्मणी।
फलोत्पत्तौ विरक्तस्तु तस्मात्तद्द्वयमाचरेत्।।११।।

भावार्थ : अन्धे और लँगड़े के समान ज्ञान और कर्म परस्पर सापेक्ष है। इस कारण फल की उत्पत्ति में अनासक्त होता हुआ योगी उन दोनों को करे ।।११।।

ज्ञाने सिद्धेऽपि विदुषां कर्मापि विनियुज्यते।
फलाभिसन्धिरहितं तस्मात् कर्म न सन्त्यजेत्।।१२।।

भावार्थ : विद्वानों अर्थात् ज्ञानी लोगों का ज्ञान सिद्ध अर्थात् प्राप्त होने पर भी कर्म को करना होता है। इसलिये यद्यपि फल की इच्छा से रहित हो तथापि कर्म का त्याग न करे ॥१२॥

आचार एव सर्वेषामलङ्काराय कल्प्यते।
आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निन्दितः॥१३॥

भावार्थ : आचार ही सबका अलङ्कार होता है। आचारहीन पुरुष लोक में निन्दा का पात्र होता है ॥१३॥

ज्ञानेनाचारयुक्तेन प्रसीदति महेश्वरः।
तस्मादाचारवान् ज्ञानी भवेदादेहपातनाम्॥१४॥

भावार्थ : सदाचारयुक्त ज्ञान से महेश्वर प्रसन्न होते हैं। इसलिये ज्ञानी को शरीर की मृत्युपर्यन्त आचारवान् होना चाहिये ॥१४॥

भावागमस्थल - (५५)

भावचिह्नानि विदुषो यानि सन्ति विरागिणः।
तानि भावागमत्वेन वर्तन्ते सर्वदेहिनाम्॥१५॥

भावार्थ : **(भावागमस्थल वर्णन)**— वैराग्ययुक्त विद्वान् के जो भावचिह्न होते हैं वे ही समस्त सामान्य जनों के भावागम अर्थात् भावरूपी आगमशास्त्र के रूप में प्रमाण हो जाते हैं ॥१५॥

शिवोऽहमिति भावोऽपि शिवतापत्तिकारणम्।
न ज्ञानमात्रं नाचारो भावयुक्तः शिवो भवेत्॥१६॥

भावार्थ : 'शिवोऽहम्' (= मैं शिव हूँ) यह भाव भी शिवत्व की प्राप्ति का कारण होता है। न केवल ज्ञान अथवा केवल आचार युक्त वरन् केवल भावयुक्त भक्त शिव हो जाता है ॥१६॥

ज्ञानं वस्तुपरिच्छेदो ध्यानं तद्भावकारणम्।
तस्माद् ज्ञाते महादेवे ध्यानयुक्तो भवेत्सुधीः॥१७॥

भावार्थ : ज्ञान वस्तु का परिच्छेद अर्थात् उसके वास्तविक स्वरूप का निर्णायक होता है। ध्यान उस भाव का कारण होता है। इस कारण महादेव का ज्ञान होने पर विद्वान् को शिवध्यान से युक्त होना चाहिये ॥१७॥

अन्तर्बहिश्च सर्वत्र परिपूर्णं महेश्वरम्।
भावयेत् परमानन्दलब्धये पण्डितोत्तमः॥१८॥

भावार्थ : उत्तम पण्डित को चाहिये कि वह परमानन्द प्राप्त करने के लिये शरीर के अन्दर और बाहर सर्वत्र परिपूर्ण महेश्वर का ध्यान और उनकी भावना करे ॥१८॥

अर्थहीना यथा वाणी पतिहीना यथा सती।
श्रुतिहीना यथा बुद्धिर्भावहीना तथा क्रिया।।१९।।

भावार्थ : जिस प्रकार अर्थहीन वाणी, पति से विहीन सती स्त्री, वेदज्ञान से रहित बुद्धि उसी प्रकार शिवभावना से रहित क्रिया (व्यर्थ होती है) ॥१९॥

चक्षुर्हीनो यथा रूपं न किञ्चिद्वीक्षितुं क्षमः।
भावहीनस्तथा योगी न शिवं द्रष्टुमीश्वरः।।२०।।

भावार्थ : जिस प्रकार चक्षु हीन मनुष्य कुछ भी देखने में समर्थ नहीं होता उसी प्रकार भावहीन योगी शिव का साक्षात्कार करने में समर्थ नहीं होता ॥२०॥

भावशुद्धेन मनसा पूजयेत्परमेष्ठिनम्।
भावहीनां न गृह्णाति पूजां सुमहतीमपि।।२१।।

भावार्थ : इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह शुद्धभाव से युक्त मन के द्वारा परमेश्वर शिव की पूजा करे। कितनी भी बड़ी पूजा यदि भाव से हीन है तो परमेश्वर उसका स्वीकार नहीं करते ॥२१॥

नैरन्तर्येण सम्पन्ने भावे ध्यातुं शिवं प्रति।
तद्भावो जायते यद्वत् क्रिमेः कीटस्य चिन्तनात्।।२२।।

भावार्थ : जैसे कृमि भ्रमर का चिन्तन करते-करते भ्रमर हो जाता है, वैसे ही शिव के प्रति ध्यान की निरन्तरता के सम्पन्न होने पर योगी भी शिव हो जाता है ॥२२॥

निष्कलङ्कं निराकारं परब्रह्म शिवाभिधम्।
निर्ध्यातुमसमर्थोऽपि तद्विभूतिं विभावयेत्।।२३।।

भावार्थ : यदि कोई भक्त शिव नामक निष्कलङ्क निराकार परब्रह्म का ध्यान करने में समर्थ नहीं हो तो भी उस शिव के सर्वज्ञता आदि ऐश्वर्य का ध्यान करे ॥२३॥

ज्ञानागमस्थल - (५६)

परस्य ज्ञानचिह्नानि यानि सन्ति शरीरिणाम्।
तानि ज्ञानागमत्वेन प्रवर्तन्ते विमुक्तये।।२४।।

भावार्थ : **(ज्ञानागमस्थल वर्णन)**— पर अर्थात् भावागम ज्ञानयोगी के जो ज्ञानचिह्न होते हैं सामान्य देहधारियों के लिये वे ही मोक्षार्थ ज्ञानागम के रूप में व्यवहृत होते हैं ॥२४॥

भावेन किं फलं पुंसां कर्मणा वा किमिष्यते।
भावकर्मसमायुक्तं ज्ञानमेव विमुक्तिदम्।।२५।।

भावार्थ : केपल भाव से मनुष्यों को कोई फल नहीं मिलने वाला। केवल कर्म से भी कोई लाभ नहीं। भाव और कर्म दोनों से युक्त ज्ञान ही मोक्षदायक होता है ।।२५।।

केवलं कर्ममात्रेण जन्मकोटिशतैरपि।
नात्मनां जायते मुक्तिर्ज्ञानं मुक्तेर्हि कारणम्।।२६।।

भावार्थ : केवल कर्म के द्वारा करोड़ों जन्मों में भी आत्माओं की मुक्ति नहीं होती। ज्ञान ही मुक्ति का एकमात्र कारण है ।।२६।।

ज्ञानहीनं सदा कर्म पुंसां संसारकारणम्।
तदेव ज्ञानयोगेन संसारविनिवर्तकम्।।२७।।

भावार्थ : पुरुषों के ज्ञानहीन कर्म सदा संसार अर्थात् पुनर्जन्म का कारण बनते हैं। वे ही कर्म ज्ञान से युक्त कर लिये जाने पर संसार के विनिवर्त्तक अर्थात् मोक्षप्रद होते हैं ।।२७।।

फलं क्रियावतां पुंसां स्वर्गाद्यं नश्वरं यतः।
तस्मात्स्थायिफलप्राप्त्यै ज्ञानमेव समभ्यसेत्।।२८।।

भावार्थ : चूँकि क्रियावान् पुरुषों का अर्थात् जीवों का क्रिया के द्वारा प्राप्त स्वर्ग आदि फल नश्वर होता है इसलिये स्थायी अर्थात् अनश्वर फल की प्राप्ति के लिये ज्ञान का अभ्यास करना चाहिये ।।२८।।

शास्त्राभ्यासादियत्नेन सद्गुरोपुपदेशतः।
ज्ञानमेव समभ्यस्येत् किमन्येन प्रयोजनम्।।२९।।

भावार्थ : शास्त्रों का अभ्यास आदि प्रयास तथा सद्गुरु के उपदेश के द्वारा ज्ञान का ही अभ्यास करना चाहिये। अन्य साधनों से क्या प्रयोजन? ।।२९।।

ज्ञानं परशिवाद्वैतपरिपाकविनिश्चयः।
येन संसारसम्बन्धविनिवृत्तिर्भवेत् सताम्।।३०।।

भावार्थ : ज्ञान का अर्थ है— पर शिव के अद्वैत भाव के परिपाक के सन्दर्भ में निश्चित अवधारणा। इसी के द्वारा महात्माओं को संसार की निवृत्ति प्राप्त होती है ।।३०।।

शिवात्मकमिदं सर्वं शिवादन्यन्न विद्यते।
शिवोऽहमिति या बुद्धिस्तदेव ज्ञानमुत्तमम्।।३१।।

भावार्थ : 'यह सब शिव ही हैं, शिव से अन्य कुछ नहीं है, मैं भी शिव ही हूँ— ऐसी जो बुद्धि है वही उत्तम ज्ञान है ।।३१।।

अन्धो यथा पुरस्थानि वस्तूनि च न पश्यति।
ज्ञानहीनस्तथा देही नात्मस्थं वीक्षते शिवम्।।३२।।

भावार्थ : जिस प्रकार अन्धा व्यक्ति सामने स्थित वस्तुओं को नहीं देख पाता उसी प्रकार ज्ञानहीन जीव अपने अन्दर स्थित शिव को नहीं देखता ।।३२।।

शिवस्य दर्शनात् पुंसां जन्मरोगनिवर्तनम्।
शिवदर्शनमप्याहुः सुलभं ज्ञानचक्षुषाम्।।३३।।

भावार्थ : शिव का साक्षात्कार होने से मनुष्यों का जन्मरूपी रोग दूर हो जाता है। ज्ञानरूपी नेत्र वाले महात्माओं को शिव का दर्शन भी सुलभ हो जाता है ।।३३।।

दीपं विना यथा गेहे नान्धकारो निवर्तते।
ज्ञानं विना तथा चित्ते मोहोऽपि न निवर्तते।।३४।।

भावार्थ : जिस प्रकार घर में स्थित अन्धकार दीपक के बिना नहीं हटता उस प्रकार चित्त में स्थित मोह भी ज्ञान के बिना दूर नहीं होता ।।३४।।

सकायस्थल - (५७)

परस्य या तनुर्ज्ञेयाऽदेहकर्माभिमानिनः।
तया सकायो लोकोऽयं तदात्मत्वनिरूपणात्।।३५।।

भावार्थ : (सकायस्थल वर्णन)— (स्थूल आदि विशिष्ट) देह और कर्म का जो अभिमानी नहीं है ऐसे पर अर्थात् ज्ञानस्थली का जो ज्ञेय शरीर है उसके द्वारा यह लोक सकाय कहा जाता है क्योंकि उस (ज्ञानी) का शरीर आत्मा के रूप में प्रतिपादित है ।।३५।।

कायं विना समस्तानां न क्रिया न च भावना।
न ज्ञानं यत्ततो योगी कायवानेव सञ्चरेत्।।३६।।

भावार्थ : चूँकि काय के बिना सब लोगों की न तो क्रिया, न भावना और न ज्ञान सम्भव होता है इसलिये योगी को चाहिये कि वह कायवान् होकर (संसार में) विचरण करें ।।३६।।

शिवैकज्ञानयुक्तस्य योगिनोऽपि महात्मनः।
काययोगेन सिद्ध्यन्ति भोगमोक्षादयः सदा।।३७।।

भावार्थ : शिव के ज्ञान से युक्त महान् आत्मा वाले योगी के भी भोग मोक्ष आदि सर्वदा काययोग से ही सिद्ध होते हैं ॥३७॥

काष्ठं विना यथा वह्निर्जायते न प्रकाशवान्।
मूर्तिं विना तथा योगी नात्मतत्त्वप्रकाशवान्।।३८।।

भावार्थ : जिस प्रकार अग्नि काष्ठ के बिना प्रकाशवान् अर्थात् प्रकट नहीं होता उसी प्रकार मूर्त्ति (=शरीर) के बिना योगी आत्म तत्त्व का प्रकाश नहीं कर सकता ॥३८॥

मूर्त्यात्मनैव देवस्य यथा पूज्यत्वकल्पना।
तथा देहात्मनैवास्य पूज्यत्वं परयोगिनः।।३९।।

भावार्थ : जिस प्रकार मूर्त्तियुक्त होने के कारण देवता को पूज्य माना जाता है उसी प्रकार परयोगी भी देहधारण करने के कारण ही पूज्य होता है ॥३९॥

निष्कलो हि महादेवः परिपूर्णः सदाशिवः।
जगत्सृष्ट्यादिसंसिद्ध्यै मूर्तिमानेव भासते।।४०।।

भावार्थ : निष्कल (फिर भी) परिपूर्ण (अतएव) महादेव भी सदाशिव जगत् की सृष्टि आदि करने के लिये मूर्त्तिमान् होकर (सर्वत्र) भासित होते हैं ॥४०॥

ब्रह्माद्या देवताः सर्वा मुनयोऽपि मुमुक्षवः।
कायवन्तो हि कुर्वन्ति तपः सर्वार्थसाधकम्।।४१।।

भावार्थ : ब्रह्मा आदि समस्त देवतायें मोक्ष चाहने वाले समस्त मुनिगण भी सर्वार्थ साधक तप को शरीर धारण करके ही करते हैं ॥४१॥

तपो हि मूलं सर्वासां सिद्धीनां यज्जगत्त्रये।
तपस्तत्कायमूलं हि तस्मात् कायं न सन्त्यजेत्।।४२।।

भावार्थ : चूँकि लोकों में समस्त सिद्धियों का मूल कारण तप है और वह तप कायमूल (अर्थात् शरीर के द्वारा सम्पादित किया जाता) है इसलिये शरीर का त्याग नहीं करना चाहिये ॥४२॥

अकायस्थल - (५८)

औपचारिकदेहित्वाज्जगदात्मत्वभावनात्।
मायासम्बन्धराहित्यादकायो हि परः स्मृतः।।४३।।

भावार्थ : **(अकायस्थल वर्णन)**— पर अर्थात् सकाय परयोगी औपचारिक (=गौण रूप से) देह धारण करने, संसार को अपना स्वरूप समझने देह माया के सम्बन्ध से रहित होने के कारण अकाय माना गया है ।।४३।।

परस्य देहयोगोऽपि न देहाश्रयविक्रिया।
शिवस्येव यतस्तस्मादकायोऽयं प्रकीर्तितः।।४४।।

भावार्थ : जिस प्रकार शिव के पर होने के कारण उनमें देहसम्बन्धी विकार नहीं होते उसी प्रकार पर अर्थात् शिवस्वरूप हुए योगी के देह धारण करने पर भी (सामान्य जनों के) शरीर के द्वारा सम्पन्न होने वाली क्रियाओं का संस्काररूप विकार नहीं होता इस कारण यह योगी भी अकाय कहा गया है ।।४४।।

परलिङ्गे विलीनस्य परमानन्दचिन्मये।
कुतो देहेन सम्बन्धो देहिवद्भासनं भ्रमः।।४५।।

भावार्थ : परम आनन्द स्वरूप एवं चिन्मय परलिङ्ग अर्थात् परमशिव में विलीन योगी का देह से सम्बन्ध कहाँ रहता है? अर्थात् नहीं रहता। जो वह देहधारी दिखलायी पड़ता है वह भ्रम है ।।४५।।

देहाभिमानहीनस्य शिवभावे स्थितात्मनः।
जगदेतच्छरीरं स्याद् देहेनैकेन का व्यथा।।४६।।

भावार्थ : देहाभिमान से रहित अत एव शिवभाव में स्थित (योगी) के लिये यह सम्पूर्ण संसार ही उसका शरीर होता है फिर एक (दृश्यमान व्यक्तिगत) शरीर से क्या हानि लाभ? ।।४६।।

शिवज्ञानैकनिष्ठस्य नाहंकारभवभ्रमः।
न चेन्द्रियभवं दुःखं त्यक्तदेहाभिमानिनः।।४७।।

भावार्थ : जो शिवाद्वैत ज्ञान में सर्वदा लगा हुआ है उसको अहङ्कार से उत्पन्न भ्रम नहीं होता। जिसने देहाभिमान का त्याग कर दिया है उसको इन्द्रियजन्य दुःख नहीं होता ।।४७।।

न मनुष्यो न देवोऽहं न यक्षो नैव राक्षसः।
शिवोऽहमिति यो बुद्ध्यात् तस्य किं देहकर्मणा।।४८।।

भावार्थ : 'मैं न मनुष्य हूँ, न देवता, न यक्ष और न राक्षस, मैं केवल शिव हूँ'— ऐसा जो अपने को समझता है उसको शरीर कर्म से क्या लेना देना? (अर्थात् शरीर के द्वारा किये गये कर्म से वह उपलिप्त नहीं होता) ।।४८।।

परकायस्थल - (५९)

वशीकृतत्वात् प्रकृतेर्मायामार्गातिवर्तनात्।
परकायोऽयमाख्यातः सत्यज्ञानसुखात्मकः।।४९।।

भावार्थ : (परकायस्थल वर्णन)— प्रकृति को अपने अधीन करने एवं माया के मार्ग का अतिक्रमण करने के कारण सच्चिदानन्दस्वरूप यह योगी परकाय कहा जाता है ।।४९।।

परब्रह्मवपुर्यस्य प्रबोधानन्दभासुरम्।
प्राकृतेन शरीरेण किमेतेनास्य जायते।।५०।।

भावार्थ : जिसका प्रकृष्ट बोध अर्थात् पर ज्ञान एवं आनन्द से देदीप्यमान शरीर परब्रह्मस्वरूप हो गया है उसको प्रकृति के तत्त्वों से उत्पन्न इस स्थूल शरीर से क्या प्रयोजन? (अर्थात् इस शरीर से विहित कर्म से वह प्रभावित नहीं होता) ।।५०।।

सम्यग्ज्ञानाग्निसन्दग्धजन्मबीजकलेवरः।
शिवतत्त्वावलम्बी यः परकायः स उच्यते।।५१।।

भावार्थ : सम्यक् ज्ञान (अर्थात् 'सर्वं शिवमयम्' इस प्रकार का ज्ञान) रूपी अग्नि से जिसका जन्म का कारणभूत सूक्ष्म शरीर जल गया है तथा जो शिव तत्त्वावलम्बी है वह परकाय कहा जाता है ।।५१।।

इन्द्रियाणि मनोवृत्तिवासनाः कर्मसंभवाः।
यत्र यान्ति लयं तेन सकायोऽयं परात्मना।।५२।।

भावार्थ : कर्म के द्वारा उत्पन्न मानसिक भावना संस्कार तथा इन्द्रियाँ जिसमें लीन हो जाती हैं उस परमात्मा के कारण यह सकाय (कहा जाता या) हो जाता है ।।५२।।

पराहन्तामनुप्राप्य पश्येद् विश्वं चिदात्मकम्।
सदेहोऽतिभ्रमस्तस्य निश्चिता हि शिवात्मता।।५३।।

भावार्थ : पर अहन्ता (अर्थात् 'अहं परः शिवः' अथवा 'अहंसर्वम्' इस भावना) को प्राप्त कर योगी सम्पूर्ण विश्व को चिन्मय देखता है। उसकी शिवरूपता निश्चित है (अर्थात् वह निश्चित रूप से शिव हो गया) उसको सदेह समझना बहुत बड़ा भ्रम है ।।५४।।

स्वस्वरूपं चिदाकारं ज्योतिः साक्षाद्विचिन्तयन्।
देहवानपि निर्देहो जीवन्मुक्तो हि साधकः।।५४।।

भावार्थ : अपने स्वरूप को चिदाकार एवं साक्षात् ज्योतिः स्वरूप समझने वाला देहवान् भी वस्तुतः देहरहित ही होता है। वह साधक निश्चित रूप से जीवन्मुक्त है ॥५४॥

देहस्तिष्ठतु वा यातु योगिनः स्वात्मबोधिनः।
जीवन्मुक्तिर्भवेत् सद्यश्चिदानन्दप्रकाशिनी।।५५।।

भावार्थ : जिसको आत्मसाक्षात्कार हो गया है ऐसे योगी का शरीर रहे या जाय उसको चिदानन्द प्रकाश करने वाली जीवन्मुक्ति तत्काल प्राप्त हो जाता है ॥५५॥

आत्मज्ञानावसानं हि संसारपरिपीडनम्।
सूर्योदयेऽपि किं लोकस्तिमिरेणोपरुध्यते।।५६।।

भावार्थ : संसार की पीड़ा आत्मज्ञान के पहले तक ही है। क्या सूर्योदय होने पर भी संसार अन्धकार से आच्छन्न रहता है? (अर्थात् नहीं) ॥५६॥

देहाभिमाननिर्मुक्तः कलातीतपदाश्रयः।
कथं याति परिच्छेदं शरीरेषु महाबुधः।।५७।।

भावार्थ : जो देहाभिमान से रहित और कलातीत अर्थात् निष्कल पद पर प्रतिष्ठित हो गया है ऐसा महा विद्वान् शरीर के विषय में सीमित कैसे हो सकता है? ॥५७॥

धर्माचारस्थल - (६०)

तस्यैव परकायस्य समाचारो य इष्यते।
स धर्मः सर्वलोकानामुपकाराय कल्पते।।५८।।

भावार्थ : **(धर्माचारस्थल वर्णन)**— ऐसे ही परकाय शिवयोगी का जो आचरण होता है वह कर्म कहा जाता है। ऐसा धर्म समस्त लोगों का उपकार करने में समर्थ होता है ॥५८॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दया क्षमा।
दानं पूजा जपो ध्यानमिति धर्मस्य संग्रहः।।५९।।

भावार्थ : अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा, दान, पूजा (=शिवलिङ्गार्चन), जप (=पञ्चाक्षर का जप), ध्यान (शिव का ध्यान)— यह धर्म का संग्रह है। ॥५९॥

शिवेन विहितो यस्मादागमैर्धर्मसंग्रहः।
तस्मात्तमाचरन् विद्वान् तत्प्रसादाय कल्पते।।६०।।

भावार्थ : चूँकि आगमशास्त्रों ने शिव के द्वारा विहित धर्मसंग्रह का वर्णन एवं उपदेश किया हैं अतएव उसका आचरण करने वाला विद्वान् उस (शिव) को प्रसन्न करने में समर्थ होता है ॥६०॥

अधर्मं न स्पृशेत् किञ्चिद् विहितं धर्ममाचरेत्।
तं च कामविनिर्मुक्तं तमपि ज्ञानपूर्वकम्॥६१॥

भावार्थ : अधर्म का रञ्चमात्र भी स्पर्श नहीं करना चाहिये। (शास्त्रों के द्वारा) विहित धर्म का आचरण करना चाहिये और उस (धर्म) के फल की इच्छा से रहित होकर करना चाहिये और यह (निष्काम कर्म) ज्ञानी होकर करना चाहिये ॥६१॥

आत्मवत् सर्वभूतानि संपश्येद् योगवित्तमः।
जगदेकात्मताभावान्निग्रहादिविरोधतः ॥६२॥

भावार्थ : योग को जानने वाला साधक संसार को एकमात्र परमात्मरूप समझता हुआ निग्रह अनुग्रह को अवसर न देता हुआ सम्पूर्ण प्राणियों को आत्मवत् देखे ॥६२॥

एक एव शिवः साक्षज्जगदेतदिति स्फुटम्।
पश्यतः किं न जायेत ममकारो हि विभ्रमः॥६३॥

भावार्थ : एक ही शिव इस जगत् के रूप में हैं ऐसी स्पष्ट दृष्टि रखने वाले योगी को क्या प्राप्त नहीं होता अर्थात् सब कुछ उसे मिल जाता है। ममकार (अर्थात् यह मेरा है, यह मेरा नहीं—ऐसा ज्ञान) भ्रमात्मक होता है ॥६३॥

धर्म एव समस्तानां यतः संसिद्धिकारणम्।
निस्पृहोऽपि महायोगी धर्ममार्गं च न त्यजेत्॥६४॥

भावार्थ : चूँकि धर्म ही सारी सिद्धियों का कारण होता है इसलिये योगी को चाहिये कि निःस्पृह होते हुए भी वह धर्ममार्ग का परित्याग न करे (अर्थात् धर्माचरण करता हाय) ॥६४॥

ज्ञानामृतेन तृप्तोऽपि योगी धर्मं न संत्यजेत्।
आचारं महतां दृष्ट्वा प्रवर्तन्ते हि लौकिकाः॥६५॥

भावार्थ : ज्ञान के अमृत से तृप्त भी योगी को धर्म का त्याग नहीं करना चाहिये क्योंकि बड़े लोगों का व्यवहार देखकर ही मनुष्य इस संसार में प्रवृत्त होते हैं ॥६५॥

सदाचारप्रियः शम्भुः सदाचारेण पूज्यते।
सदाचारं विना तस्य प्रसादो नैव जायते॥६६॥

भावार्थ : सदाचार प्रिय शिव की सदाचार से ही पूजा की जाती है। बिना सदाचार के वे प्रसन्न नहीं होते ॥६६॥

भावाचारस्थल - (६१)

भाव एवास्य सर्वेषां भावाचारः प्रकीर्तितः।
भावो मानसचेष्टात्मा परिपूर्णः शिवाश्रयः॥६७॥

भावार्थ : **(भावाचारस्थल वर्णन)**— इस धर्माचारस्थली योगी का भाव ही सबके लिये भावाचार कहा गया है। भाव का अर्थ है— मानसिक चेष्टा अर्थात् विचारात्मिका क्रिया। यह परिपूर्ण एवं शिव को आश्रित करके होती है ॥६७॥

भावनाविहितं कर्म पावनादपि पावनम्।
तस्माद् भावनया युक्तं परधर्मं समाचरेत्॥६८॥

भावार्थ : भावना के साथ विहित कर्म (अर्थात् इस कर्म को करने वाले, कराने वाले तथा स्वयं कर्म भी शिव ही हैं—ऐसी भावना से किया गया कर्म) पवित्र से भी पवित्र हैं इस कारण शिवभावना से युक्त पर धर्म का आचरण करना चाहिये ॥६८॥

भावेन हि मनः शुद्धिर्भावशुद्धिश्च कर्मणा।
इति सञ्चिन्त्य मनसा योगी भावं न सन्त्यजेत्॥६९॥

भावार्थ : भाव के द्वारा मन की शुद्धि होती है और भाव की शुद्धि (शिवाराधन आदि) कर्म से होती है। ऐसा सोच कर योगी कभी भी भाव का त्याग न करे ॥६९॥

शिवभावनया सर्वं नित्यनैमित्तिकादिकम्।
कुर्वन्नपि महायोगी गुणदोषैर्न बाध्यते॥७०॥

भावार्थ : महायोगी शिवभावना के साथ समस्त नित्य नैमित्तिक आदि (=काम्य) कर्मों को करता हुआ भी (उन कर्मों के) गुण अथवा दोष (अर्थात् उनसे जन्य पुण्य और पाप से) बाधित नहीं होता ॥७०॥

अन्तः प्रकाशमानस्य संवित्सूर्यस्य सन्ततम्।
भावेन यदुपस्थानं तत्सन्ध्यावन्दनं विदुः॥७१॥

भावार्थ : अपने अन्दर प्रकाशमान संविद्रूपी सूर्य का शिवभावना के द्वारा निरन्तर जो उपस्थान[१] है (विद्वान् लोग) उसको सन्ध्या का वन्दन कहते हैं ॥७१॥

---

१. प्रातःकाल सूर्य को अर्घ्य देने के बाद 'उद्वयं.............।', 'उदुत्यं.........।', 'चित्रं देवानां..........।' तथा 'तच्चक्षुर्देवहितं.........।' इन चार मन्त्रों का, दोनों हाथ उठाकर, उच्चारण करना सूर्योपस्थान कहलाता है।

आत्मज्योतिषि सर्वेषां विषयाणां समर्पणम्।
अन्तर्मुखेन भावेन होमकर्मेति गीयते।।७२।।

भावार्थ : आत्मरूपी ज्योति अर्थात् चिदग्नि में अन्तर्मुखी भाव से समस्त विषयों का समर्पण होम कर्म कहा जाता है ।।७२।।

भावयेत् सर्वकर्माणि नित्यनैमित्तिकानि च।
शिवप्रीतिकराण्येव सङ्गराहित्यसिद्धये।।७३।।

भावार्थ : संसार की आसक्ति से रहित होने के लिये साधक को चाहिये कि वह नित्य नैमित्तिक आदि सारे कर्मों को शिव को प्रसन्न करने वाला समझे ।।७३।।

शिवे निवेश्य सकलं कार्याकार्यं विवेकत:।
वर्तते यो महाभाग: स सङ्गरहितो भवेत्।।७४।।

भावार्थ : जो महाभाग्यशाली साधक विवेकपूर्वक करणीय अकरणीय सारे कर्मों को शिव को समर्पित कर देता है वह आसक्तिरहित हो जाता है ।।७४।।

आत्मानमखिलं वस्तु शिवमानन्दचिन्मयम्।
एकभावेन सततं संपश्यन्नेव पश्यति।।७५।।

भावार्थ : आत्मा, समस्त संसार तथा चिन्मय आनन्द स्वरूप शिव को एक भाव (अर्थात् यह सब शिव ही है—ऐसी भावना) से निरन्तर देखने वाला ही वास्तविक दर्शन करता है। (अर्थात् वही यथार्थत: शिवद्रष्टा है) ।।७५।।

ज्ञानाचारस्थल - (६२)

अस्य ज्ञानसमाचारो योगिन: सर्वदेहिनाम्।
ज्ञानाचारो यदुक्तोऽयं ज्ञानाचार: स कथ्यते।।७६।।

भावार्थ : (ज्ञानाचारस्थल वर्णन)— (भावाचार सम्पन्न) इस योगी का ज्ञानाचार ही जो समस्त मनुष्यों के लिये ज्ञानाचार कहा गया है। यही ज्ञानाचार स्थल है। ।।७६।।

शिवाद्वैतपरं ज्ञानं ज्ञानमित्युच्यते बुधै:।
सिद्धेन वाप्यसिद्धेन फलं ज्ञानान्तरेण किम्।।७७।।

भावार्थ : विद्वान् लोग शिवाद्वैतपरक ज्ञान को ही यथार्थ ज्ञान कहते हैं। दूसरे ज्ञान चाहे सिद्धि दें या न दें अथवा शास्त्र सम्मत हों या शास्त्र विरूद्ध उनसे क्या फल? (अर्थात् वे शश्वत् व्यर्थ हैं) ।।७७।।

निर्मलं हि शिवज्ञानं निःश्रेयसकरं परम्।
रागद्वेषादिकलुषं भूयः संसृतिकारणम्।।७८।।

भावार्थ : शिव ज्ञान ही निर्मल (अर्थात् आणव, मायीय और कार्म इन तीन मलों से रहित), अतएव मोक्षदायक है। जो ज्ञान राग द्वेष आदि के कारण मलिन है वह संसार अर्थात् जन्म-मृत्यु का कारण होता है ।।७८।।

परिपूर्णं महाज्ञानं परतत्त्वप्रकाशकम्।
अवलम्ब्य प्रवृत्तो यो ज्ञानाचार स उच्यते।।७९।।

भावार्थ : पर तत्त्व (अर्थात् परम शिव नामक तत्त्व) का प्रकाशक अर्थात् आभास कराने वाले परिपूर्ण महाज्ञान को आधार बनाकर जो प्रवृत्त होता है वह ज्ञानाचार कहा जाता है ।।७९।।

निर्विकल्पे परे धाम्नि निष्कले शिवनामनि।
ज्ञानेन योजयेत् सर्वं ज्ञानाचारी प्रकीर्तितः।।८०।।

भावार्थ : जो सब कुछ को निष्कल निर्विकल्प शिव नामक पर धाम में जोड़ देता है वह ज्ञानाचारी कहा जाता है ।।८०।।

ज्ञानं मुक्तिप्रदं प्राप्य गुरुदृष्टिप्रसादतः।
कः कुर्यात् कर्मकार्पण्ये वाञ्छां संसारवर्धने।।८१।।

भावार्थ : गुरु की कृपादृष्टि से मुक्तिदायक ज्ञान को प्राप्त कर कौन व्यक्ति कर्म के कारण दुखदायी संसार को बढ़ाने की इच्छा करेगा? ।।८१।।

कर्म ज्ञानाग्निना दग्धं न प्ररोहेत् कथञ्चन।
यदाहुः संसृतेर्मूलं प्रवाहानुगतं बुधाः।।८२।।

भावार्थ : विद्वान् लोग प्रवाहानुगत अर्थात् अनादि परम्परा से प्राप्त जिस कर्म को संसार का कारण मानते हैं वह कर्म ज्ञानरूपी अग्नि से जल जाने पर किसी भी प्रकार संसार का अङ्कुरण नहीं करता ।।८२।।

ज्ञानेन हीनः पुरुषः कर्मणा बद्ध्यते सदा।
ज्ञानिनः कर्मसङ्कल्पा भवन्ति किल निष्फलाः।।८३।।

भावार्थ : ज्ञान से रहित पुरुष सदा कर्म द्वारा बन्धन में डाल दिया जाता है। ज्ञानी के कर्मसङ्कल्प निश्चित रूप से निष्फल होते हैं ।।८३।।

शुद्धाचारे शुद्धभावो विवेकी
ज्योतिः पश्यन् सर्वतश्चैवमेकम्।
ज्ञानध्वस्तप्राकृतात्मप्रपञ्चो
जीवन्मुक्तश्चेष्टते दिव्ययोगी।।८४।।

भावार्थ : विशुद्ध ज्ञानाचार होने पर शुद्ध भावना वाला अतएव विवेकपूर्ण दिव्ययोगी सर्वत्र एक (शिवात्मक) ज्योति का साक्षात्कार करता हुआ तथा ज्ञान के द्वारा प्राकृत प्रपञ्च को नष्ट करने वाला होकर जीवन्मुक्त हो जाता है फिर भी वह सामान्य जन के समान व्यवहार करता है ।।४२।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ लिङ्गस्थलान्तर्गत माहेश्वरस्थले क्रियागमस्थलादि-नवविधस्थलप्रसङ्गो नाम षोडशः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के माहेश्वरस्थलाश्रितनवलिङ्गस्थलप्रसङ्ग नामक षोडश परिच्छेद की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।१६।।



सप्तदश: परिच्छेद:

लिंगस्थलांतर्गत

प्रसादिस्थल

अगस्त्य उवाच—

स्थलानि तानि चोक्तानि यानि माहेश्वरस्थले।
वदस्व स्थलभेदं मे प्रसादिस्थलसंश्रितम्।।१।।

भावार्थ : (प्रसादिस्थल वर्णन)— अगस्त्य ने कहा— (हे आचार्य!) आपने माहेश्वर स्थल में जितने स्थल हैं उनका वर्णन कर दिया। अब प्रसादिस्थल में आने वाले स्थल भेद को मुझको बतलाइये ॥१॥

रेणुक उवाच—

स्थलभेदा नव प्रोक्ता: प्रसादिस्थलसंश्रिता:।
कायानुग्रहणं पूर्वमिन्द्रियानुग्रहं तत:।।२।।

प्राणानुग्रहणं पश्चात् तत: कायार्पितं मतम्।
करणार्पितमाख्यातं ततो भावार्पितं मतम्।।३।।

शिष्टस्थलं तत: प्रोक्तं शुश्रूषास्थलमेव च।
तत: सेव्यस्थलं चैषां क्रमश: शृणु लक्षणम्।।४।।

भावार्थ : श्री रेणुकाचार्य ने कहा— प्रसादिस्थल के अन्दर नव स्थलभेद कहे गये हैं। वे हैं— १) कायानुग्रहस्थल, २) इन्द्रियानुग्रहस्थल, ३) प्राणानुग्रहस्थल, ४) कायार्पितस्थल, ५) करणार्पितस्थल, ६) भावार्पित-स्थल, ७) शिष्यस्थल, ८) शुश्रूषस्थल और ९) सेव्यस्थल। अब इनका क्रम से लक्षण सुनो ॥२-४॥

कायानुग्रहस्थल - (६३)

अनुगृह्णति यल्लोकान् स्वकायं दर्शयन्नसौ।
तस्मादेष समाख्यात: कायानुग्रहनामक:।।५।।

भावार्थ : (कायानुग्रहस्थल वर्णन)— यह अर्थात् ज्ञानाचारसम्पन्न शिवयोगी (परब्रह्मरूप) अपने शरीर का दर्शन कराते हुए जो लोगों के ऊपर अनुग्रह करते हैं इसलिये यह कायानुग्रह नामक स्थल कहा गया है ॥५॥

शिवो यथाऽनुगृह्णाति मूर्तिमाविश्य देहिनः।
तथा योगी शरीरस्थः सर्वानुग्राहको भवेत्।।६।।

भावार्थ : जिस प्रकार शिव (मूर्तियों के) शरीर अर्थात् विग्रह में आविष्ट होकर शरीरियों के ऊपर अनुग्रह करते हैं उसी प्रकार योगी भी (शिक्षादीक्षादि संस्कृत अपने) दिव्य शरीर में स्थित होकर सबका अनुग्राहक होता है ॥६॥

शिवः शरीरयोगेऽपि यथा सङ्गविवर्जितः।
तथा योगी शरीरस्थो निःसङ्गो वर्तते सदा।।७।।

भावार्थ : जिस प्रकार शिव (स्वयं) शरीर धारण कर भी (अपने उस शरीर के प्रति) आसक्ति से रहित होते हैं उसी प्रकार योगी भी शरीर धारण कर सदा (अपने शरीर के प्रति) अनासक्त रहता है ॥७॥

शिवभावनया युक्तः स्थिरया निर्विकल्पया।
शिवो भवति निर्धूतमायावेशपरिप्लवः।।८।।

भावार्थ : दृढ़ और विकल्परहित शिवभावना से युक्त अतएव माया के आवेश के उपद्रव से रहित वह शिव ही हो सकता है ॥८॥

चित्तवृत्तिषु लीनासु शिवे चित्सुखसागरे।
अविद्याकल्पितं वस्तु नान्यत् पश्यति संयमी।।९।।

भावार्थ : चित् और आनन्द के समुद्र के समान शिव में चित्तवृत्तियों के लीन हो जाने के पश्चात् यह संयमी (शिवयोगी) अविद्या के द्वारा रचित किसी अन्य वस्तु को नहीं देखता (प्रत्युत सम्पूर्ण संसार उसे शिवमय शिवस्वरूप ही दिखाई देता है) ॥९॥

नेदं रजतमित्युक्ते यथा शुक्तिः प्रकाशते।
नेदं जगदिति ज्ञाते शिवतत्त्वं प्रकाशते।।१०।।

भावार्थ : 'यह चाँदी नहीं है'— ऐसा कहने पर जैसे (द्रष्टा को) शुक्ति की प्रतीति होती है उसी प्रकार 'यह संसार नहीं है'— ऐसा ज्ञान होने पर शिव तत्त्व प्रकाशित होता है ॥१०॥

यथा स्वप्रकृतं वस्तु प्रबोधेनैव शाम्यति।
तथा शिवस्य विज्ञाने संसारं नैव पश्यति।।११।।

भावार्थ : जैसे स्वप्न के द्वारा रची गयी वस्तु (मिथ्या होती है और) जागने पर नहीं रहती उसी प्रकार योगी शिव का ज्ञान होने पर संसार को नहीं देखता (यह संसार उसे स्वप्नगत विषय की भाँति मिथ्या प्रतीत होता है) ॥११॥

अज्ञानमेव सर्वेषां संसारभ्रमकारणम्।
तन्निवृत्तौ कथं भूयः संसारभ्रमदर्शनम्।।१२।।

भावार्थ : समस्त जीवों के संसारभ्रम का कारण अज्ञान (=यथार्थ वस्तु का ज्ञान न होना) ही है। उस अज्ञान की निवृत्ति हो जाने पर पुनः संसारभ्रम का दर्शन कैसे हो सकता है? ॥१२॥

विशेष— जैसे शुक्तिकानुयोगिकरजतप्रतियोगिक सम्बन्ध की निवृत्ति होने पर शुक्ति का अवशिष्ट रह जाती है उसी प्रकार शिवतत्त्वानुयोगिक संसार प्रतियोगिक सम्बन्ध के निवृत्त होने पर शिव ही शेष बचता है।

गलिताहङ्कृतिग्रन्थिः क्रीडाकल्पितविग्रहः।
जीवन्मुक्तश्चरेद्योगी देहिवन्निरूपाधिकः।।१३।।

भावार्थ : जिसकी अहङ्कार नामक ग्रन्थि (=मैं यह शरीर हूँ मेरा नाम देवदत्त है इत्यादि रूप दृढ़ भावना) नष्ट हो गयी है और जिसने लोकलीला के लिये शरीर धारण किया है ऐसा उपाधिरहित योगी जीवन्मुक्त होकर संसार में व्यवहार और विचरण करता है ॥१३॥

इन्द्रियानुग्रहस्थल - (६४)

दर्शनात्परकायस्य करणानां विवेकतः।
इन्द्रियानुग्रहः प्रोक्तः सर्वेषां तत्त्ववेदिभिः।।१४।।

भावार्थ : (इन्द्रियानुग्रहस्थल वर्णन)— परकाय योगी के दर्शन एवं समस्त इन्द्रियों के विवेक (=ये इन्द्रियाँ पृथक् कोई वस्तु नहीं है। ये शिव ही हैं— इस प्रकार के ज्ञान) को तत्त्ववेत्ता लोगों ने इन्द्रियानुग्रह कहा है ॥१४॥

इन्द्रियाणां समस्तानां स्वार्थेषु सति सङ्गमे।
रागो वा जायते द्वेषस्तौ योगी परिवर्जयेत्।।१५।।

भावार्थ : समस्त इन्द्रियों का स्वार्थ अर्थात् अपने-अपने विषय (= गन्ध रस रूप स्पर्श शब्द) के साथ सन्निकर्ष होने पर या तो राग उत्पन्न होता है या द्वेष। (विषयप्राप्ति के लिये राग और प्राप्ति में बाधक उपस्थित होने पर द्वेष उत्पन्न होता है)। योगी को चाहिये कि वह इन दोनों का त्याग करे ॥१५॥

इन्द्रियाणां बहिर्वृत्तिः प्रपञ्चस्य प्रकाशिनी।
अन्तः शिवे समावेशो निष्प्रपञ्चस्य कारणम्।।१६।।

भावार्थ : इन्द्रियों की बाह्य विषयों में प्रवृत्ति प्रपञ्च (अर्थात् संसार और उसके सुख-दुःख) को उत्पन्न करती है। यदि वही वृत्ति अन्तःस्थित शिवसमावेश वाली हो तो निष्प्रपञ्च अर्थात् संसारराहित्य का कारण बनती है ।।१६।।

क्षणमन्तः शिवं पश्यन् केवलेनैव चेतसा।
बाह्यार्थानामनुभवं क्षणं कुर्वन् दृगादिभिः।।१७।।

सर्वेन्द्रियनिरूढोऽपि सर्वेन्द्रियविहीनवान्।
शिवाहितमना योगी शिवं पश्यति नापरम्।।१८।।

भावार्थ : केवल चित्त के द्वारा एक क्षण के लिये शिव का अपने अन्दर साक्षात्कार करने वाला तथा बाह्य विषयों का नेत्र आदि से एक क्षण अनुभव करने वाला योगी समस्त इन्द्रियों पर आरूढ़ हुआ भी सब इन्द्रियों से रहित होता हुआ शिव के प्रति समर्पित मल वाला होकर शिव को ही सर्वत्र देखता है किसी दूसरे पदार्थ को नहीं ।।१७-१८।।

न जरा मरणं नास्ति न पिपासा न च क्षुधा।
शिवाहितेन्द्रियस्यास्य निर्मानस्य महात्मनः।।१९।।

भावार्थ : शिव के प्रति समर्पित इन्द्रिय वाले अतएव दैहिक आदि अभिमान से रहित इस महात्मा को न जरा, न मृत्यु, न पिपासा और क्षुधा का कष्ट होता है क्योंकि जरा मृत्यु शरीर के और क्षुधा पिपासा प्राण के धर्म है ।।१९।।

मनो यत्र प्रवर्तेत तत्र सर्वेन्द्रियस्थितिः।
शिवे मनसि सल्लीने क्व चेन्द्रियविचारणा।।२०।।

भावार्थ : जिस विषय में मन प्रवृत्त होता है इन्द्रियाँ भी उसी में स्थिति चाहती हैं। जब यह मन शिव में लीन हो गया तब (आधारहीन) इन्द्रियों का व्यवहार कहाँ ।।२०।।

यद्यत् पश्यन् दृशा योगी मनसा चिन्तयत्यपि।
तत्तत् सर्वं शिवाकारं संविद्रूपं प्रकाशते।।२१।।

भावार्थ : शिवयोगी नेत्रों से जिस-जिस वस्तु को देखता हुआ मन से उसका ध्यान करता रहता है वह-वह समस्त वस्तु उसको शिवाकार संवित् रूप में भासित होती है ।।२१।।

करणैः सहितं प्राणं मनस्याधाय संयमी।
योजयेत् स शिवः साक्षात् यत्र नास्ति जगद्भ्रमः।।२२।।

भावार्थ : (नेत्र आदि) इन्द्रियों के साथ प्राण को मन में समाहित कर जो शिवयोगी जिसमें इनकी योजना करता है वह वस्तु साक्षात् शिवरूप (में प्रकाशित) होती है। इसमें संसार का भ्रम नहीं रहता ॥२२॥

सर्वेन्द्रियप्रवृत्त्या च बहिरन्तः शिवं यजन्।
स्वच्छन्दचारी सर्वत्र सुखी भवति संयमी।।२३।।

भावार्थ : वह संयमी अर्थात् शिवयोगी सम्पूर्ण इन्द्रियों के द्वारा अपने अन्दर तथा बाह्य जगत् में सर्वत्र शिव की पूजा उनका ध्यान उनके लिये दान आदि करता है वह सर्वत्र निर्बाध भ्रमण करता और सुखी रहता है ॥२३॥

प्राणानुग्रहस्थल - (६५)

शिवस्य परकायस्य यत् तात्पर्यावलोकनम्।
तत्प्राणानुग्रहः प्रोक्तः सर्वेषां तत्त्वदर्शिभिः।।२४।।

भावार्थ : **(प्राणानुग्रहस्थल वर्णन)**— परकाय (अर्थात् इन्द्रियानुग्रहसम्पन्न) शिव (अर्थात् शिवयोगी) का जो तात्पर्यावलोकन (अर्थात् प्राणवायु का निरोध) है वह तत्त्वद्रष्टा मनीषियों के द्वारा सबका प्राणानुग्रह कहा गया है ॥२४॥

प्राणो यस्य लयं याति शिवे परमकारणे।
कुतस्तस्येन्द्रियस्फूर्तिः कुतः संसारदर्शनम्।।२५।।

भावार्थ : जिस योगी का प्राण परमकारण अर्थात् पञ्चकारणों के भी कारणभूत शिव में लीन हो जाता है उसका इन्द्रियव्यापार कहाँ और संसारदर्शन कहाँ? ॥२५॥

करणेषु निवृत्तेषु स्वार्थसङ्गात् प्रयत्नतः।
तैः समं प्राणमारोप्य स्वान्ते शान्तमतिः स्वयम्।।२६।।

भावार्थ : प्रयत्न अर्थात् कुम्भक आदि के द्वारा इन्द्रियों के अपने-अपने विषयों से निवृत्त होने पर उनके अर्थात् इन्द्रियों के साथ प्राण को भी एकरूप कर योगी स्वयं शान्तमना हो जाता है ।।२६।।

शान्तत्वात् प्राणवृत्तीनां मनः शाम्यति वृत्तिभिः।
तच्छान्तौ योगिनां किञ्चिच्छिवादन्यन्न दृश्यते।।२७।।

भावार्थ : प्राण की वृत्तियों (=श्वास प्रश्वास अथवा रेचक पूरक) के शान्त होने पर मन भी उन वृत्तियों के साथ शान्त हो जाता है। उस अर्थात् मन के शान्त होने पर योगियों को शिव के अतिरिक्त दूसरा सब कुछ भी दिखायी नहीं देता ॥२७॥

प्राण एव मनुष्याणां देहधारणकारणम्।
तदाधारः शिवः प्रोक्तः सर्वकारणकारणम्।।२८।।

भावार्थ : प्राण ही मनुष्यों के शरीर धारण करने का कारण है और समस्त कारणों के कारण स्वरूप शिव उस (=प्राण) के कारण कहे गये हैं ॥२८॥

निराधारः शिवः साक्षात् प्राणस्तेन प्रतिष्ठितः।
तदाधारा तनुर्ज्ञेया जीवो येनैव चेष्टते।।२९।।

भावार्थ : शिव तो निराधार हैं और प्राण उनसे प्रतिष्ठित है। शरीर को प्राण के आधार वाली समझना चाहिये। जीव इसी प्राण के कारण चेष्टा करता है ॥२९॥

शिवे प्राणो विलीनोऽपि योगिनो योगमार्गतः।
स्वशक्तिवासनायोगाद् धारयत्येव विग्रहम्।।३०।।

भावार्थ : योगी के प्राण अपने योगमार्ग से शिव में विलीन होने पर भी अपने शक्ति के संस्कार के बल से शरीर का धारण करता ही है ॥३०॥

स चाभ्यासवशाद्भूयः सर्वतत्त्वातिवर्तिनि।
निष्कलङ्के निराकारे निरस्ताशेषविक्लवे।।३१।।

चिद्विलासपरिस्फूर्तिपरिपूर्णसुखाद्वये ।
शिवे विलीनः सर्वात्मा योगी चलति न क्वचित्।।३२।।

भावार्थ : और वह प्राणवायु पुनः अभ्यास के द्वारा सर्वतत्त्वाति-शायी निष्कलङ्क निराकार समस्त बाधारहित चिद् शक्ति के विकास के परिस्फुरण से परिपूर्ण आनन्दरूप अद्वितीय शिव में जब विलीन हो जाता है तब ऐसा सर्वात्मा योगी कहीं भी नहीं चलता (अर्थात् स्थिर होता हुआ सर्वव्यापी हो जाता है)[१] ॥३१-३२॥

प्रध्वस्तवासनासङ्गात् प्राणवृत्तिपरिक्षयात्।
शिवैकीभूतसर्वात्मा स्याणुवद्भाति संयमी।।३३।।

१. तैलङ्गस्वामी, भगवान् नित्यानन्द, बाबा नीबकरौरी, शिवस्वरूप बाबा हैडाखान इत्यादि इसी कोटि के अवतारी पुरुष थे।

भावार्थ : वासना की आसक्ति के नष्ट हो जाने तथा प्राणवृत्ति का परिक्षय अर्थात् विराम हो जाने के कारण शिव के साथ एक हुआ सर्वात्मा योगी स्थाणु की भाँति प्रतीत होता है (अर्थात् निश्चल हो जाता है) ॥३३॥

कायार्पितस्थल - (६६)

शिवस्य पररूपस्य सर्वानुग्रहिणोऽर्चने।
त्यागो देहाभिमानस्य कायार्पितमुदाहृतम्।।३४।।

भावार्थ : **(कायार्पितस्थल वर्णन)**—सबके ऊपर अनुग्रह करने वाले पररूप शिव की पूजा के समय देहाभिमान का त्याग कायार्पित कहा गया है ॥३४॥

यदा योगी निजं देहं शिवाय विनिवेदयेत्।
तदा भवति तद्रूपं शिवरूपं न संशयः।।३५।।

भावार्थ : योगी जब अपने शरीर को शिव के लिये अर्पित कर देता है तब उसका वह रूप शिवरूप हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥३५॥

इन्द्रियप्रीतिहेतूनि विषयासङ्गजानि च।
सुखानि सुखचिद्रूपे शिवयोगी निवेदयेत्।।३६।।

भावार्थ : योगी को चाहिये कि वह इन्द्रियों को आनन्द पहुँचाने के साधनभूत तथा विषयों के आसङ्ग (अर्थात् पूर्ण लिप्तता) से उत्पन्न सुखों को चिदानन्द रूप शिव को अर्पित कर दे ॥३६॥

दर्शनात् स्पर्शनात् भुक्तेः श्रवणाद् घ्राणनादपि।
विषयेभ्यो यदुत्पन्नं शिवे तत्सुखमर्पयेत्।।३७।।

भावार्थ : योगी को चाहिये कि वह दर्शन स्पर्श भोजन श्रवण एवं घ्राणन तथा धन जन आदि अन्य विषयों से उत्पन्न जो सुख उसे शिव को समर्पित कर दे ॥३७॥

देहद्वारेण यद्यत् स्यात् सुखं प्रासङ्गमात्मनः।
तत्तन्निवेदयन् शम्भोर्योगी भवति निर्मलः।।३८।।

भावार्थ : देह के द्वारा जो-जो सुख आत्मा को प्राप्त होता है योगी उस-उस सुख को शिव को निवेदित करे। ऐसा योगी निर्मल हो जाता है ॥३८॥

करणार्पितस्थल - (६७)

आसञ्जनं समस्तानां करणानां परात्परे।
शिवे यत् तदिदं प्रोक्तं करणार्पितमागमे।।३९।।

भावार्थ : (करणार्पितस्थल वर्णन)— परात्पर शिवलिङ्ग में समस्त इन्द्रियों का जो संयोजन है वह शैवागम में करणार्पित कहा गया है ।।३९।।

यद्यत्करणमालम्ब्य भुङ्क्ते विषयजं सुखम्।
तत्तच्छिवे समर्प्यैष करणार्पक उच्यते।।४०।।

भावार्थ : (शिवयोगी) जिस-जिस इन्द्रिय को आधार बनाकर विषय से उत्पन्न सुख का अनुभव करता है उस-उस इन्द्रिय को शिव के लिये अर्पण करने वाला यह करणार्पक कहा जाता है ।।४०।।

अहङ्कारमदोद्रिक्तमन्तःकरणवारणम् ।
बध्नीयाद् यः शिवालाने स धीरः सर्वसिद्धिमान्।।४१।।

भावार्थ : अहङ्कार रूपी मद से मत्त अन्तःकरण रूपी हाथी को जो शिवरूपी आलान (अर्थात् बन्धनशृङ्खला) में बाँधता है वह धीर पुरुष समस्त सिद्धियों को प्राप्त करता है (अथवा समस्त सिद्धियों का स्वामी वह धीर कहा जाता है) ।।४१।।

इन्द्रियाणां समस्तानां मनः प्रथममुच्यते।
वशीकृते शिवे तस्मिन् किमन्यैस्तद्वशानुगैः।।४२।।

भावार्थ : समस्त इन्द्रियों में मन प्रथम (अर्थात् प्रधान) इन्द्रिय कहा जाता है। उसके शिव के वश में होने पर उसके अधीन रहने वाली अन्य इन्द्रियों की क्या बात? (अर्थात् वे तो स्वयं शिव के वश में हो जाती है) ।।४२।।

इन्द्रियाणां वशीकारो निवृत्तिरिति गीयते।
लक्षीकृते शिवे तेषां कुतः संसारगाहनम्।।४३।।

भावार्थ : इन्द्रियों का वश में होना या किया जाना निवृत्ति कही जाती है। जब वे इन्द्रियाँ शिव को समर्पित हो गयीं तब उनका संसार में डूबना कहाँ? (अर्थात् शिवार्पित होने पर वे भी शिवमय हो जाती है) ।।४३।।

संसारविषकान्तारसमुच्छेदकुठारिका ।
उपशान्तिर्भवेत् पुंसामिन्द्रियाणां वशीकृतौ।।४४।।

भावार्थ : मनुष्यों की इन्द्रियों के वश में होने पर उनको संसाररूपी विषवृक्षों के जङ्गल को काटने के लिये कुल्हाडीरूपी उपशान्ति प्राप्त होती है ।।४४।।

इन्द्रियैरेव जायन्ते पापानि सुकृतानि च।
तेषां समर्पणादीशे कुतः कर्मनिबन्धनम्।।४५।।

भावार्थ : इन्द्रियों के ही द्वारा पाप और पुण्य दोनों होते हैं। उनको ईश्वर में समर्पित कर देने पर कर्मबन्धन कहाँ? (क्योंकि ऐसी स्थिति में उनके द्वारा किये गये कर्मों का उत्तरदायित्व शिव का हो जाता है) ॥४५॥

प्रकाशमाने चिद्वह्नौ बहिरन्तर्जगन्मये।
समर्प्य विषयान् सर्वान् मुक्तवज्जायते जनः।।४६।।

भावार्थ : बाह्य और आभ्यन्तर जगत् वाली एवं प्रकाशमान चिदग्नि में सम्पूर्ण विषयों का समर्पण कर मनुष्य जीवन्मुक्त के समान हो जाता है ॥४६॥

चित्तद्रव्यं समादाय जगज्जातं महाहविः।
चिद्वह्नौ जुह्वतामन्तः कुतः संसारविप्लवः।।४७।।

भावार्थ : पञ्चतन्मात्रात्मकसंसार (के अन्दर वर्त्तमान शब्द स्पर्श आदि विषय) समूह तथा चित्त रूपी (हवनीय) द्रव्य का अन्दर स्थित चैतन्यरूपी अग्नि मे होम करने वालों के लिये संसार का उपद्रव कहाँ? ॥४७॥

आत्मज्योतिषि जिद्रूपे प्राणवायुनिबोधिते।
जुह्वन् समस्तविषयान् तन्मयो भवति ध्रुवम्।।४८।।

भावार्थ : प्राणवायु से उद्‌बोधित चिद्‌रूप आत्मज्योति अर्थात् शिवाग्नि में समस्त विषयों का होम करने वाला निश्चित रूप से तन्मय अर्थात् चिन्मय अर्थात् शिवस्वरूप हो जाता है ॥४८॥

इन्द्रियाणि समस्तानि शरीरं भोगसाधनम्।
शिवपूजाङ्गभावेन भावयन् मुक्तिमाप्नुयात्।।४९।।

भावार्थ : समस्त इन्द्रियों तथा भोगसाधन शरीर की शिवपूजा के अङ्ग के रूप में भावना करने वाला मोक्ष प्राप्त करता है ॥४९॥

भावार्पितस्थल - (६८)

शिवे निश्चलभावेन भावानां यत्समर्पणम्।
भावार्पितमिदं प्रोक्तं शिवसद्भाववेदिभिः।।५०।।

भावार्थ : (भावार्पितस्थल वर्णन)— शिवलिङ्ग के विषय में दृढ़ भावना के साथ जो भावों का समर्पण है, शिव सद्‌भाव के वेत्तागण इसको भावार्पित कहते हैं ॥५०॥

चित्तस्थसकलार्थानां मननं यत्तु मानसे।
तदर्पणं शिवे साक्षन्मानसो भाव उच्यते।।५१।।

भावार्थ : चित्त में स्थित सकल विषयों का मन में जो मनन होता है शिव में उसका साक्षात् अर्पण मानस भाव कहा जाता है ।।५१।।

भाव एव हि जन्तूनां कारणं बन्धमोक्षयोः।
भावशुद्धौ भवेन्मुक्तिर्विपरीते तु संसृतिः।।५२।।

भावार्थ : भाव ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है। भावों के शुद्ध होने पर (अर्थात् शिवार्पित होने पर) मुक्ति और विपरीत स्थिति (अर्थात् अशुद्ध होने पर) संसार अर्थात् बन्धन होता है ।।५२।।

भावस्य शुद्धिराख्याता शिवोऽहमिति योजना।
विपरीतसमायोगे कुतो दुःखनिवर्तनम्।।५३।।

भावार्थ : 'मैं शिव हूँ'— ऐसी योजना (अर्थात् शिव के साथ सम्बन्ध) को भाव की शुद्धि कहा गया है। उससे विपरीत योजना (अर्थात् 'मैं शिव से भिन्न हूँ'—यह संसार शिव और मुझसे पृथक् है ऐसी योजना) होने पर दुःख कैसे दूर हो सकता है ।।५३।।

भोक्ता भोग्यं भोजयिता सर्वमेतच्चराचरम्।
भावयन् शिवरूपेण शिवो भवति वस्तुतः।।५४।।

भावार्थ : (जो साधक) भोक्ता अर्थात् जीव भोज्य अर्थात् विषय तथा भोजयिता = शिव तथा इस समस्त चराचर की शिवरूप में भावना करता है (अर्थात् सबको शिव समझता है) वह वस्तुतः शिव हो जाता है ।।५४।।

मिथ्येति भावयन् विश्वं विश्वातीतं शिवं स्मरन्।
सत्तानन्दचिदाकारं कथं बद्धुमिहार्हति।।५५।।

भावार्थ : जो विश्व को मिथ्या और शिव को विश्वातीत सच्चिदानन्द रूप समझता है। वह संसार में (माया आदि पाशों के) बन्धन में कैसे आ सकता है? ।।५५।।

सर्वं कर्मार्चनं शम्भोर्वचनं तस्य कीर्तनम्।
इति भावयतो नित्यं कथं स्यात्कर्मबन्धनम्।।५६।।

भावार्थ : समस्त कर्म शिव की पूजा है, समस्त वचन उनका नामसङ्कीर्तन[१] है— नित्य ऐसी भावना करने वाले को कर्म बन्धन कैसे हो सकता है? ।।५६।।

---

१. तुलनीय— आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
सञ्चारः पदयो प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरः
यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ॥

सर्वेन्द्रियगतं सौख्यं दु:खं वा कर्मसम्भवम्।
शिवार्थं भावयन् योगी जीवन्मुक्तो भविष्यति।।५७।।

भावार्थ : समस्त इन्द्रियों में वर्त्तमान (अर्थात् सभी इन्द्रियों के द्वारा भोगे जाने वाले) सुख अथवा दु:ख कर्म से उत्पन्न होते हैं। उन सभी दु:ख सुखों को शिवलिङ्ग को अर्पित करने वाला योगी जीवन्मुक्त हो जाता है ।।५७।।

शिष्यस्थल - (६९)

शासनीयो भवेद्यस्तु परकायेन सर्वदा।
तत्प्रसादात्तु मोक्षार्थी स शिष्य इति कीर्तितः।।५८।।

भावार्थ : (शिष्यस्थल वर्णन)— परकाय अर्थात् परब्रह्मशरीर वाले शिवयोगी के द्वारा जो सर्वदा शासन करने योग्य है तथा उस अर्थात् शिवयोगी की कृपा से मोक्ष चाहने वाला है, वह शिष्य कहा जाता है ।।५८।।

भावो यस्य स्थिरो नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः।
गुरौ निजे गुणोदारे स शिष्य इति गीयते।।५९।।

भावार्थ : जिसकी भावना अपने गुणोदार (अर्थात् ज्ञान वैराग्य आदि के कारण उन्नत) गुरु के विषय में मन वाणी और कर्म से सदा स्थिर है (अर्थात् जो मन वाणी और कर्म से सदा गुरु के प्रति भक्तिभावपूर्ण है) वह शिष्य कहा जाता है ।।५९।।

शान्तो दान्तस्तपश्शीलः सत्यवाक् समदर्शनः।
गुरौ शिवे समानस्थः स शिष्याणामिहोत्तमः।।६०।।

भावार्थ : शान्त (अर्थात् अपने मन का नियन्त्रक), दान्त (बाह्य इन्द्रियों को वश में रखने वाला), तपस्वी, अर्थात् यमनियम आदि आठ योगाङ्गों का अभ्यासी सदा सत्य बोलने वाला, समदर्शी, गुरु और विश्व के प्रति समान भाव रखने वाला व्यक्ति इस संसार में शिष्यों में उत्तम कहा गया है ।।६०।।

गुरुमेव शिवं पश्येच्छिवमेव गुरुं तथा।
नैतयोरन्तरं किञ्चिद्विजानीयाद्विचक्षणः।।६१।।

भावार्थ : विद्वान् शिष्य को चाहिये कि वह गुरु को शिव के रूप में और शिव को गुरु के रूप में देखे। वह इन दोनों में कोई अन्तर न समझे ।।६१।।

शिवाचारे शिवध्याने शिवज्ञाने च निर्मले।
गुरोरादेशमात्रेण परां निष्ठामवाप्नुयात्।।६२।।

भावार्थ : (उक्त गुणों से युक्त शिष्य) शिवाचार शिवध्यान और निर्मल शिवज्ञान के विषय में गुरु के केवल आदेश से श्रेष्ठं विश्वास एवं श्रद्धा को प्राप्त करता है ।।६२।।

ब्रह्माण्डबुद्बुदोद्भूतं मायासिन्धुं महत्तरम्।
गुरोः कवलयत्याशु कटाक्षवडवानलः।।६३।।

भावार्थ : गुरु का कृपाकटाक्षरूपी वडवानल ब्रह्माण्डरूपी बुदबुद से उत्पन्न विशाल मायारूपी समुद्र को निगल जाता है ।।६३।।

गुरोः कटाक्षवेधेन शिवो भवति मानवः।
रसवेधाद् यथा लोहो हेमतां प्रतिपद्यते।।६४।।

भावार्थ : जिस प्रकार रस अर्थात् पारा के द्वारा विद्ध होने पर लोहा सोना बन जाता है उसी प्रकार गुरु के कटाक्षवेध से मनुष्य शिव हो जाता है ।।६४।।

न लङ्घयेद् गुरोराज्ञां ज्ञानमेव प्रकाशयन्।
शिवासक्तेन मनसा सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्।।६५।।

भावार्थ : गुरु की आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। इस प्रकार आज्ञाधारक शिष्य शिव में तल्लीन मन के द्वारा शिवाद्वैत ज्ञान को प्राप्त करता है तथा समस्त सिद्धियों को भी प्राप्त करता है ।।६५।।

शिवादन्यज्जगन्मिथ्या शिवः संवित्स्वरूपकः।
शिवस्त्वमिति निर्दिष्टो गुरुणा मुक्त एव सः।।६६।।

भावार्थ : शिव से भिन्न जगत् मिथ्या है। शिव संवित्स्वरूप है तुम भी शिव ही हो ऐसा गुरु के द्वारा निर्दिष्ट साधक मुक्त ही हो जाता है ।।६६।।

गुरोर्लब्ध्वा महाज्ञानं संसारामयभेषजम्।
मोदते यः सुखी शान्तः स जीवन्मुक्त एव हि।।६७।।

भावार्थ : जो गुरु से संसाररूपी रोग की महाऔषधि रूप महाज्ञान को प्राप्त कर लेता है वह सुखी शान्त और जीवन्मुक्त हो जाता है ।।६७।।

शुश्रूषुस्थल - (७०)

बोध्यमानः स गुरुणा परकायेन सर्वदा।
तच्छुश्रूषारतः शिष्यः शुश्रूषुरिति कीर्त्यते।।६८।।

भावार्थ : **(शुश्रूषुस्थल वर्णन)**— परकाय गुरु के द्वारा सर्वदा उपदिष्ट होने वाला तथा उनकी सेवा में निरत शिष्य शुश्रूषु कहा जाता है ।।६८।।

किं सत्यं किं नु वासत्यं क आत्मा कः परः शिवः।
इति श्रवणसंसक्तो गुरोः शिष्यो विशिष्यते।।६९।।

भावार्थ : क्या सत्य है?, क्या असत्य?, कौन आत्मा है?, परशिव कौन है?, इस प्रकार गुरु से उपदेश ग्रहण करने में लगा हुआ शिष्य केवल सेवा करने वाले शिष्य की अपेक्षा विशेष (कृपा पात्र होता है) ।।६९।।

श्रुत्वा श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं शिवसाक्षात्क्रियावहम्।
उपशाम्यति यः स्वान्ते स मुक्तिपदमाप्नुयात्।।७०।।

भावार्थ : गुरु के शिवसाक्षात्कार कराने वाले वाक्य को सुन-सुनकर जो शिष्य अपने मन में शान्तिलाभ करता है वह मुक्तिपद को प्राप्त करता है ।।७०।।

न बुध्यति गुरोर्वाक्यं विना शिष्यस्य मानसम्।
तेजो विना सहस्रांशोः कथं स्फुरति पङ्कजम्।।७१।।

भावार्थ : गुरु के (उपदेश) वाक्य के बिना शिष्य का मन प्रबुद्ध नहीं होता। सूर्य के तेज के बिना कमल कैसे खिल सकता है? ।।७१।।

सूर्यस्योदयमात्रेण सूर्यकान्तः प्रकाशते।
गुरोरालोकमात्रेण शिष्यो बोधेन भासते।।७२।।

भावार्थ : (जैसे) सूर्य के केवल उदय से सूर्यकान्त मणि प्रकाश करने लगती है। (उसी प्रकार) गुरु के (उपदेश रूपी) आलोक से शिष्य ज्ञान के कारण चमकने लगता है ।।७२।।

अद्वैतपरमानन्दप्रबोधैकप्रकाशकम् ।
उपायं शृणुयाच्छिष्यः सद्गुरुं प्राप्य प्राञ्जलिः।।७३।।

भावार्थ : शिष्य उत्तम गुरु को प्राप्त कर (उनके सामने) हाथ जोड़कर (अर्थात् श्रद्धावनत होकर) अद्वैत परमानन्द ज्ञान का एकमात्र प्रकाशक उपाय सुने ।।७३।।

किं तत्त्वं परमं ज्ञेयं केन सर्वे प्रतिष्ठिताः।
कस्य साक्षात्क्रिया मुक्तिः कथयेति समासतः।।७४।।

भावार्थ : (शिष्य गुरु के कहे कि हे गुरूदेव!) कौन सा तत्त्व परम अर्थात् श्रेष्ठ अतएव क्या है? किसके कारण समस्त चराचर स्थित है? किसका साक्षात्कार मुक्ति कहा जाता है, इसको आप संक्षेप में बतलाइये ।।७४।।

इति प्रश्ने कृते पूर्वं शिष्येण नियतात्मना।
ब्रूयात्तत्त्वं गुरुस्तस्मै येन स्यात् संसृतेर्लयः।।७५।।

भावार्थ : नियतात्मा अर्थात् एकाग्रचित्त वाले शिष्य के द्वारा इस प्रकार का प्रश्न करने पर गुरु उस शिष्य को (उस) तत्त्व का उपदेश दे जिससे संसार का लय हो जाय (अर्थात् बन्धन कट जाय) ॥७५॥

शिव एव परं तत्त्वं चिदानन्दसदाकृतिः।
स यथार्थस्तदन्यस्य जगतो नास्ति नित्यता।।७६।।

भावार्थ : (इसके बाद गुरु कहे)— सत् चित् आनन्द स्वरूप शिव ही परम (अर्थात् अन्तिम और श्रेष्ठतम) तत्त्व है। वही यथार्थ है। उससे भिन्न संसार नित्य नहीं है ॥७६॥

अयथार्थप्रपञ्चोऽयं प्रतितिष्ठति शङ्करे।
सदात्मनि यथा शुक्तौ रजतत्त्वं व्यवस्थितम्।।७७।।

भावार्थ : यह मिथ्या प्रपञ्च सत्स्वरूप शिव में उसी प्रकार स्थित है जैसे शुक्ति में रजत स्थित रहता है ॥७७॥

शिवोऽहमिति भावेन शिवे साक्षात्कृते स्थिरम्।
मुक्तो भवति संसारान्मोहग्रन्थेर्विभेदतः।।७८।।

भावार्थ : 'मैं शिव हूँ' इस भाव से शिव का साक्षात्कार होने पर संसाररूपी मोहग्रन्थि का भेदन होने से साधक निश्चित रूप से मुक्त हो जाता है ॥७८॥

शिवं भावय चात्मानं शिवादन्यं न चिन्तय।
एवं स्थिरे शिवाद्वैते जीवन्मुक्तो भविष्यसि।।७९।।

भावार्थ : 'अपने को शिव समझो, शिव से अन्य को अपने विचार का विषय मत बनाओ इस प्रकार शिवाद्वैत में स्थिर भावना होने पर जीवन्मुक्त हो जाओगे' ॥७९॥

एवं प्रचोदितः शिष्यो गुरुणा गुणशालिना।
शिवमेव जगत् पश्यन् जीवन्मुक्तोऽभिजायते।।८०।।

भावार्थ : गुणवान् गुरु के द्वारा उपदेश प्राप्त करने वाला शिष्य संसार को शिवस्वरूप देखता हुआ जीवन्मुक्त हो जाता है ॥८०॥

सेव्यस्थल - (७१)

गुरुवाक्यामृतास्वादात् प्राप्तबोधमहाफलः।
शुश्रूषुरेव सर्वेषां सेव्यत्वात् सेव्य उच्यते।।८१।।

भावार्थ : (सेव्यस्थल वर्णन)— गुरु के उपदेशवाक्यरूपी अमृत को ग्रहण करने से जिसे बोध (अर्थात् शिवाद्वैत ज्ञानरूपी) महाफल प्राप्त हो गया ऐसा शुश्रूषु ही समस्त सामान्य जनों का सेव्य होने के कारण सेव्य कहा जाता है ॥८१॥

गुरूपदिष्टे विज्ञाने चेतसि स्थिरतां गते।
साक्षात्कृतशिवः शिष्यो गुरुवत् पूज्यते सदा।।८२।।

भावार्थ : गुरु के द्वारा उपदिष्ट विज्ञान (=विशिष्ट ज्ञान अर्थात् शिवाद्वैत ज्ञान) जब चित्त में स्थिर हो जाता है तब शिव का साक्षात्कार करने वाला शिष्य सर्वदा गुरु के समान पूजित होता है ॥८२॥

ज्ञानादाधिक्यसम्पत्तिर्गुरोर्यस्मादुपस्थिता ।
तस्माज्ज्ञानागमाच्छिष्यो गुरुवत् पूज्यतां व्रजेत्।।८३।।

भावार्थ : जिस कारण (शिष्य के अन्दर) गुरु से अधिक ज्ञानसम्पदा उपस्थित हो जाती है। इस कारण उस ज्ञानागम से शिष्य गुरु के समान पूज्य हो जाता है ॥८३॥

शिवोऽहमिति भावस्य नैरन्तर्याद् विशेषतः।
शिवभावे समुत्पन्ने शिववत् पूज्य एव सः।।८४।।

भावार्थ : 'मैं शिव हूँ' इस भावना के निरन्तर होने के कारण (शिष्य के अन्दर) जब शिवभाव विशेष रूप से उत्पन्न होता है तब वह शिव के समान पूज्य हो जाता है ॥८४॥

विषयासक्तचित्तोऽपि विषयासङ्गवर्जितः।
शिवभावयुतो योगी सेव्यः शिव इवापरः।।८५।।

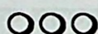
भावार्थ : (ऐसा शिष्य) विषयों में आसक्त मन वाला होकर भी विषय की आसक्ति से रहित होता है (क्योंकि शरीर धर्म के कारण वह विषय का सेवन करता है किन्तु सर्वत्र शिवदृष्टि होने के कारण वह विषयों के उपभोगजन्य पाप या पुण्य से लिप्त नहीं होता अत एव) शिवभाव से युक्त योगी दूसरे शिव के समान पूजनीय होता है ॥८५॥

मुक्तः संशयपाशतः स्थिरमना बोधे च मुक्तिप्रदे
मोहं देहभृतां दृशा विघटयन् मूलं महासंसृतेः।
सत्तानन्दचिदात्मके निरुपमे शैवे परस्मिन् पदे
लीनात्मा क्षयितप्रपञ्चविभवो योगी जनैः सेव्यते।।८६।।

भावार्थ : संशयरूपी पाश से मुक्त, मुक्तिप्रद ज्ञान के विषय में दृढ़ मति वाला, महासंसार के मूल कारण देहधारियों के मोह को अपने कृपाकटाक्ष से नष्ट करने वाला, तथा सत् चित् आनन्द रूप निरूपम शिवपद में लीन अतएव प्रपञ्च के विस्तार को नष्ट करने वाला योगी सर्वदा लोगों के द्वारा सेवित होता है ॥८६॥

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ लिङ्गस्थलान्तर्गतप्रसादिस्थले कायानुग्रहादिनवविध-स्थलप्रसङ्गो नाम सप्तदशः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के प्रसादिस्थलाश्रित नवलिङ्गस्थलप्रसङ्गनामा सप्तदश परिच्छेद की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।१७।।



अष्टादश: परिच्छेद:

लिंगस्थलांतर्गत
प्राणलिंगीस्थल

अगस्त्य उवाच—

प्रसादिस्थलसम्बद्धा: स्थलभेदा: प्रकीर्तिता:।
प्राणलिङ्गिस्थलारूढान् स्थलभेदान् वदस्व मे।।१।।

भावार्थ : अगस्त्य ने कहा— (हे आचार्य! आपने) प्रसादि स्थल से सम्बद्ध स्थलों के भेदों का वर्णन् किया। अब प्राणलिङ्गी स्थल के अन्तर्गत आने वाले स्थलभेदों को मुझे बतलाइये ॥१॥

श्रीरेणुक उवाच—

स्थलानां नवकं प्रोक्तं प्राणलिङ्गिस्थलाश्रितम्।
आदावात्मस्थलं प्रोक्तमन्तरात्मस्थलं तत:।।२।।

परमात्मस्थलं पश्चान्निर्देहागमसंज्ञितम्।
निर्भावागमसंज्ञं च ततो नष्टागमस्थलम्।।३।।

आदिप्रसादनामाथ ततोऽन्त्यप्रसादकम्।
सेव्यप्रसादकं चाथ शृणु तेषां च लक्षणम्।।४।।

भावार्थ : श्री रेणुकाचार्य ने कहा— प्राणलिंगी स्थल में नव स्थल कहे गये हैं पहला आत्मस्थल उसके बाद अंतरात्मस्थल फिर परमात्मस्थल इसके बाद निर्देहागमस्थल, निर्भावागमस्थल, तत्पश्चात् नष्टागमस्थल, फिर आदिप्रसादिस्थल तथा अंत्यप्रसादिस्थल और अन्त में सेव्यप्रसादिस्थल है। अब इनके लक्षण सुनो ॥२-४॥

आत्मस्थल - (७२)

जीवभावं परित्यज्य यदा तत्त्वं विभाव्यते।
गुरोश्च बोधयोगेन तदात्मायं प्रकीर्तित:।।५।।

भावार्थ : (आत्मस्थल वर्णन)— यह अर्थात् सेव्यस्थल गुरु के द्वारा प्रवर्त्तित बोध के कारण जब जीवभाव का त्याग कर आत्म तत्त्व के रूप में जाना जाता है तब वह आत्मा कहा जाता है ॥५॥

वालाग्रशतभागेन सदृशो हृदयस्थितः।
अश्नन् कर्मफलं सर्वमात्मा स्फुरति दीपवत्।।६।।

भावार्थ : बाल के अग्रभाग के सौवें भाग के बराबर[1] यह हृदय में स्थित हुआ कर्मफल का भोग करता हुआ आत्मा दीपक के समान प्रकाशित होता है ।।६।।

आत्मापि सर्वभूतानामन्तःकरणमाश्रितः।
अणुभूतो मलासङ्गादादिकर्मनियन्त्रितः।।७।।

भावार्थ : समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में स्थित आत्मा भी मल से संसक्त होने के कारण आदि अर्थात् प्राचीनतम 'कर्म से नियन्त्रित हुआ अणु बनकर रहता है। (अथवा समस्त पञ्च महाभूतों का आत्मा अर्थात् आश्रय परमेश्वर भी मल के संसर्ग से अनादि कर्मवासना से नियन्त्रित होकर अणु अर्थात् जीव के रूप में तत्तत् अन्तःकरण में स्थित रहता है ।।७।।

जपायोगाद्यथा रागः स्फटिकस्य मणेर्भवेत्।
तथाऽहङ्कारसम्बन्धादात्मनो देहमानिता।।८।।

भावार्थ : जिस प्रकार स्वच्छ स्फटिक मणि जपाकुसुम (गुडहल के फूल) के साथ संयुक्त होने पर लाल रङ्ग का हो जाता है उसी प्रकार अहङ्कार के सम्बन्ध से आत्मा भी देहाभिमानी हो जाता है (अर्थात् देह को ही अपना स्वरूप समझने लगता है) ।।८।।

अशरीरोऽपि सर्वत्र व्यापकोऽपि निरञ्जनः।
आत्मा मायाशरीरस्थः परिभ्रमति संसृतौ।।९।।

भावार्थ : शरीररहित होता हुआ भी सर्वत्र विद्यमान, व्यापक होता हुआ भी निरञ्जन अर्थात् दोषरहित यह आत्मा माया के द्वारा कल्पित शरीर में स्थित होकर संसार में भ्रमण करता रहता है ।।९।।

आत्मस्वरूपविज्ञानं देहेन्द्रियविभागतः।
अखण्डब्रह्मरूपेण तदात्मप्राप्तिरुच्यते।।१०।।

भावार्थ : जब देह और इन्द्रिय के विभाग से (अर्थात् आत्मा देह और इन्द्रिय से भिन्न है ऐसे विचार से) अखण्ड ब्रह्म के रूप में आत्मस्वरूप का ज्ञान हो जाता है तब आत्मप्राप्ति कही जाती है ।।१०।।

---

१. तुलीनय—
बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ।। (श्वे.उ. ५।९)

न चास्ति देहसम्बन्धो निर्देहस्य स्वभावतः।
अज्ञानकर्मयोगेन देही भवति भुक्तये।।११।।

भावार्थ : जो स्वभावत: देहरहित है उसको देह से सम्बन्ध कदापि नहीं होता। अज्ञान और उससे जन्य अपने कर्म के योग से (यह आत्मा) भोग करने के लिये शरीरधारी बनता है ।।११।।

विशेष— वस्तुत: परमात्मा अशरीरी है। किन्तु लीला की इच्छा से वह अपने स्वातन्त्र्यवश देह धारण करता है। इस विषय में टीकाकार 'शिवदृष्टि' नामक ग्रन्थ से श्लोक उद्धृत करते हैं। अपने स्वातन्त्र्यवश वह अंशी हो जाते हैं। 'अंशे नाना व्यपदेशात्' ब्रह्मसूत्र भी है। आनन्द के लिये एकत्व समर्थ नहीं होता अत: वह देहयुक्त होता है। जीव उसी का अंश है। पराशरउपपुराण का भी कथन है कि प्रलयकाल में यह सब अण्डरसन्यायेन परमेश्वर में प्रच्छन्न रूप से स्थित रहता है। सिसृक्षा के अनन्तर अग्नि से स्फुलिङ्ग के समान जीव आविर्भूत होता है।

नासौ देवो न गन्धर्वो न यक्षो नैव राक्षसः।
न मनुष्यो न तिर्यक्च न च स्थावरविग्रहः।।१२।।

भावार्थ : (यह आत्मा) न देव, न गन्धर्व, न यक्ष, न राक्षस है। साथ ही यह न मनुष्य, न तिर्यक् अर्थात् पक्षी और न स्थावर शरीर वाला वृक्ष आदि है ।।१२।।

नानाकर्मविपाकाश्च नानायोनिसमाश्रिताः।
नानायोगसमापन्नाः नानाबुद्धिविचेष्टिताः।।१३।।

नानामार्गसमारूढाः नानासङ्कल्पकारिणः।
अस्वतन्त्राश्च किञ्चिज्ज्ञाः किञ्चित्कर्तृत्वहेतवः।।१४।।

लीलाभाजनतां प्राप्ताः शिवस्य परमात्मनः।

भावार्थ : (ये जीव) नाना कर्मविपाक वाले अतएव देव मनुष्य पशु पक्षी आदि नाना योनियों में उत्पन्न होते हैं। इसके अनन्तर नाना प्रकार के सुख दु:खात्मक भोगों को प्राप्त कर अनेक प्रकार का विचार और चेष्टायें करते हैं। ये जीव शैव, वैष्णव आदि अनेक धर्ममार्गों का आश्रयण कर अनेक प्रकार के विचार करते रहते हैं। अस्वतन्त्र, अल्पज्ञ, अल्पकर्त्तृत्व से युक्त ये परमात्मा शिव के द्वारा अभिनीत लीला के पात्र के समान है ।।१३-१४।।

चोदिता परमेशेन स्वस्वकर्मानुरूपतः।।१५।।
स्वर्गं वा नरकं वापि प्राणिनो यान्ति कर्मिणः।

भावार्थ : ये कर्म करने वाले प्राणी परमेश्वर के द्वारा अपने-अपने कर्मों के अनुसार प्रेरित होकर स्वर्ग अथवा नरक को प्राप्त होते हैं ॥१५॥

पुनः कर्मावशेषेण जायन्ते गर्भकोटरात्।।१६।।

जाता मृताः पुनर्जाताः पुनर्मरणभाजिनः।
भ्रमन्ति घोरसंसारे विश्रान्तिकथया विना।।१७।।

भावार्थ : पुनः भोग से अवशिष्ट कर्म के कारण ये जीव गर्भ से उत्पन्न होते हैं (कुछ काल तक इस संसार में रहते हैं। फिर) मर जाते हैं। पुनः जन्म लेते हैं और पुनः मृत्यु के पात्र बनते हैं। ये इस घोर संसार में अनवरत भ्रमण करते रहते हैं ॥१६-१७॥

जीवत्वं दुःखसर्वस्वं तदिदं मलकल्पितम्।
निरस्यते गुरोर्बोधाज्ज्ञानशक्तिः प्रकाशते।।१८।।

भावार्थ : जीव होना ही दुःख का सर्वस्व है और यह जीवत्व मलकल्पित है। गुरु के द्वारा प्रदत्त बोध से यह दूर होता है और (जीव को) ज्ञानशक्ति प्राप्ति होती है ॥१८॥

अन्तरात्मस्थल - (७३)

यदा निरस्तं जीवत्वं भवेद् गुर्वनुबोधतः।
तदान्तरात्मभावोऽपि निरस्तस्य भवेद् ध्रुवम्।।१९।।

भावार्थ : **(अन्तरात्मस्थल वर्णन)**— गुरु के उपदेश से जब साधक का जीवभाव निरस्त हो जाता है तो निरस्त जीवभाव वाले उस आत्मा का निश्चित रूप से अन्तरात्म भाव भी हो जाता है ॥१९॥

देहस्थितोऽप्ययं जीवो देहसङ्गविवर्जितः।
बोधात् परात्मभावित्वादन्तरात्मेति कीर्तितः।।२०।।

भावार्थ : देह के अन्दर स्थित यह जीव जब देह के प्रति आसक्ति से रहित हो जाता है, तब बोध के कारण तथा परात्मभाव से युक्त होने से वह अन्तरात्मा कहा गया है ॥२०॥

आत्मान्तरालवर्तित्वाज्जीवात्मपरमात्मनोः।
योगादुभयधर्माणामन्तरात्मेति कीर्तितः।।२१।।

भावार्थ : जीवात्मा और परमात्मा के बीच का होने के कारण आत्मा उक्त दोनों के धर्मों से युक्त होने से अन्तरात्मा कहा गया है ॥२१॥

अहङ्कारस्य सम्बन्धान्मनुष्यत्वादिविभ्रमः।
न स्वभाव इति ज्ञानादन्तरात्मेति कथ्यते।।२२।।

भावार्थ : अहङ्कार के सम्बन्ध के कारण (जीव को) मनुष्यत्व आदि का भ्रम होता है। (मनुष्यत्व) आत्मा का स्वभाव नहीं है ऐसा ज्ञान होने से साधक अन्तरात्मा कहा जाता है ॥२२॥

यथा पद्मपलाशस्य न सङ्गो वारिणा भवेत्।
तथा देहजुषोऽप्यस्य न शरीरेण सङ्गतिः।।२३।।

नीडस्थितो यथा पक्षी नीडाद्भिन्नः प्रदृश्यते।
देहस्थितस्तथात्मायं देहादन्यः प्रकाश्यते।।२४।।

भावार्थ : जिस प्रकार कमल के पत्ते का जल के साथ सम्बन्ध नहीं हाता उसी प्रकार देह के साथ संयुक्त भी इस जीव की देह के साथ सङ्गति नहीं होती। घोंसले में स्थित भी पक्षी जैसे घोंसले से भिन्न दिखायी देता है उसी प्रकार यह आत्मा देह में रहता हुआ भी देह से अन्य के रूप में प्रकाशित होता है ॥२३-२४॥

आच्छाद्यते यथा चन्द्रो मेघैरासङ्गवर्जितैः।
तथात्मा देहसङ्घातैरसङ्गपरिवेष्टितः।।२५।।

भावार्थ : जिस प्रकार चन्द्र सम्बन्धरहित बादलों से आच्छादित हो जाता है उसी प्रकार आत्मा भी सम्बन्ध न रहते हुए देहसमूहों से आवृत होता है ॥२५॥

निर्ममो निरहङ्कारो निरस्तोपाधिविक्लवः।
देहस्थोऽपि सदा ह्यात्मा शिवं पश्यति योगतः।।२६।।

भावार्थ : ममकार एवं अहङ्कार से रहित शरीर इन्द्रिय आदि समस्त उपाधियों से वर्जित आत्मा देह में स्थित रहकर भी योग के सामर्थ्य से शिव का साक्षात्कार करता है ॥२६॥

भोक्तृभोज्यपरित्यागात् प्रेरकस्य प्रसादतः।
भोक्तृताभावगलितः स्फुरत्यात्मा स्वभावतः।।२७।।

भावार्थ : भोक्ता और भोज्य के परित्याग से, प्रेरक अर्थात् ईश्वर की कृपा से भोक्तृत्वभाव से रहित होकर आत्मा अपने स्वभाव के अनुसार प्रकाशित होता है ॥२७॥

सर्वेषां प्रेरकत्वेन शम्भुरन्तःस्थितः सदा।
तत्परिज्ञानयोगेन योगी नन्दति मुक्तवत्।।२८।।

भावार्थ : भगवान् शिव सबके अन्दर प्रेरक के रूप में स्थित हैं। इस प्रकार के परिपूर्ण ज्ञान के कारण योगी मुक्त की भाँति आनन्द का अनुभव करता है ॥२८॥

परमात्मस्थल - (७४)

निर्धूते तत्प्रबोधेन मले संसारकारणे।
सामरस्यात् परात्मस्थात् परमात्मायमुच्यते।।२९।।

भावार्थ : **(परमात्मस्थल वर्णन)**— शिवाद्वैत ज्ञान के द्वारा संसार के कारणभूत मल के नष्ट होने पर परात्मा में स्थित सामरस्य के कारण यह जीव परमात्मा कहा जाता है ॥२९॥

सर्वेषामात्मभेदानामुत्कृष्टत्वात् स्वतेजसा
परमात्मा शिवः प्रोक्तः सर्वगोऽपि प्रकाशवान्।।३०।।

भावार्थ : अपने तेज के कारण सर्वव्यापी और प्रकाशमान शिव समस्त आत्मभेदों में उत्कृष्ट होने के कारण परमात्मा कहे गये हैं ॥३०॥

ब्रह्माण्डबुद्बुदस्तोमा यस्य मायामहोदधौ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति परमात्मा स उच्यते।।३१।।

भावार्थ : जिसकी मायारूप समुद्र में ब्रह्माण्डरूपी बुलबुलों के स्तोम अर्थात् समूह डूबते और उतराते रहते हैं वह परमात्मा कहा जाता है ॥३१॥

यस्मिन् ज्योतिर्गणाः सर्वे स्फुलिङ्गा इव पावकात्।
उत्पत्य विलयं यान्ति तद्रूपं परमात्मनः।।३२।।

भावार्थ : जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिङ्ग (अर्थात् चिनगारी) उसी प्रकार जिसमें ज्योतिर्गण उत्पन्न होकर विलीन हो जाते हैं[1] वही परमात्मा का रूप है ॥३२॥

यस्मिन् समस्तवस्तूनि कल्लोला इव वारिधौ।
सम्भूय लयमायान्ति तद्रूपं परमात्मनः।।३३।।

भावार्थ : जिस प्रकार समुद्र में लहरें उसी प्रकार समस्त वस्तुयें जिसमें उत्पन्न होकर लीन हो जाती है।[2] वही परमात्मा का रूप है ॥३३॥

---

१. तुलनीय—
यथा सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिङ्गाः सहस्रं प्रभवन्ते सरूपाः।
तथाऽक्षराद् विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति।। (मुं.उ. २।१)

२. तुलनीय— जन्माद्यस्य यतः। (ब्र.सू. १।२)।

निरस्तमलसम्बन्धं नि:शेषजगदात्मकम्।
सर्वतत्त्वोपरि प्रोक्तं स्वरूपं परमात्मन:।।३४।।

भावार्थ : परमात्मा का स्वरूप समस्त प्रकार के मलों से असम्बद्ध तथा सम्पूर्ण संसारात्मक होते हुए भी समस्त तत्त्वों से परे कहा गया है ।।३४।।

यथा व्याप्य जगत्सर्वं स्वभासा भाति भास्कर:।
तथा स्वशक्तिभिर्व्याप्य परमात्मा प्रकाशते।।३५।।

भावार्थ : जिस प्रकार सूर्य अपने तेज से सम्पूर्ण संसार को व्याप्त कर प्रकाशित होता है उसी प्रकार अपनी शक्तियों से (समस्त संसार को) व्याप्त कर परमात्मा प्रकाश करता है ।।३५।।

विशेष— संसार पञ्च महाभूतों से रचित है। इन भूतों में परमात्मा की पाँच शक्तियाँ समवेत रहकर कार्य करती है। उनका विवरण इस प्रकार है— पृथ्वी-धूमावतीशक्ति, जल-ह्लादिनी, तेज-भास्वती, वायु-स्पन्दा, आकाश-विभ्वी। इसके अतिरिक्त तिरोधन में धूमावती, आवभासन में भास्वती, क्षोभ में स्पन्दा, व्याप्ति में विभ्वी तथा पुष्टि में ह्लादिनी शक्ति काम करती है। इस प्रकार परमेश्वर अपनी शक्तियों से विश्व को व्याप्त कर स्थित है।

विश्वतो भासमानोऽपि विश्वमायाविलक्षण:।
परमात्मा स्वयंज्योतीरूपो जीवात्मनां भवेत्।।३६।।

भावार्थ : परमात्मा सम्पूर्ण विश्व में भासमान होते हुए भी विश्वमाया से विलक्षण है। वह जीवात्माओं के लिये स्वप्रकाशस्वरूप है ।।३६।।

निर्देहागमस्थल - (७५)

देहिनोऽपि परात्मत्वभाविनो निरहङ्कृते:।
निरस्तदेहधर्मस्य निर्देहागम उच्यते।।३७।।

भावार्थ : **(निर्देहागमस्थल वर्णन)**— अहङ्काररहित परमात्मभाव से युक्त शिवयोगी जब देहधर्म से रहित हो जाता है तब वह निर्देहागम कहा जाता है ।।३७।।

गलिते ममताहन्ते संसारभ्रमकारणे।
पराहन्तां प्रविष्टस्य कुतो देह: कुतो रति:।।३८।।

भावार्थ : संसार के भ्रम का कारणभूत ममकार और अहङ्कार के नष्ट होने पर पराहन्ता में प्रविष्ट शिवयोगी का देह कहाँ और (उस देह में) प्रीति कहाँ (अर्थात्

पराहन्ता में प्रविष्ट योगी को शरीर में न तो ममकार भावना रहती है और न उसके प्रति प्रेम रहता है) ॥३८॥

केवले निष्प्रपञ्चौघे गम्भीरे चिन्महोदधौ।
निमग्नमानसो योगी कथं देहं विचिन्तयेत्।।३९।।

भावार्थ : केवल अर्थात् अद्वितीय, प्रपञ्चों से रहित, गम्भीर, चैतन्यरूप समुद्र में डूबे हुए मन वाला योगी देह के बार में क्यों चिन्ता? करेगा? ॥३९॥

अपरिच्छेद्यमात्मानं चिदम्बरमिति स्मरन्।
देहयोगेऽपि देहस्थैर्विकारैर्न विलिप्यते।।४०।।

भावार्थ : अपने को असीम और चिदाकाश रूप समझने वाला योगी शरीर से सम्बद्ध रहने पर भी देह में स्थित (काम क्रोध लोभ आदि) विकारों से लिप्त नहीं होता ॥४०॥

अखण्डसंविदाकारमद्वितीयं सुखात्मकम्।
परमाकाशमात्मानं मन्वानः कुत्र मुह्यति।।४१।।

भावार्थ : अपने को अखण्ड, चिदाकार, अद्वितीय, सुखस्वरूप परमाकाश समझने वाला कहीं भी मोहग्रस्त नहीं होता ॥४०॥

उपाधिविहिता भेदा दृश्यन्ते चैकवस्तुनि।
इति यस्य मतिः सोऽयं कथं देहमितो भवेत्।।४२।।

भावार्थ : एक ही वस्तु में जो भेद दिखायी देते हैं वे उपाधि के द्वारा रचित होते हैं— ऐसी जिसकी बुद्धि होती है वह देह में सीमित कैसे हो सकता है? ॥४२॥

भेदबुद्धिः समस्तानां परिच्छेदस्य कारणम्।
अभेदबुद्धौ जातायां परिच्छेदस्य का कथा।।४३।।

भावार्थ : समस्त परिच्छेदों अर्थात् परिसीमनों का कारण भेदबुद्धि होती है। अभेद बुद्धि (अर्थात् 'सर्वं शिवमयम्' ऐसी बुद्धि) होने पर परिच्छेद की क्या बात? (अर्थात् वह सम्भव नहीं है) ॥४३॥

शिवोऽहमिति यस्यास्ति भावना सर्वगामिनी।
तस्य देहेन सम्बन्धः कथं स्यादमितात्मनः।।४४।।

भावार्थ : 'मैं शिव हूँ'— ऐसी जिसकी सर्वव्यापिनी भावना है अमितात्मा उस योगी का देह से सम्बन्ध कैसे हो सकता है? ॥४४॥

निर्भावागमस्थल - (७६)

व्यतिरेकात्स्वरूपस्य भावान्तरनिराकृतेः।
भावो विकारनिर्मुक्तो निर्भावागम उच्यते।।४५।।

भावार्थ : (**निर्भावागमस्थल वर्णन**)— अपने निर्देह स्वरूप से भिन्न तथा अन्य भाव के निराकरण से विकाररहित भाव निर्भावागम कहा जाता है।।४५।।

अहं ब्रह्मेति भावस्य वस्तुद्वयसमाश्रयः।
एकीभूतस्य चिद्व्योम्नि तदभावो विनिश्चितः।।४६।।

भावार्थ : 'मैं ब्रह्म हूँ' यह भाव दो वस्तुओं ('मैं' और 'ब्रह्म') पर आधृत है। चिदाकाश में एक अर्थात् समरस हुए उसका (अर्थात् द्वित्व का) अभाव निश्चित है ।।४६।।

एकभावनिरूढस्य निष्कलङ्के चिदम्बरे।
क्व जातिवासनायोगः क्व देहित्वं परिभ्रमः।।४७।।

भावार्थ : निष्कलङ्क चिदाकाश में एक भाव रखने वाले को कहाँ जातिवासना का योग, कहाँ देही की भावना और कहाँ संसार के जन्म-मृत्यु का चक्कर? ।।४७।।

शून्ये चिदम्बरे स्थाने दूरे वाङ्मानसाध्वनः।
विलीनात्मा महायोगी केन किं वापि भावयेत्।।४८।।

भावार्थ : वाणी और मन के मार्ग से दूर अर्थात् परे शून्य चिदाकाश में विलीन आत्मवाला महायोगी किसके द्वारा और किसकी भावना करे? ।।४८।।

अविशुद्धे विशुद्धे वा स्थले दीप्तिर्यथा रवेः।
पतत्येवं सदाद्वैती सर्वत्र समवृत्तिमान्।।४९।।

भावार्थ : जिस प्रकाश सूर्य की किरणें शुद्ध अशुद्ध सभी वस्तुओं के ऊपर पड़ती है उसी प्रकार अद्वैती सर्वत्र समदृष्टि वाला होता है ।।४९।।

न बिभेति जरामृत्योर्न क्षुधया वशं व्रजेत्।
परिपूर्णनिजानन्दं समास्वादन् महासुखी।।५०।।

भावार्थ : ऐसा शिवयोगी जरा और मृत्यु से नहीं डरता। वह भूख और प्यास के वश में नहीं होता। परिपूर्ण निजानन्द का आस्वादन करता हुआ वह महासुखी रहता है ।।५०।।

नष्टागमस्थल - (७७)

भेदशून्ये महाबोधे ज्ञात्रादित्रयहीनकः।
ज्ञानस्य नष्टभावेन नष्टागम इहोच्यते।।५१।।

भावार्थ : (नष्टागमस्थल वर्णन)— भेद से शून्य महाबोध के होने पर ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय इन तीनों से रहित ज्ञानसम्पन्न उस निर्भावागम योगी का ज्ञान के स्वयं नष्ट होने पर नष्टागम कहा जाता है। (अर्थात् ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय रूप त्रिपुटी का नाश होने के बाद मेरा यह त्रिपुटी ज्ञान नष्ट हो गया यह ज्ञान भी नष्ट हो जाना चाहिये ऐसी स्थिति नष्टागम कही जाती है ।।५१।।

अद्वैतवासनाविष्टचेतसां परयोगिनाम्।
पश्यतामन्तरात्मानं ज्ञातृत्वं कथमन्यथा।।५२।।

भावार्थ : अद्वैतवासना से परिपूर्ण चित्त वाले तथा अन्तरात्मा का निरन्तर साक्षात्कार करने वाले पर योगियों को अन्य प्रकार की ज्ञातृता कहाँ? (अर्थात् वे अन्तरात्मा से भिन्न विषय का ज्ञान कैसे कर सकते हैं?) ।।५२।।

अकर्ताऽहमवेत्ताहमदेहोऽहं निरञ्जनः।
इति चिन्तयतः साक्षात् संविदेव प्रकाशये।।५३।।

भावार्थ : 'मैं कर्त्ता नहीं हूँ', 'मैं ज्ञाता नहीं हूँ', 'मैं देह नहीं हूँ', 'मैं निरञ्जन हूँ'— ऐसा चिन्तन करने वाले (शिवयोगी) को साक्षात् संवित् का ही प्रकाश होता है ।।५२।।

निरस्तभेदजल्पस्य निरीहस्य प्रशाम्यतः।
स्वे महिम्नि विलीनस्य किमन्यज्ज्ञेयमुच्यते।।५४।।

भावार्थ : भेदवाक्य को दूर करने वाले, इच्छारहित शम दमादि युक्त तथा अपनी महिमा में विलीन (शिवयोगी) के लिये दूसरा क्या ज्ञेय कहा जाय ।।५३।।

विशेष— परमात्मा में किसी प्रकार का भी भेद सम्भव नहीं है। इसलिये सिद्धान्त यही है कि सामरस्यस्वरूप परमेश्वर के स्वातन्त्र्यवश सागरतरङ्ग-न्यायेन उसमें भेद किञ्चित्कालावच्छेदेन प्रतीत होता है। यह भेद कल्पना भी उसकी इच्छाशक्ति के कारण है।

एकीभूते निजाकारे संविदा निष्प्रपञ्चया।
केन किं वेदनीयं तद्वेत्ता कः परिभाष्यते।।५५।।

भावार्थ : अपने स्वरूप के निष्प्रपञ्च संविदाकार के साथ एकरूप हो जाने पर किसके द्वारा क्या वेदनीय होगा? और उसका वेत्ता किसे कहा जायेगा ।।५४।।

महासत्ता महासंविद् विश्वरूपा प्रकाशते।
तद्विना नास्ति वस्त्वेकं भेदबुद्धिं विमुञ्चतः।।५६।।

भावार्थ : महासत्ता महासंवित् विश्व के रूप में प्रकाशित हो रही है। भेदबुद्धि से रहित योगी के लिये उसके बिना दूसरी वस्तु नहीं है ।।५५।।

आदिप्रसादिस्थल - (७८)

सर्वाधिष्ठातृकः शम्भुरादिस्तस्य प्रसादतः।
आदिप्रसादीत्युक्तोऽयं निर्विकारपदे स्थितः।।५७।।

भावार्थ : **(आदिप्रसादीस्थल वर्णन)**— सबके अधिष्ठाता शिव आदि (अर्थात् सृष्टि आदि प्रपञ्च के मूल कारण) हैं। उनकी कृपा से निर्विकार पद में प्रतिष्ठित योगी आदिप्रसादी कहा जाता है ।।५७।।

अनेकजन्मशुद्धस्य निरहङ्कारभाविनः।
अप्रपञ्चस्यादिदेवः प्रसीदति विमुक्तये।।५८।।

भावार्थ : जो अनेक जन्मों से शुद्ध है, अहङ्कार भावना से रहित है, तथा प्रपञ्च से हीन है और मनुष्य के लिये मुक्त्यर्थ भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं ।।५८।।

शिवप्रसादसम्पत्त्या शिवभावमुपेयुषि।
शिवादन्यज्जगज्जालं दृश्यते न च दृश्यते।।५९।।

भावार्थ : शिव के अनुग्रह की प्राप्ति के द्वारा शिवभाव को प्राप्त करने वाले (योगी) के लिये यह संसार शिव से भिन्न दिखलायी पड़ता भी है और नहीं भी दिखलायी पड़ता (अर्थात् यह योगी की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह व्यवहार जगत् में उतर कर संसार को ईश्वर से भिन्न देखे या संसार से परे स्वभाव में स्थित होकर जगत् को शिवस्वरूप या आत्मस्वरूप देखे) ।।५९।।

शम्भोः शिवप्रसादेन संसारच्छेदकारिणा।
मोहग्रन्थिं विनिर्भिद्य मुक्तिं यान्ति विवेकिनः।।६०।।

भावार्थ : नित्यानित्य का भेद जानने वाले लोग भगवान् शिव के संसार का छेदन करने वाले कल्याणमय कृपाकटाक्ष से मोहग्रन्थि का भेदन कर मुक्ति को प्राप्त होते हैं ।।६०।।

विना प्रसादमीशस्य संसारो न निवर्तते।
विना सूर्योदयं लोके कुतः स्यात् तमसो लयः।।६१।।

भावार्थ : ईश्वर की कृपा के बिना संसार की निवृत्ति नहीं होती। बिना सूर्योदय के संसार में अन्धकार का लय कैसे होगा? ।।६१।।

सर्वानुग्राहकः शम्भुः केवलं कृपया प्रभुः।
मोचयेत् सकलान् जन्तून् न किञ्चिदिह कारणम्।।६२।।

भावार्थ : प्रभु अर्थात् सर्वतन्त्रस्वतन्त्र अतएव सबके ऊपर कृपा करने वाले भगवान् शिव अपनी कृपा के द्वारा समस्त प्राणियों को मुक्त करा देते हैं। इस मोक्ष के विषय में कोई दूसरा कारण नहीं है ।।६२।।

अन्त्यप्रसादिस्थल - (७९)

लयः सर्वपदार्थानामन्त्य इत्युच्यते बुधैः।
प्रसादोऽनुभवस्तस्य तद्वानन्त्यप्रसादवान्।।६३।।

भावार्थ : (अन्त्यप्रसादीस्थल वर्णन)— विद्वान् लोग समस्त पदार्थों के लय को अन्त्य कहते हैं। उस लय का अनुभव प्रसाद कहलाता है। यह प्रसाद जिसके पास हो वह अन्त्यप्रसादी होता है ।।६३।।

देवतिर्यङ्मनुष्यादिव्यवहारविकल्पना ।
मायाकृता परे तत्त्वे तल्लये तत्क्षयो भवेत्।।६४।।

भावार्थ : देवता, तिर्यक् अर्थात् पक्षी, मनुष्य आदि के व्यवहार की विकल्पना माया के द्वारा रचित है। पर तत्त्व में उसका लय होने पर उसका अर्थात् माया का भी क्षय हो जाता है ।।६४।।

साक्षात्कृते परे तत्त्वे सच्चिदानन्दलक्षणे।
क्व पदार्थपरिज्ञानं कुतो ज्ञातृत्वसंभवः।।६५।।

भावार्थ : सत् चित् आनन्द रूप पर तत्त्व का साक्षात्कार होने पर पदार्थ का ज्ञान कहाँ? और ज्ञाता की सम्भावना कहाँ? (अर्थात् ये दोनों सम्भव नहीं क्योंकि ये मायीय स्तर पर ही अनुभूत होते हैं। माया का लय होने पर इनका अस्तित्व अपने आप मिट जाता है) ।।६५।।

सुषुप्तस्य यथा वस्तु न किञ्चिदपि भासते।
तथा मुक्तस्य जीवस्य न किञ्चिद्वस्तु दृश्यते।।६६।।

भावार्थ : जिस प्रकार गाढ़ निद्रा में सोये व्यक्ति को कुछ भी प्रतीत नहीं होता उसी प्रकार मुक्त जीव को कोई भी वस्तु भासित नहीं होती (क्योंकि वह अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित रहता है) ॥६६॥

यथाकाशमविच्छिन्नं निर्विकारं स्वरूपतः।
तथा मुक्तस्य जीवस्य स्वरूपमवशिष्यते।।६७।।

भावार्थ : जिस प्रकार आकाश स्वरूपतः निर्विकार और अविच्छिन्न है उसी प्रकार मुक्त जीव का स्वरूप अवशिष्ट होता है ॥६७॥

न किञ्चदपि मुक्तस्य दृश्यं कर्तव्यमेव वा।
सुखस्फूर्तिस्वरूपेण निश्चला स्थितिरुच्यते।।६८।।

भावार्थ : मुक्त जीव के लिए न कोई दर्शनीय पदार्थ है और न कोई कर्त्तव्य कार्य। आनन्द के स्फुरण रूप से उसकी निश्चल स्थिति रहती है ॥६८॥

शिवाद्वैतपरिज्ञानशिथिलाशेषवस्तुनः ।
केवलं संविदुल्लासदर्शिनः केन को भवेत्।।६९।।

भावार्थ : शिवाद्वैत के परिज्ञान के कारण वस्तुओं में भेदभाव न रखने वाले तथा केवल संक्षिप्त शक्ति का उल्लास देखने वाले शिवयोगी का किस (इन्द्रिय व्यापार या किस वस्तु) से क्या लाभ होगा? ॥६९॥

सेव्यप्रसादिस्थल - (८०)

सेव्यो गुरुः समस्तानां शिव एव न संशयः।
प्रसादोऽस्य परानन्दप्रकाशः परिकीर्त्यते।।७०।।

भावार्थ : **(सेव्यप्रसादीस्थल वर्णन)**— सब लोगों के लिये शिव ही सेव्य गुरु है। इन (सेव्य गुरु) का प्रसाद अर्थात् अनुग्रह ही परानन्दप्रकाश कहा जाता है ॥७०॥

सेव्यो गुरुः स्मृतो ह्यस्य प्रसादोऽनुभवो मतः।
तदेकावेशरूपेण तद्वान् सेव्यप्रसादवान्।।७१।।

भावार्थ : शिवयोगी सेव्य गुरु कहे गये हैं। इनका अनुभव प्रसाद कहा गया है। जो उन दोनों अर्थात् गुरु और प्रसाद को एक मानने वाला है वह सेव्यप्रसादवान् कहा गया है ॥७१॥

गुरुदेवः परं तत्त्वं परतत्त्वं गुरुः स्मृतः।
तदेकत्वानुभावेन न किञ्चिदवशिष्यते।।७२।।

भावार्थ : गुरुदेव पर तत्त्व हैं। पर तत्त्व ही गरु हैं। उन दोनों को एक समझने के बाद शेष कुछ नहीं बचता ॥७२॥

अपरिच्छेद्यमात्मस्थमवाङ्मानसगोचरम्।
आनन्दं पश्यतां पुंसां रतिरन्यत्र का भवेत्।।७३।।

भावार्थ : असीम आत्मा के अन्दर रहने वाला, वाणी और मन की पहुँच से परे, आनन्द का साक्षात् अनुभव करने वाले मनुष्यों की अन्य विषयों में क्या प्रीति हो सकती है? ॥७३॥

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य किमन्यैर्भोज्यवस्तुभिः।
ज्ञानादेव परानन्दं प्रकाशयति सच्छिवः।।७४।।

भावार्थ : ज्ञानामृत से तृप्त मनुष्य के लिये अन्य भोज्य पदार्थों से क्या प्रयोजन? सदाशिव ज्ञान से ही परानन्द का प्रकाश करते हैं ॥७४॥

मुक्तिरेव परा तृप्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा।
नित्यतृप्तस्य मुक्तस्य किमन्यैर्भोगसाधनैः।।७५।।

भावार्थ : सच्चिदानन्दस्वरूप मुक्ति ही अन्तिम एवं सर्वोत्कृष्ट तृप्ति है। जो नित्यतृप्त एवं नित्यमुक्त है उसको भोग के अन्य साधनों से क्या लेना देना? ॥७५॥

न बाह्यकर्म तस्यास्ति न चान्तर्नैव कुत्रचित्।
शिवैक्यज्ञानरूढस्य देहभ्रान्तिं विमुञ्चतः।।७६।।

भावार्थ : जो शिवैक्य ज्ञान से रूढ़ अर्थात् पूर्ण दृढ़ शिवैक्य ज्ञान वाला तथा देहभ्रम (अर्थात् देह को आत्मा समझने के भ्रम) से रहित है ऐसे मुक्त पुरुष के लिये कहीं भी न तो कोई बाह्य और न कोई आन्तर कर्म करणीय होता है ॥७६॥

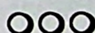
न कर्मबन्धे न तपोविशेषे
न मन्त्रयोगाभ्यसने तथैव।
ध्याने न बोधे च तथात्मतत्त्वे
मनःप्रवृत्तिः परयोगभाजाम्।।७७।।

भावार्थ : जो परयोग में उच्चतर को प्राप्त है उसके मन की प्रवृत्ति कर्मबन्धन, विशिष्टतप, मन्त्रयोगाभ्यास, ध्यान, बोध में नहीं होती किन्तु आत्मतत्त्व में अवश्य होती है ॥७७॥

विशेष— आचार्य के द्वारा उपदिष्ट होने पर पहले अपर देह हाथ पैर आदि का शोधन होता है। इसके बाद मूलबन्ध उड्डीयान बन्ध वज्रोली आदि के द्वारा परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी स्वरूप रुद्र विष्णु ब्रह्मा इन्द्र आदि देवताओं का लय हौने के बाद पूर्वकाय को कान आँख नाक जिह्वा में जोड़कर बाद में पूर्वकाय अपरकाय दोनों के कीलक स्वरूप बिन्दु माया के कार्यभूत वाणी और त्वचा को निश्चल करने के पश्चात् सम्पूर्ण योगज्ञान के जनन का क्षेत्रभूत अविमुक्त क्षेत्र अर्थात् परशिव का सेवन करने वाला सेव्यप्रसादी होता है।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्य संवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ लिङ्गस्थलान्तर्गत प्राणलिङ्गीस्थले आत्मस्थलादि-नवविधस्थलप्रसङ्गो नाम अष्टादशः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के प्राणलिङ्गिस्थल विषय नवविधलिङ्गप्रसङ्ग नामक अष्टादश परिच्छेद की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।१८।।



एकोनविंश: परिच्छेद:

लिंगस्थलांतर्गत

शरणस्थल

अगस्त्य उवाच—

स्थलभेदा: समाख्याता: प्राणलिङ्गिस्थलाश्रिता:।
कथय स्थलभेदं मे शरणस्थलसमाश्रितम्।।१।।

भावार्थ : (शरणस्थल वर्णन)— अगस्त्य ने कहा— (हे आचार्य! आपने) प्राणलिङ्गी स्थल के अन्तर्गत गणनीय स्थलभेदों को बतलाया। अब शरणस्थल में आने वाले स्थलभेदों को बतलाइये ।।१।।

रेणुक उवाच—

शरणस्थलमाश्रित्य स्थलद्वादशकं मया।
उच्यते नाम सर्वेषां स्थलानां शृणु तापस ।।२।।

भावार्थ : श्री रेणुकाचार्य ने कहा— हे तपस्विन्! शरणस्थल के आश्रित बारह स्थल हैं। मैं उन सब स्थलों का नाम बतला रहा हूँ। सुनो ।।२।।

दीक्षापादोदकं पूर्वं शिक्षापादोदकं तत:।
ज्ञानपादोदकं चाथ क्रियानिष्पत्तिकं तत:।।३।।

भावनिष्पत्तिकं चाथ ज्ञाननिष्पत्तिकं तत:।
पिण्डाकाशस्थलं चाथ बिन्द्वाकाशस्थलं तत:।।४।।

महाकाशस्थलं चाथ क्रियायाश्च प्रकाशनम्।
भावप्रकाशनं पश्चात् ततो ज्ञानप्रकाशनम्।।
स्वरूपं पृथगेतेषां कथयामि यथाक्रमम्।।५।।

भावार्थ : पहले दीक्षापादोदक फिर शिक्षापादोदक तत्पश्चात् ज्ञानपादोदक उसके बाद क्रियानिष्पत्ती पुन: भावनिष्पत्ति और ज्ञाननिष्पत्ति नामक स्थल हैं। पिंडाकाशस्थल, बिंद्वाकाशस्थल, महाकाशस्थल, क्रिया-प्रकाशनस्थल, भावप्रकाशनस्थल तथा अन्त में ज्ञानप्रकाशनस्थल हैं। अब इनके पृथक्-पृथक् स्वरूप को क्रम से बतलाऊँगा ।।३-५।।

दीक्षापादोदकस्थल - (८१)

दीक्षयाऽपगतद्वैतं यज्ज्ञानं गुरुशिष्ययोः।
आनन्दस्यैक्यमेतेन दीक्षापादोदकं स्मृतम्।।६।।

भावार्थ : (दीक्षापादोदकस्थल वर्णन)— दीक्षा के द्वारा द्वैतरहित हुआ जो ज्ञान और उसके कारण गुरु और शिष्य के आनन्द का जो ऐक्य उसे दीक्षापादोदक कहा गया है। (तात्पर्य यह है कि पहले गुरु के द्वारा दी गयी दीक्षा से शिष्य के अन्दर स्थित द्वैतज्ञान नष्ट हो जाता है और उसके अन्दर मात्र परानन्द स्थित रहता है। गुरु के अन्दर परानन्द पहले से वर्त्तमान है क्योंकि वह अपने गुरु के द्वारा पहले से दीक्षित है। अतः अब दोनों का आनन्द एक ही है। गुरु और शिष्य रूपी उपाधि के भेद से यह दो प्रतीत होता है। इस उपाधि के विगलित होने पर ऐक्य भासित होता है) ॥६॥

अथवा पादशब्देन गुरुरेव निगद्यते।
शिष्यश्चोदकशब्देन तयोरैक्यं तु दीक्षया।।७।।

भावार्थ : अथवा 'पाद' शब्द से गुरु कहा जाता है। 'उदक' शब्द से शिष्य का कथन होता है। दोनों का ऐक्य दीक्षा के द्वारा होता है ॥७॥

परमानन्द एवोक्तः पादशब्देन निर्मलः।
ज्ञानं चोदकशब्देन तयोरैक्यं तु दीक्षया।।८।।

भावार्थ : 'पाद' शब्द से निर्मल परमानन्द कहा गया है एवं 'उदक' शब्द से ज्ञान का निर्वचन होता है। इन दोनों का ऐक्य दीक्षा से होता है ॥८॥

परसंवित्प्रकाशात्मा परमानन्दभावनाम्।
अधिगम्य महायोगी न भेदं क्वापि पश्यति।।९।।

भावार्थ : महायोगी परासंवित् प्रकाशरूप होकर परमानन्द की भावना को प्राप्त होने के बाद कहीं भी भेद नहीं देखता ॥९॥

देशकालाद्यवच्छेदविहीनं नित्यनिर्मलम्।
आनन्दं प्राप्य बोधेन नान्यत् काङ्क्षति संयमी।।१०।।

भावार्थ : संयमशील योगी देश काल आदि (अर्थात् आकार) की सीमा से परे नित्य निर्मल आनन्द की बोध के द्वारा प्राप्ति कर किसी अन्य वस्तु की इच्छा नहीं करता ॥१०॥

ज्ञानामृतमपि स्वच्छं गुरुकारुण्यसम्भवम्।
आस्वाद्य रमते योगी संसारामयवर्जितः।।११।।

भावार्थ : (केवल) गुरु की कृपा से प्राप्त अत्यन्त निर्मल ज्ञानामृत का आस्वादन कर योगी संसार रूपी आमय अर्थात् रोग से रहित हुआ आत्मा स्वस्वरूप में रमण करता है ॥११॥

शिक्षापादोदकस्थल - (८२)

गुरुशिष्यमयं ज्ञानं शिक्षा योगिनमीर्यते।
तयोः समरसत्वं हि शिक्षापादोदकं स्मृतम्।।१२।।

भावार्थ : **(शिक्षापादोदकस्थल वर्णन)**— शिक्षा अर्थात् पूर्वोक्त ज्ञान का मनन और गुरुशिष्यमय अर्थात् गुरु और शिष्य की एकरूपता का ज्ञान जिनसे योगी को प्रेरणा मिलती है, उन दोनों अर्थात् शिक्षा और ज्ञान की समरसता शिक्षापादोदक कहा जाता है ॥१२॥

मथिताच्छास्त्रजलधेर्युक्तिमन्थानवैभवात्।
गुरुणा लभ्यते बोधसुधा सुमनसां गणैः।।१३।।

भावार्थ : तर्करूपी मन्थनदण्ड से गुरु के द्वारा मथित निगमागमशास्त्ररूपी समुद्र से निकली हुई शिवाद्वैतरूपी बोधसुधा विद्वज्जनों के द्वारा प्राप्त की जाती है ॥१३॥

ज्ञानचन्द्रसमुद्भूतां परमानन्दचन्द्रिकाम्।
पश्यन्ति परमाकाशे मुक्तिरात्रौ महाधियः।।१४।।

भावार्थ : (चकोररूपी) महाबुद्धिमान् योगी मुक्ति की रात्रि में ज्ञानरूपी चन्द्रमा में उत्पन्न परम आनन्दरूपी चन्द्रिका का परमाकाश अर्थात् चिदाकाश में साक्षात्कार करते हैं ॥१४॥

दृष्टे तस्मिन् परानन्दे देशकालादिवर्जिते।
द्रष्टव्यं विद्यते नान्यच्छ्रोतव्यं ज्ञेयमेव वा।।१५।।

भावार्थ : देश काल आदि से रहित उस परानन्द का साक्षात्कार हो जाने के बाद शिवयोगी के लिये कुछ भी श्रवणीय अथवा ज्ञेय नहीं रह जाता ॥१५॥

आत्मानन्देन तृप्तस्य का स्पृहा विषये सुखे।
गङ्गाजलेन तृप्तस्य कूपतोये कुतो रतिः।।१६।।

भावार्थ : आत्मानन्द से तृप्त (शिवाचार्य) की वैषयिक सुख में क्या इच्छा हो सकती है? (क्योंकि विषयसुख परिणाम में दुःखदायी होता है और आत्मानन्द नित्य निरन्तर सुख है)। जो गङ्गाजल से तृप्त है उसकी कुयें के जल में आसक्ति कैसे हो सकती है? ॥१६॥

यस्मिन्नप्राप्तकल्लोले सुखसिन्धौ निमज्जति।
सामरस्यान्महायोगी तस्य सीमा कुतो भवेत्।।१७।।

भावार्थ : (राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि) लहरों से रहित जिस सुखसमुद्र में सामरस्य के साथ महायोगी डूबा रहता है उस समुद्र की या उस आनन्द की सीमा कैसे हो सकती है? अर्थात् उस आनन्द को परिच्छिन्न नहीं किया जा सकता ॥१७॥

गुरुप्रसादचन्द्रेण निष्कलङ्केन चारुणा।
यन्मनःकुमुदं नित्यबोधितं तस्य को भ्रमः।।१८।।

भावार्थ : निष्कलङ्क अत एव सुन्दर गुरु के अनुग्रहरूपी चन्द्र से जो मनरूपी कुमुद नित्य प्रकाशित रहता है उस मन में भेद की भ्रान्ति कैसे हो सकती है ॥१८॥

ज्ञानपादोदकस्थल - (८३)

तदैक्यसम्पदानन्दज्ञानं ज्ञानगुरुर्मतः।
तत्सामरस्यं शिष्यस्य ज्ञानपादोदकं विदुः।।१९।।

भावार्थ : (ज्ञानपादोदकस्थल वर्णन)— (विद्वान् लोग) आनन्द के ज्ञान को ज्ञानगुरु मानते हैं। उसके ऐक्य की सम्पत्ति के साथ शिष्य के उस ज्ञान का सामरस्य ज्ञानपादोदक माना गया है ॥१९॥

अविद्याराहुनिर्मुक्तो ज्ञानचन्द्रः सुनिर्मलः।
प्रकाशते पराकाशे परानन्दमहाद्युतिः।।२०।।

भावार्थ : अविद्यारूपी राहु से निर्मुक्त अत एव अत्यन्त स्वच्छ तथा परानन्दरूपी महाद्युति वाला ज्ञानचन्द्र पराकाश अर्थात् चिदाकाश में प्रकाशित होता है ॥२०॥

अज्ञानमेघनिर्मुक्तः पूर्णज्ञानसुधाकरः।
आनन्दजलधेर्वृद्धिमनुपश्यन् विभासते।।२१।।

भावार्थ : अज्ञानरूपी मेघ से निर्मुक्त पूर्णज्ञानरूपी चन्द्रमा आनन्दरूपी समुद्र की वृद्धि को देंखता हुआ विशेष रूप से चमकता है ॥२१॥

ज्ञानचन्द्रोदये जाते ध्वस्तमोहतमोभराः।
पश्यन्ति परमां काष्ठां योगिनः सुखरूपिणीम्।।२२।।

भावार्थ : ज्ञानरूपी चन्द्रमा का उदय होने पर मोहान्धकारसमूह के नाश वाले योगी सुखरूपी पराकाष्ठा (अर्थात् आनन्द की अन्तिम सीमा) को देखते हैं ॥२२॥

मायारजन्या विरमे बोधसूर्ये प्रकाशिते।
निरस्तसर्वव्यापारश्चित्रं स्वपिति संयमी।।२३।।

भावार्थ : मायारूपी रात्रि के समाप्त एवं ज्ञानरूपी सूर्य के उदित होने पर संयमी अर्थात् योगी सम्पूर्ण व्यवहार से रहित होकर सोते अर्थात् सुषुप्तिस्थ जीव के समान परमानन्द का अनुभव करते रहते हैं— यह आश्चर्य है (क्योंकि सामान्य जन का समस्त व्यवहार रात्रि में नहीं बल्कि दिन में होता है) ॥२३॥

अनाद्यविद्याविच्छित्तिवेलायां परयोगिनः।
प्रकाशते परानन्दः प्रपञ्चेन विना कृतः।।२४।।

भावार्थ : अनादि अविद्या की निवृत्ति के समय पर योगी को प्रपञ्चरहित परानन्द[1] का भान होता है ॥२४॥

नित्यानन्दे निजाकारे विमले परतेजसि।
विलीनचेतसां पुंसां कुतो विश्वविकल्पना।।२५।।

भावार्थ : नित्य आनन्दस्वरूप निर्मल निजस्वरूप पर तेज में लीन चित वाले पुरुषों के लिये विश्व की कल्पना कहाँ ॥२५॥

कुतो ब्रह्मा कुतो विष्णुः कुतो रुद्रः कुतो रविः।
साक्षात्कृतपरानन्दज्योतिषः साम्यकल्पना।।२६।।

भावार्थ : कहाँ ब्रह्मा, कहाँ विष्णु, कहाँ रुद्र और कहाँ सूर्य? जिसने परानन्द तेज का साक्षात्कार कर लिया है उसकी समानता की कल्पना (किसी से भी नहीं हो सकती) ॥२६॥

अपरोक्षपरानन्दविलासस्य महात्मनः।
ब्रह्मविष्ण्वादयो देवा विशेषाः सुखबिन्दवः।।२७।।

भावार्थ : जो अपरोक्ष परानन्द के विलास से परिपूर्ण है ऐसे महात्मा की (तुलना में) ब्रह्मा विष्णु आदि देवगण सुख के विशिष्ट बिन्दु सदृश है ॥२७॥

---

१. (आनन्द दो प्रकार का होता है— सप्रपञ्चानन्द और निष्प्रपञ्चानन्द। सप्रपञ्चानन्द शिवयानन्द का दूसरा नाम है। निष्प्रपञ्चानन्द भी अपर और पर भेद से दो प्रकार का होता है। अपर आनन्द ब्रह्मा विष्णु रुद्र एवं सदाशिव पद में स्थित प्राणियों के अनुभव का विषय होता है। शक्ति अथवा शिव स्वरूप के समावेश से प्राप्त आनन्द परानन्द कहलाता है)।

यन्मात्रासहितं लोके वाञ्छन्ति विषयं नराः।
तदप्रमेयमानन्दं परमं को न वाञ्छति।।२८।।

भावार्थ : इस संसार में मनुष्य लोग जिसकी एक मात्रा अर्थात् जिसके एक अंश वाले आनन्द की कामना करते हैं उस परम अप्रमेय आनन्द को कौन नहीं चाहता? ॥२८॥

क्रियानिष्पत्तिस्थल - (८४)

परकाये क्रियापत्तिः कल्पितैव प्रकाशते।
रज्जौ भुजङ्गवद् यस्मात् क्रियानिष्पत्तिमानयम्।।२९।।

भावार्थ : **(क्रियानिष्पत्तिस्थल वर्णन)**— चूँकि परकाय अर्थात् परब्रह्म शरीर वाले शिवयोगी के अन्दर क्रिया की स्थिति कल्पित होकर दृष्ट होती है इसलिये रस्सी में सर्प की भाँति यह क्रिया करने वाला होता है। (अर्थात् शिवयोगी के शरीर में क्रिया का दर्शन भ्रममात्र है वस्तुतः वह शिवस्वरूप होने के कारण 'निष्कलं निष्क्रियं शान्तम्' हो जाता है) ॥२९॥

ज्ञानिनां यानि कर्माणि तानि नो जन्महेतवः।
अग्निदग्धानि बीजानि यथा नाङ्कुरकारणम्।।३०।।

भावार्थ : ज्ञानियों के जो कर्म होते हैं वे जन्म के हेतु नहीं बनते जैसे कि आग में जले हुए बीज अङ्कुर के कारण नहीं होते ॥३०॥

कर्मणा कृतेनापि ज्ञानिनो निरहङ्कृतेः।
विक्रिया प्रतिबिम्बस्था किं करोति हिमद्युतेः।।३१।।

भावार्थ : अहङ्काररहित ज्ञानी के द्वारा किये गये कर्म से क्या होता है? (अर्थात् उन कर्मों का ज्ञानी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता) हिमद्युति अर्थात् चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब में घटित होने वाले विकार से क्या होता है? ॥३१॥

चन्द्रस्य मेघसम्बन्धाद् यथा गमनकल्पना।
तथा देहस्य सम्बन्धादारोप्या स्यात् क्रियात्मनः।।३२।।

भावार्थ : जिस प्रकार मेघ के साथ सम्बन्ध होने से चन्द्रमा चलता हुआ प्रतीत होता है (जबकि वस्तुतः बादल ही इधर-उधर घूमते हैं न कि चन्द्रमा) उसी प्रकार देह के साथ सम्बन्ध होने से आत्मा के ऊपर क्रिया आरोपित होती है (आत्मा तो 'निष्क्रयं निश्चलं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्' है) ॥३२॥

ज्ञानी कर्मनिरूढोऽपि लिप्यते न क्रियाफलैः।
घृतादिना यथा जिह्वा भोक्त्री चापि न लिप्यते।।३३।।

भावार्थ : जिस प्रकार (घृत आदि) का भोग करने वाली जिह्वा घृत आदि से उपलिप्त नहीं होती उसी प्रकार ज्ञानी कर्म करता हुआ भी उनके फलों से उपलिप्त (अर्थात् प्रभावित) नहीं होता ।।३३।।

निरस्तोपाधिसम्बन्धे जीवे या या क्रियास्थितिः।
सा सा प्रतीतिमात्रेण निष्फला चात्र लीयते।।३४।।

भावार्थ : (अहङ्कार एवं ममकार रूप) उपाधि के सम्बन्ध से रहित हुए जीव में जो-जो क्रिया होती है वह-वह प्रतीति मात्र अर्थात् निष्फल होकर इस आत्मा में विलीन हो जाती है ।।३४।।

गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् वापि न निष्कर्मास्ति कश्चन।
स्वभावो देहिनां कर्म ज्ञानिनां तत्तु निष्फलम्।।३५।।

भावार्थ : चलते बैठते और सोते हुए भी कोई शरीरी कर्मरहित नहीं होता (अर्थात् सब लोग सब अवस्था में कर्म करते ही रहते हैं क्योंकि जिन्होंने देह का धारण किया है कर्म करना उनका स्वभाव है। अन्तर इतना ही है कि अज्ञानी जनों के कर्म कालान्तर में फल देते हैं किन्तु) ज्ञानियों के कर्म फल नहीं देते ।।३५।।

परिपूर्णमहानन्दभाविनः शुद्धचेतसः।
न भवेत् कर्मकार्पण्यं नानाभोगफलप्रदम्।।३६।।

भावार्थ : जो शुद्ध चित्त वाले अत एव परिपूर्ण महानन्द की भावना से ओत प्रोत है उनको अनेक भोगरूपी फल देने वाला कर्म कार्पण्य (अर्थात् कर्म जन्य दुःख) नहीं होता ।।३६।।

भावनिष्पत्तिस्थल - (८५)

भावः प्रतीयमानोऽपि परकाये तु कल्पितः।
शुक्तौ रजतवद् यस्माद्भावनिष्पत्तिमानयम्।।३७।।

भावार्थ : (भावनिष्पत्तिस्थल वर्णन)— परकाय अर्थात् परब्रह्मशरीरधारी शिवयोगी के अन्दर प्रतीत होने वाला भाव भी कल्पित होता है (वास्तविक नहीं)। यह शुक्ति में रजत की भाँति (भ्रमात्मक होता है)। इस कारण वह योगी भावनिष्पत्तिमान् होता है ।।३७।।

भावेन नास्ति सम्बन्धः केवलज्ञानयोगिनः।
तथापि भावं कुर्वीत शिवे संसारमोचके।।३८।।

भावार्थ : यद्यपि केवल ज्ञानयोगी का भाव कोई सम्बन्ध नहीं होता तथापि योगी को चाहिये कि वह संसारबन्धन से मुक्ति दिलाने वाले शिव के प्रति (आराध्य की) भावना करे ।।३८।।

परिपूर्णप्रबोधेऽपि भावं शम्भौ न वर्जयेत्।
भावो हि निहितस्तस्मिन् भवसागरतारकः।।३९।।

भावार्थ : प्रबोध के परिपूर्ण होने पर भी शिव के प्रति सेव्यसेवक भाव का त्याग नहीं करना चाहिये क्योंकि भावसागर से पार करने वाला भाव उस शिव में निहित रहता है ।।३९।।

निवर्त्य जन्मजं दुःखं भावः शैवो निवर्तते।
यथा काष्ठादिकं दग्ध्वा स्वयं शाम्यति पावकः।।४०।।

भावार्थ : (शैवभाव की आवश्यकता जन्मजन्य दुःख की निवृत्ति एक ही होती है) जन्महेतुक दुःख का निवारण करने के बाद शैव भाव उसी प्रकार शान्त हो जाता है, जैसे— काष्ठ आदि को जलाने के बाद अग्नि स्वयं भी शान्त हो जाता है ।।४०।।

प्रकाशिते शिवानन्दे तद्भावैः किं प्रयोजनम्।
सिद्धे साध्ये चिरेणापि साधनैः किं प्रयोजनम्।।४१।।

भावार्थ : शिवानन्द के प्रकट होने पर उसके भावों (अर्थात् शिव के प्रति आराध्य-आराधक आदि भावों) का क्या प्रयोजन? (अर्थात् वे निष्फल हो जाते हैं) बहुत विलम्ब से भी साध्य के सिद्ध होने पर साधनों का क्या प्रयोजन? ।।४१।।

एकीकृते शिवे भावे ज्ञानेन सह संयमी।
विस्मितात्मसमावेशः शिवभावे विभासते।।४२।।

भावार्थ : ज्ञान के साथ शिवभावना के एक होने पर अपने शिवसमावेश से आश्चर्यचकित संयमी शिव के रूप में विशेष रूप से प्रकाशित होता है ।।४२।।

न भावेन विना ज्ञानं न भावो ज्ञानमन्तरा।
मोक्षाय कारणं प्रोक्तं तस्मदुभयमाश्रयेत्।।४३।।

भावार्थ : भाव के बिना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के बिना भाव नहीं होता इसलिये मोक्ष के प्रति कारणभूत दोनों का आश्रयण करना चाहिये[१] ।।४३।।

ज्ञाननिष्पत्तिस्थल - (८६)

ज्ञानस्य व्यवहारेऽपि ज्ञेयाभावात् स्वभावतः।
स्वप्नवज्ज्ञाननिष्पत्त्या ज्ञाननिष्पन्न इत्यसौ।।४४।।

भावार्थ : **(ज्ञाननिष्पत्तिस्थल वर्णन)**— (शिवज्ञान से सम्पन्न शिवयोगी के) व्यवहार में भी उसके ज्ञान का विषय स्वभावतः कुछ नहीं होता (क्योंकि शिव के अतिरिक्त उसे कुछ प्रतीत नहीं होता) फलस्वरूप उसके ज्ञान की निष्पत्ति स्वप्नवत् होती है ऐसा शिवयोगी ज्ञाननिष्पन्न कहा जाता है ।।४४।।

स्वप्नजातं यथा ज्ञानं सह स्वार्थैर्निवर्तते।
तथात्मनि प्रकाशे तु ज्ञानं ज्ञेयं निवर्तते।।४५।।

भावार्थ : जिस प्रकार स्वप्न में उत्पन्न ज्ञान अपने घट पट आदि विषयों के साथ नष्ट हो जाता है उसी प्रकार आत्मस्वरूप का प्रकाश होने पर ज्ञान और ज्ञेय दोनों निवृत्त हो जाते हैं ।।४५।।

परिपूर्णे महानन्दे परमाकाशलक्षणे।
शिवे विलीनचित्तस्य कुतो ज्ञेयान्तरे कथा।।४६।।

भावार्थ : परिपूर्ण महानन्दस्वरूप अत एव परमाकाश लक्षण वाले शिव में विलीनचित्त वाले शिवयोगी के लिये दूसरे ज्ञेय की क्या चर्चा? (अर्थात् उसके लिये दूसरा ज्ञेय होता ही नहीं) ।।४६।।

अखण्डानन्दसंवित्तिस्वरूपं ब्रह्म केवलम्।
मिथ्या तदन्यदित्येषा स्थितिर्ज्ञानमिहोच्यते।।४७।।

---

१. यद्यपि ज्ञान और भाव अन्योऽन्याश्रित हैं तथापि ज्ञान की प्राप्ति के लिये सर्वप्रथम भाव की आवश्यकता होती है। यह भाव पर कोटि का न होकर अवर कोटि का होता है। अवर कोटि के भाव से ज्ञान और ज्ञान से परकोटि का भाव आता है शिवसामरस्य होता है। उसके बाद यह योगी की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह पुनः आनन्द का अनुभव करने के लिये पर भाव के स्तर पर अवरोहण करे या न करे क्योंकि भगवद्भक्ति मोक्ष से भी बढ़कर है ऐसा कुछ सिद्ध महात्माओं का सिद्धान्त है इसीलिये बाली आदि ने भगवान् से जन्म-जन्म में भक्ति की याचना की ।

भावार्थ : अखण्ड आनन्द और (अखण्ड) ज्ञान स्वरूप ब्रह्म ही केवल (अर्थात् एकमात्र सत्य है) उससे अन्य सब कुछ मिथ्या है— ऐसी स्थिति इस संसार अथवा इस विषय में ज्ञान कही जाती है ॥४७॥

सत्तात्मनानुवृत्तं यद् घटादिषु परं हि तत्।
व्यावर्तमाना मिथ्येति स्थितिर्ज्ञानमिहोच्यते।।४८।।

भावार्थ : जो घट आदि में सत्ता के रूप में अनुवृत्त है (अर्थात् व्याप्त है— 'घटोऽस्ति' 'पटोऽस्ति' 'मठोऽस्ति' सर्वत्र 'अस्ति' के रूप में भासित होता है) वह परतत्त्व अर्थात् शिव है। जो व्यावर्त्तमान् है (अर्थात् एक के होने पर दूसरे नहीं रहते जैसे घट के रहने पर पट नहीं) वे मिथ्या है। ऐसी स्थिति ज्ञान कही जाती है ॥४८॥

अकारणमकार्यं यदशेषोपाधिवर्जितम्।
तद्ब्रह्म तदहं चेति निष्ठा ज्ञानमुदीर्यते।।४९।।

भावार्थ : जो न कारण है न कार्य तथा जो समस्त उपाधियों से रहित है वह ब्रह्म है और मैं भी वही हूँ— ऐसी दृढ़ धारणा ज्ञान कही जाती है ॥४९॥

ज्ञाताप्यहं ज्ञेयमिदमिति व्यवहृतिः कुतः।
अभेदब्रह्मस्वारस्ये निरस्ताखिलवस्तुनि।।५०।।

भावार्थ : समस्त सांसारिक प्रपञ्च से रहित अभेद ब्रह्म के सामरस्य में 'मैं ज्ञाता हूँ' 'यह ज्ञेय है' ऐसा व्यवहार कहाँ सम्भव है ॥५०॥

पिण्डाकाशस्थल - (८७)

यथा पिण्डस्थ आकाशस्तथात्मा पूर्ण उच्यते।
एतदर्थविवेको यः पिण्डाकाशस्थलं विदुः।।५१।।

भावार्थ : **(पिण्डाकाशस्थल वर्णन)**— जिस प्रकार इस पिण्ड अर्थात् शरीर में स्थित आकाश पूर्ण कहा जाता है[१] उसी प्रकार इस पिण्ड में स्थित आत्मा भी पूर्ण कहा जाता है— इस अर्थ का जो विशिष्ट ज्ञान वह पिण्डाकाशस्थल कहा जाता है ॥५१॥

घटोपाधिर्यथाकाशः परिपूर्णः स्वरूपतः।
तथा पिण्डस्थितो ह्यात्मा परिपूर्णः प्रकाशते।।५२।।

---

१. तुनीलय— यावान् वा एष बाह्याकाशावत् वा एष आभ्यन्तराकाशः (छा०उ० ८।१।३)

भावार्थ : जिस प्रकार घटरूप उपाधि से युक्त आकाश स्वरूपत: परिपूर्ण होता है उसी प्रकार शरीर में स्थित आत्मा परिपूर्ण होकर प्रकाशित होता है ॥५२॥

अन्त:स्थितं पराकाशं शिवमद्वैतलक्षणम्।
भावयेद् य: सुमनसा पिण्डाकाश: स उच्यते।।५३।।

भावार्थ : अद्वैत लक्षण शिव की जो अत:स्थित पराकाश के रूप में शुद्ध मन से भावना करता है वह पिण्डाकाश कहा जाता है ॥५३॥

शिवागारमिदं प्रोक्तं शरीरं बोधदीपितम्।
षट्त्रिंशत्तत्त्वघटितं सुमन:पद्मपीठकम्।।५४।।

भावार्थ : छत्तीस तत्त्वों से रचित शुद्ध मन रूपी कमलपीठ से युक्त तथा बोध अर्थात् शिवज्ञान से दीपित (अर्थात् प्रकाशित) यह शरीर शिव का आगार (अर्थात् आवासस्थल) कहा जाता है ॥५४॥

पराकाशस्वरूपेण प्रकाश: परमेश्वर:।
हृदाकाशगुहालीनो दृश्यतेऽन्त: शरीरिणाम्।।५५।।

भावार्थ : पराकाशरूप से प्रकाशमान परमेश्वर जीवों के अन्दर हृदयाकाशरूपी गुफा में लीन दिखलायी पड़ता है ॥५६॥

एतच्छिवपुरं प्रोक्तं सप्तधातुसमावृतम्।
अत्र हृत्पङ्कजं वेश्म सूक्ष्माम्बरमनोहरम्।।५६।।

तत्र सन्निहितं साक्षात् सच्चिदानन्दलक्षणम्।
नित्यसिद्धं प्रकाशात्मा जलस्थाकाशवच्छिव:।।५७।।

भावार्थ : सात धातुओं[1] से समावृत (अर्थात् निर्मित) यह शरीर शिव का पुर कहा गया है। इसमें सूक्ष्म आकाश से युक्त अत एव मनोहर हृदयकमल शिव का अन्त:पुर है। उसमें साक्षात् सच्चिदानन्द स्वरूप नित्य सिद्ध प्रकाशमान् शिव जल में स्थित आकाश के समान विराजमान है ॥५६-५७॥

अन्तराकाशबिम्बस्थमशेषोपाधिवर्जितम् ।
घटाकाश इव च्छिन्नं भावयेच्चिन्मयं शिवम्।।५८।।

भावार्थ : (योगी को चाहिये की वह) हृदयाकाश बिम्ब में स्थित समस्त उपाधियों से रहित, चिन्मय शिव की घटाकाश के समान परिच्छिन्न रूप में भावना करे

---

१. अन्न रस, रुधिर, माँस, चर्बी, अस्थि, मज्जा और वीर्य ।

(अर्थात् जैसे महाकाश घट से अवच्छिन्न होकर भी आकाश ही है वैसे ही शिव हृदय से अवच्छिन्न होकर भी शिव ही है— ऐसी भावना करें ।।५८।।

बिन्द्वाकाशस्थल - (८८)

यथाकाशो विभुर्ज्ञेयः सर्वप्राण्युपरि स्थितः।
तथात्मेत्युपमानार्थं बिन्द्वाकाशस्थलं विदुः।।५९।।

भावार्थ : (बिन्द्वाकाशस्थल वर्णन)— समस्तप्राणियों के ऊपर स्थित आकाश जैसे व्यापक जाना जाता है उसी प्रकार आत्मा भी (समस्त प्राणियों के शरीर के अन्दर परिच्छिन्न रूप में रहकर भी व्यापक है) इस तुलना के अर्थ को विद्वान् लोग बिन्द्वाकाशस्थल कहते हैं ।।५९।।

यथैको वायुराख्यातः सर्वप्राणिगतो विभुः।
तथात्मा व्यापकः साक्षात् सर्वप्राणिगतः स्वयम्।।६०।।

भावार्थ : जिस प्रकार एक ही वायु समस्त प्राणियों में रहता है और व्यापक है उसी प्रकार एक आत्मा साक्षात् स्वयं समस्त प्राणियों में रहता है और व्यापक है[१] (अर्थात् प्राणियों के अन्दर और बाहर सर्वत्र स्थित है) ।।६०।।

यथा वह्नेरमेयात्मा सर्वत्रैकोऽपि भासते।
तथा शम्भुः समस्तात्मा परिच्छेदविवर्जितः।।६१।।

भावार्थ : जैसे अपरिमेय अग्नि एक होते हुए भी सर्वत्र भासित होता है उसी प्रकार सबके आत्मस्वरूप शिव भी (एक होते हुए) अपरिमित है[२] ।।६१।।

सर्वेषां देहिनामन्तश्चित्ततोऽयं प्रकाशते।
तस्मिन् प्रतिफलत्यात्मा शिवो दर्पणवद् विभुः।।६२।।

भावार्थ : सभी जीवों के अन्दर चित्तरूपी जल प्रकाशित होता है। जिस प्रकार दर्पण में उसी प्रकार उस (चित्तरूपी जल) में आत्मारूपी शिव प्रतिबिम्बित होते हैं

---

१. तुलनीय— वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।
(कठोप० २।५।१०)

२. तुलनीय— अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।
(कठोप० २।५।९)

(अथवा शिव आत्मा के रूप में प्रतिबिम्बित होते हैं किन्तु चित्त को दर्पण या शुद्ध जल की भाँति स्वच्छ होना चाहिये) ॥६२॥

एको वशीकृतः संवित्प्रकाशात्मा परात्परः।
सर्वप्राणिगतो भाति तथापि विभुरुच्यते॥६३॥

भावार्थ : परात्पर अतएव अवशीकृत अर्थात् किसी के नियन्त्रण में न रहने वाला अर्थात् सर्वतन्त्रस्वतन्त्र प्रकाशस्वरूप परमेश्वर समस्त प्राणियों में प्रकाशित हो रहा है (अर्थात् अव्यापक जैसा दिख रहा है) तो भी वह व्यापक कहा जाता है (उसकी दृश्यमान अव्यापकता उपाधिहेतुकी है) ॥६३॥

एक एव यथा सूर्यस्तेजसा भाति सर्वगः।
तथात्मा शक्तिभेदेन शिवः सर्वगतो भवेत्॥६४॥

भावार्थ : जैसे एक ही सूर्य अपने तेज से सर्वगामी भासित होता है उसी प्रकार परमात्मा शिव भी अपने शक्तिभेद से सर्वव्यापी है ॥६४॥

महाकाशस्थल - (८९)

पिण्डाण्डस्थं महाकाशं न भिन्नं तद्वदात्मनः।
अभिन्नः परमात्मेति महाकाशस्थलं विदुः॥६५॥

भावार्थ : **(महाकाशस्थल वर्णन)**— जिस प्रकार पिण्ड अर्थात् शरीर एवं अण्ड अर्थात् ब्रह्माण्ड (या प्राकृताण्ड अथवा मायाण्ड) में स्थित आकाश परस्पर भिन्न नहीं होता उसी प्रकार (जीवात्मा से) परमात्मा अभिन्न है इसको जानना महाकाशस्थल कहा गया है ॥६५॥

यथा न भिन्नमाकाशं घटेषु च मठेषु च।
तथाण्डेषु पिण्डेषु स्थितो ह्यात्मा न भिद्यते॥६६॥

भावार्थ : जिस प्रकार घटों अथवा मठों में स्थित अर्थात् उनसे अवच्छिन्न आकाश भिन्न नहीं होता उसी प्रकार ब्रह्माण्डों और (ब्रह्माण्ड के अन्दर रहने वाले) व्यष्टि शरीरों में स्थित आत्मा भी भिन्न नहीं है ॥६६॥

अनिर्देश्यमनौपम्यमवाङ्मानसगोचरम्।
सर्वतोमुखसम्पन्नं सत्तानन्दं चिदात्मकम्॥६७॥

कालातीतं कलातीतं क्रमयोगादिवर्जितम्।
स्वानुभूतिप्रमाणस्थं ज्योतिषामुदयस्थलम्॥६८॥

शिवाख्यं परमं ब्रह्म परमाकाशलक्षणम्।
लिङ्गमित्युच्यते सद्भिर्यद्विना न जगत्स्थितिः।।६९।।

भावार्थ : अनिर्देश्य, अतुलनीय, वाणी और मन का विषय न होने वाले सर्वतोमुखी, सत् चित् आनन्दस्वरूप, काल से परे, कलातीत अर्थात् अँड़तीस कलाओं से रहित, उत्पत्ति आदि क्रम से रहित, अपना अनुभव ही जिसमें प्रमाण है ऐसे, नक्षत्र आदि (= सूर्य चन्द्र आदि) की के उत्पत्ति के मूल कारण, परमाकाशस्वरूप शिव नामक परब्रह्म को सत्पुरुषों के द्वारा लिङ्ग कहा जाता है। उनके विना संसार की सत्ता सम्भव नहीं ।।६७-६९।।

परमाकाशमव्यक्तं प्रबोधानन्दलक्षणम्।
लिङ्गं ज्योतिर्मयं प्राहुर्लीयन्ते यत्र योगिनः।।७०।।

भावार्थ : जिसमें योगी लोग लीन हो जाते हैं उस परमाकाश अव्यक्त, चित् आनन्द स्वरूप ज्योतिर्मय तत्त्व को विद्वज्जन लिङ्ग कहते हैं ।।७०।।

संविदेव परा काष्ठा परमानन्दरूपिणी।
तामाहुः परमाकाशं मुनयो मुक्तसंशयाः।।७१।।

भावार्थ : परमानन्दरूपणी संवित् ही पराकाष्ठा (अर्थात् अन्तिम सीमा) है। संशयरहित मुनिगण उसे परमाकाश कहते हैं ।।७१।।

तरङ्गादि यथा सिन्धोः स्वरूपान्नातिरिच्यते।
तथा शिवाच्चिदाकाशाद् विश्वमेतन्न भिद्यते।।७२।।

भावार्थ : जिस प्रकार (समुद्र में उठने वाली) लहरें आदि समुद्र के स्वरूप से भिन्न नहीं होती उसी प्रकार चिदाकाशरूपी शिव से उत्पन्न होने वाला यह विश्व शिव से भिन्न नहीं है ।।७२।।

यथा पुष्पपलाशादि वृक्षरूपान्न भिद्यते।
तथा शिवात् पराकाशाज्जगतो नास्ति भिन्नता।।७३।।

भावार्थ : जिस प्रकार (वृक्ष के पुष्प पत्र) वृक्ष के रूप से भिन्न नहीं होते उसी प्रकार जगत् पराकाशरूप शिव से भिन्न नहीं है ।।७३।।

यथा ज्योतींषि भासन्ते भूताकाशे पृथक् पृथक्।
तथा भान्ति पराकाशे ब्रह्माण्डानि विशेषतः।।७४।।

भावार्थ : जिस प्रकार भूताकाश[१] में नक्षत्रगण पृथक्-पृथक् प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार पराकाश में ब्रह्माण्ड विशेष रूप से (अर्थात् असंख्य रूप से) घूमते रहते हैं ॥७४॥

निरस्तोपाधिसम्बन्धं निर्मलं संविदात्मकम्।
पराकाशं जगच्चित्रविलासालम्बभित्तिकाम्।।७५।।

भावार्थ : उपाधि सम्बन्ध से रहित निर्मल संवित्स्वरूप आकाश जगत् के चित्रविचित्र विलास अर्थात् विस्तार की आधारभित्ति है ॥७५॥

क्रियाप्रकाशस्थल - (९०)

शिवस्य परिपूर्णस्य चिदाकाशस्वरूपिणः।
आत्मत्वेनानुसन्धनात् क्रियाद्योतनवान् यमी।।७६।।

भावार्थ : **(क्रियाप्रकाशस्थल वर्णन)**— चिदाकाशस्वरूप परिपूर्ण शिव का आत्मा के रूप में अनुसन्धान करने से संयमी क्रियाप्रकाशवान् होता है ॥७६॥

निष्कलङ्कचिदानन्दगगनोपमरूपिणः ।
शिवस्य परिपूर्णस्य वृत्तिश्चैतन्यरूपिणी।।७७।।

भावार्थ : निष्कलङ्क चिदानन्द आकाशरूप परिपूर्ण शिव की वृत्ति (अर्थात् 'मैं शिव हूँ'— यह भावना) चित्स्वरूप है ॥७७॥

निष्कलङ्के निराकारे नित्ये परमतेजसि।
विलीनचित्तवृत्तस्य तथा शक्तिः क्रियोच्यते।।७८।।

भावार्थ : निष्कलङ्क निराकार नित्य एवं परमतेजःस्वरूप शिव में विलीन चित्तवृत्ति वाले (शिवयोगी) की उसी प्रकार की शक्ति क्रिया कही जाती है ॥७८॥

सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वगः परमेश्वरः।
तदैक्यचिन्तया योगी तादृशात्मा प्रकाशते।।७९।।

भावार्थ : परमेश्वर सर्वज्ञाता सर्वकर्त्ता और स्र्वव्यापी है। उसके साथ ऐक्यभावना के द्वारा योगी तादृशात्मा (अर्थात् सर्वज्ञाता सर्वकर्त्ता आदि के रूप में) प्रकाशित होता है ॥७९॥

---

१. आकाश एक होते हुए भी तीन प्रकार का है— भूताकाश, चित्ताकाश और चिदाकाश। आँख बन्द करने पर जो अँधेरा दिखायी पड़ता है वह भूताकाश का रूप है।

सर्वेन्द्रियाणां व्यापारे विद्यमानेऽपि संयमी।
प्रत्युन्मुखेन मनसा शिवं पश्यन् प्रमोदते।।८०।।

भावार्थ : संयमी शिवयोगी अपने समस्त इन्द्रियों के समस्त व्यापार के विद्यमान होने पर भी प्रत्युन्मुख (अर्थात् उससे विपरीत स्थिति में स्थित) मन के द्वारा शिव का साक्षात्कार करता हुआ प्रमुदित होता रहता है ।।८०।।

कूटस्थमचलं प्राज्ञं गुणातीतं गुणोत्तरम्।
शिवतत्त्वस्वरूपेण पश्यन् योगी प्रमोदते।।८१।।

भावार्थ : कूटस्थ अचल प्रकृष्ट ज्ञानवान् गुणों से परे एवं गुणोत्तर (अर्थात् पूर्ण ज्ञान वैराग्य आदि गुणों से उत्कृष्ट) शिव तत्त्व को स्वरूपेण देखता हुआ (अर्थात् उक्त गुणों वाला शिव मैं ही हूँ— ऐसा समझने वाला योगी आनन्दयुक्त रहता है) ।।८१।।

परात्मनि क्रिया सर्वा गन्धर्वनगरीमुखा।
प्रकाशत इति प्रोक्तं क्रियायास्तु प्रकाशनम्।।८२।।

भावार्थ : जब परमात्मा में घटित होने वाली समस्त क्रियायें गन्धर्वनगरी के समान (तुच्छ) होकर प्रकाशवती है तो इसको क्रियाप्रकाशन कहा जाता है ।।८२।।

भावप्रकाशस्थल - (९१)

तरङ्गाद्या यथा सिन्धौ न भिद्यन्ते तथात्मनि।
भावा बुद्ध्यादयः सर्वे यत्तद् भावप्रकाशनम्।।८३।।

भावार्थ : (भावप्रकाशस्थल वर्णन)— जिस प्रकार समुद्र में उठने वाली लहरें आदि (समद्र से) भिन्न नहीं होतीं उसी प्रकार आत्मा में उठने वाले बुद्धि आदि सब भाव (आत्मा से भिन्न नहीं—यह) जो है वह भावप्रकाशन होता है ।।८३।।

शिव एव जगत्सर्वं शिव एवाहमित्यपि।
भावयन् परमो योगी भावदोषैर्न बाध्यते।।८४।।

भावार्थ : 'यह सम्पूर्ण संसार शिव ही है। मैं भी शिव ही हूँ'— ऐसी भावना करने वाला परमयोगी संसार अथवा जन्म के दोषों से उपलिप्त नहीं होता ।।८४।।

शिवभावे स्थिरे जाते निर्लेपस्य महात्मनः।
ये ये भावाः समुत्पन्नास्ते ते शिवमयाः स्मृताः।।८५।।

भावार्थ : (सांसारिक विषय वासनाओं से) निर्लिप्त महात्मा शिवयोगी के अन्दर जो-जो भाव उत्पन्न होते हैं वे सब के सब शिवमय माने गये हैं ॥८५॥

अद्वितीयशिवाकारभावनाध्वस्तकर्मणा ।
न किञ्चिद्भाव्यते साक्षात् शिवादन्यन्महात्मना ।।८६।।

भावार्थ : अद्वितीय शिवाकार की भावना से समस्त कर्मों का नाश करने वाले महात्मा शिवयोगी को प्रत्यक्षतः शिव से अतिरिक्त न तो कुछ भी दिखायी देता और न अनुभूत होता ॥८६॥

गलिताज्ञानबन्धस्य केवलात्मानुभाविनः।
यत्र यत्र इन्द्रियासक्तिस्तत्र तत्र शिवात्मता।।८७।।

भावार्थ : जिसका अज्ञानबन्धन नष्ट हो गया है ऐसे केवलात्मा का अनुभव करने वाले शिवयोगी की जिन-जिन विषयों में इन्द्रियसक्ति होती है उस-उस विषय में शिवत्व ही अनुभूत होता है[1] (तथा उसके लिये अथवा योगी की इच्छा होने पर सब के लिये उसमें शिव ही दिखाई पड़ता है) ॥८७॥

रागद्वेषादयो भावाः संसारक्लेशकारणम्।
तेषामुपरमो यत्र तत्र भावः शिवात्मकः।।८८।।

भावार्थ : राग द्वेष आदि भाव संसाररूपी कलेश के कारण होते हैं। जिसमें वे नष्ट या शान्त हो गये उसमें शिवात्मक भाव आ जाता है ॥८८॥

यथा सूर्यसमाक्रान्तौ न शक्नोति तमः सदा।
तथा प्रकाशमात्मानं नाविद्याक्रामति स्वयम्।।८९।।

भावार्थ : जिस प्रकार सूर्य के निकलने पर अन्धकार नहीं ठकर सकता उसी प्रकार प्रकाशमान् आत्मा के समक्ष अविद्या का स्वयं आक्रमण नहीं होता ॥८९॥

ज्ञानप्रकाशस्थल - (९२)

मुख्यार्थेऽसम्भवे जाते लक्षणायोगसंश्रयात्।
तज्ज्ञानयोजनं यत्तदुक्तं ज्ञानप्रकाशनम्।।९०।।

---

१. मीराबाई के पति राजा रत्नसिंह ने मीरा की कृष्णभक्ति से रुष्ट होकर उन्हें मारने के लिये पिटारा में साँप बन्द कर भेजा था। स्नान करने के बाद मीरा ने जब पिटारा खोला तो उसमें उसे शालिग्राम की मूर्ति मिली।

भावार्थ : **(ज्ञानप्रकाशस्थल वर्णन)**— वाच्यार्थ के असम्भव अर्थात् बाधित होने पर लक्षणा[1] की सहायता से उस ज्ञान अर्थात् अङ्गलिङ्ग के ज्ञान की जो योजना वह ज्ञानप्रकाशन कहा गया है ।।९०।।

मुक्तस्य ज्ञानसम्बन्धो ज्ञेयाभावः स्वभावतः।
उपाधिसहितं ज्ञानं न भेदमतिवर्तते।।९१।।

भावार्थ : जीवमुक्त का ज्ञानसम्बन्ध अर्थात् लक्ष्यार्थरूप ज्ञान से समन्वय स्वाभाविक है। फलतः ज्ञेय का अभाव भी स्वाभाविक है। जो ज्ञान उपाधिसहित होता है उसमें भेद का अभाव नहीं रहता अर्थात् भेद रहता ही है ।।९१।।

ज्ञानमित्युच्यते सद्भिः परिच्छेदोऽपि वस्तुनः।
परात्मन्यपरिच्छेदे कुतो ज्ञानस्य सम्भवः।।९२।।

भावार्थ : विद्वान् लोग वस्तु के परिच्छेद को भी ज्ञान कहते हैं (घटत्वावच्छिन्न घट में घटत्वावच्छेद ही ज्ञान है। वही घट को अवच्छिन्न या परिच्छिन्न करता है) परमात्मा परिच्छेद से रहित है उसमें विषयविषयी भाव अर्थात् सम्बन्ध कैसे सम्भव हो सकता है ।।९२।।

ज्ञानस्याविषये तत्त्वे शिवाख्ये चित्सुखात्मनि।
आत्मैकत्वानुसन्धानं ज्ञानमित्युच्यते बुधैः।।९३।।

भावार्थ : ज्ञान के अविषयभूत चिदानन्दस्वरूप शिव नामक तत्त्व के साथ आत्मा के एकत्व के अनुसन्धान को विद्वान् लोग ज्ञान कहते हैं ।।९३।।

अपरिच्छिन्नमानन्दं सत्ताकारं जगन्मयम्।
ब्रह्मेति लक्षणं ज्ञानं ब्रह्मज्ञानमिहोच्यते।।९४।।

---

१. 'तत्त्वमसि' महावाक्य में 'तत्' पद का वाच्य ब्रह्म और 'त्वम्' पद का वाच्य जीव होता है। चूँकि 'तत्' एवं 'त्वम्' दोनों पद प्रथमा विभक्त्यन्त है अतः दोनों में अभेद सम्बन्ध माना जाता है। 'तत्' पद का वाच्यार्थ ब्रह्म सर्वज्ञाता सर्वशक्तिमान् सर्वकर्त्ता आदि है जबकि 'त्वम्' पद का वाच्य जीव अल्पज्ञ, अल्प शक्तिमान् एवं अल्पकर्तृत्व से युक्त है। ऐसी स्थिति में दोनों में अभेद कैसे सम्भव है? इस प्रश्न के उत्तर में यहाँ भागत्याग लक्षणा का आश्रयण करना पड़ता है। दोनों पदों के वाच्यार्थ के एक भाग 'सर्व' एवं 'अल्प' का त्याग कर देने पर केवल 'ज्ञ' अर्थात् चैतन्य शेष बचता है और इस प्रकार लक्षणा के द्वारा 'तत्' एवं 'त्वम्' में अभेद हो जाता है। इसी प्रकार—

कार्योपाधिरयं जीवः करणोपाधिरीश्वरः।
कार्यकारणातां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते।।

के अनुसार कार्योपाधि जीव की तथा कारणोपाधि ईश्वर की उपाधियों का त्याग करने पर पूर्णबोध अर्थात् पूर्ण चैतन्य शेष रहता है जो कि एक और अद्वितीय है।

भावार्थ : ब्रह्म अखण्ड आनन्द रूप, सत्ताकार अर्थात् सद् रूप तथा जगन्मय अर्थात् विश्वरूप है इस लक्षण वाला जो ज्ञान है वही इस संसार में ब्रह्मज्ञान कहा जाता है ।।९४।।

ब्रह्मज्ञाने समुत्पन्ने विश्वोपाधिविवर्जिते।
सर्वं संविन्मयं भाति तदन्यन्नैव दृश्यते।।९५।।

भावार्थ : विश्वरूप उपाधि से रहित ब्रह्मज्ञान के उत्पन्न होने पर सब कुछ चिन्मय अर्थात् ज्ञानस्वरूप भासित होता है। उससे भिन्न कुछ नहीं दिखायी देता ।।९५।।

तस्मादद्वैतविज्ञानमपवर्गस्य कारणम्।
भावयन् सततं योगी संसारेण न लिप्यते।।९६।।

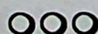
भावार्थ : इस कारण 'अद्वैत विज्ञान अपवर्ग अर्थात् मोक्ष का कारण है'— ऐसी निरन्तर भावना करने वाला योगी संसार से लिप्त नहीं होता ।।९६।।

नित्ये निर्मलसत्त्वयोगिषु परे निर्वासने निष्कले
सर्वातीतपदे चराचरमये सत्तात्मनि ज्योतिषि।
संविद्व्योम्नि शिवे विलीनहृदयस्तद्भेदवैमुख्यत:
साक्षात् सर्वगतो विभाति विगलद्विश्वः स्वयं संयमी।।९७।।

भावार्थ : नित्य, निर्मल सत्त्वयोगियों में पर अर्थात् प्रधान, वासनारहित, निष्कल, सर्वातीत, चराचरमय, सत्स्वरूप, तेजोमय, चिदाकाशरूपी शिव में विलीनहृदय वाला, भेद-भावना से रहित, संसार को तिरस्कृत करने वाला, संयमी अर्थात् शिवयोगी स्वयं साक्षात् सर्वव्यापी के रूप में प्रकाशित होता है ।।९७।।

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ शरणस्थले दीक्षापादोदकस्थलादिद्वादशविधस्थल-प्रसङ्गो नाम एकोनविंशतितमः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के शरणस्थलविषयक-द्वादशविधलिङ्गस्थलप्रसङ्ग नामक एकोनविंश परिच्छेद की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।१९।।



विंश: परिच्छेद:

लिंगस्थलांतर्गत

ऐक्यस्थल

अगस्त्य उवाच—

स्थलभेदास्त्वया प्रोक्ता: शरणस्थलसंश्रिता:।
ऐक्यस्थलगतान् ब्रूहि स्थलभेदान् गणेन्द्र मे।।१।।

भावार्थ : (ऐक्यस्थल वर्णन)— अगस्त्य ने कहा— हे गणेश्वर! आपने शरणस्थल में आने वाले (अवान्तर) स्थलभेदों को बतलाया। अब मुझे ऐक्यस्थल में आने वाले स्थलभेदों को बतलाइये ॥१॥

श्रीरेणुक उवाच—

स्थलानां नवकं चैक्यस्थलेऽस्मिन् प्रकीर्त्यते ।।२।।

तत्स्वीकृतप्रसादैक्यस्थलमादौ प्रकीर्तितम्।
शिष्टोदनस्थलं चाथ चराचरलयस्थलम्।।३।।

भाण्डस्थलं तत: प्रोक्तं भाजनस्थलमुत्तमम्।
अङ्गालेपस्थलं पश्चात् स्वपराज्ञस्थलं तत:।।४।।

भावाभावविनाशं च ज्ञानशून्यस्थलं तत:।
तदेषां क्रमशो वक्ष्ये शृणु तापस लक्षणम्।।५।।

भावार्थ : श्रीरेणुकाचार्य ने कहा— इस ऐक्यस्थल में नव स्थलों की चर्चा की जाती है। पहला स्वीकृतप्रसादैक्यस्थल कहा गया है। फिर शिष्टौदनस्थल, चराचरलयस्थल, भाण्डस्थल फिर भाजनस्थल कहा गया। उसके पश्चात् अंगालेपस्थल फिर स्वपराज्ञस्थल पुन: भावाभावविनाशस्थल और अन्त में ज्ञानशून्यस्थल वर्णित है। हे तपस्विन्! अब इनका क्रम से लक्षण बतला रहा हूँ। सुनो ॥२-५॥

स्वीकृतप्रसादिस्थल - (९३)

मुख्यार्थो लक्षणार्थश्च यत्र नास्ति चिदात्मनि।
विशृङ्खलतया तस्य प्रसाद: स्वीकृतो भवेत्।।६।।

भावार्थ : (स्वीकृतप्रसादैक्यस्थल वर्णन)— चिदात्मा अर्थात् ज्ञानप्रकाशसम्पन्न जिसमें मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ विशृङ्खलतया अर्थात् पृथक्-पृथक् नहीं है (अर्थात् दोनों अर्थ एक हो गये हैं) उसका प्रसादपूर्ण ज्ञानप्रसाद के रूप में स्वीकृत होता है ॥६॥

मातृमेयप्रमाणादिव्यवहारे विहारिणीम्।
संवित्साक्षात्कृतिं लब्ध्वा योगी स्वात्मनि तिष्ठति।।७।।

भावार्थ : प्रमाता प्रमेय और प्रमाण आदि के व्यवहार में रमण करने वाली संवित् का साक्षात्कार प्राप्त कर ज्ञानप्रकाशसम्पन्न शिवयोगी अपने सवरूप में स्थित होता है ॥७॥

अद्वैतबोधनिर्धूतभेदावेशस्य योगिनः।
साक्षात्कृतमहासंवित्प्रकाशस्य क्व बन्धनम्।।८।।

भावार्थ : अद्वैत बोध के द्वारा द्वैत आवेश को हटाने वाले तथा महासंवित् प्रकाश का साक्षात्कार करने वाले योगी का बन्धन कहाँ? (अर्थात् वह मुक्त हो जाता है) ॥८॥

चिदात्मनि शिवे न्यस्तं जगदेतच्चराचरम्।
जायते तन्मयं सर्वमग्नौ काष्ठदिकं यथा।।९।।

भावार्थ : जिस प्रकार अग्नि में डाला गया काष्ठ आदि तन्मय (अर्थात् अग्निस्वरूप) हो जाता है उसी प्रकार चित्स्वरूप शिव को समर्पित यह समस्त चराचर जगत् (शवमय हो जाता है) ॥९॥

न भाति पृथ्वी न जलं न तेजो नैव मारुतः।
नाकाशो न परं तत्त्वं शिवे दृष्टे चिदात्मनि।।१०।।

भावार्थ : चिदात्मा शिव का साक्षात्कार होने पर पृथिवी जल तेज वायु आकाश या परतत्त्व (अर्थात् अन्य पदार्थ) भान नहीं होते (अर्थात् शिव से भिन्न रूप में नहीं दिखते) ॥१०॥

ज्योतिर्लिङ्गे चिदाकारे ज्वलत्यन्तर्निरन्तरम्।
विलीनं निखिलं तत्त्वं पश्यन् योगी न लिप्यते।।११।।

भावार्थ : (अपने हृदय के) अन्दर चित्स्वरूप ज्योतिर्लिंग के निरन्तर प्रकाशित रहने पर समस्त तत्त्वों को विलीन देखने वाला योगी (सांसारिकता के मूलभूत छत्तीस तत्त्वों से) लिप्त नहीं होता ॥११॥

अन्तर्मुखेन मनसा स्वात्मज्योतिषि चिन्मये।
सर्वानप्यर्थविषयान् जुह्वन् योगी प्रमोदते।।१२।।

भावार्थ : चिन्मय आत्मरूपी तेज अर्थात् अग्नि में समस्त विषयों का अन्तर्मुखी मन से हवन करने वाला योगी आनन्दित होता रहता है ।।१२।।

सच्चिदानन्दजलधौ शिवे स्वात्मनि निर्मलः।
समर्प्य सकलान् भुङ्क्ते विषयान् तत्प्रसादतः।।१३।।

भावार्थ : निर्मल योगी सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मशिव में सम्पूर्ण विषयों का समर्पण कर उस (शिव) की कृपा से उनका भोग करता है ।।१३।।

शिष्टोदनस्थल - (९४)

प्रकाशते या सर्वेषां माया सैवोदनाकृतिः।
लीयते तत्र चिल्लिङ्गे शिष्टं तत्परिकीर्तितम्।।१४।।

भावार्थ : **(शिष्टोदनस्थल वर्णन)**— जो माया समस्त (अर्थात् विज्ञानाकल प्रलयाकल आदि सकल जीवों) को प्रकाशित होती है (अर्थात् तत्तत् शरीर इन्द्रिय रूप में व्यवहार का विषय बनती है) वह ओदन अर्थात् चावल सदृश है। उसका जो उस चित्स्वरूप में लय होता है वह शिष्ट कहा गया है ।।१४।।

जगदङ्गे परिग्रस्ते मायापाशविजृम्भिते।
स्वात्मज्योतिषि बोधेन तदेकमवशिष्यते।।१५।।

भावार्थ : माया के पाश अर्थात् माया के कला विद्या राग काल नियति रूप पाँच कञ्चुक तथा उससे उत्पन्न प्रकृति से लेकर भूमि तक के तीस तत्त्वरूपी पाश से बँधे जगद्रूपी शरीर के आत्मज्योति में विलीन हो जाने पर एकमात्र माया तत्त्व शेष रह जाता है ।।१५।।

अखण्डसच्चिदानन्दपरब्रह्मस्वरूपिणः ।
जीवन्मुक्तस्य धीरस्य माया कैङ्कर्यवादिनी।।१६।।

भावार्थ : यह माया अखण्ड सत् चित् आनन्द रूप परब्रह्म हुए धीर एवं जीवन्मुक्त शिवयोगी की दासी बनकर रहती है ।।१६।।

विश्वसंमोहिनी माया बहुशक्तिनिरङ्कुशा।
शिवैकत्वमुपेतस्य न पुरः स्थातुमीहति।।१७।।

भावार्थ : संसार की मोह में डालने वाली तथा असीम शक्ति से सम्पन्न होने के कारण निरङ्कुश माया शिवैकत्व को प्राप्त योगी के सामने टिकने का साहस नहीं करती ॥१७॥

ज्योतिर्लिङ्गे चिदाकारे निमग्नेन महात्मना।
भुज्यमाना यथायोगं नश्यन्ति विषयाः स्वतः॥१८॥

भावार्थ : चिद्रूप ज्योतिर्लिङ्ग में निमग्न महात्मा शिवयोगी के द्वारा यथायोग (अर्थात् अपनी योग्यता एवं क्रम के अनुसार) भोग किये जाने वाले विषय स्वयं नष्ट हो जाते हैं (अर्थात् योगी के अन्दर विलीन हो जाते हैं) ॥१८॥

शब्दादयोऽपि विषया भुज्यमानास्तदिन्द्रियैः।
आत्मन्येव विलीयन्ते सरितः सागरे यथा॥१९॥

भावार्थ : शब्द आदि (=रूप रस गन्ध स्पर्श) विषय योगी की इन्द्रियों के द्वारा भुज्यमान होकर आत्मा में उसी प्रकार विलीन हो जाते हैं जैसे नदियाँ समुद्र में मिलकर (विलीन हो जाती है) ॥१९॥

अर्थजातमशेषं तु ग्रसन् योगी प्रशाम्यति।
स्वात्मनैवास्थितो भानुस्तेजोजालमशेषतः॥२०॥

भावार्थ : योगी सम्पूर्ण विषयग्राम का उपभोग कर आत्मा में स्थित हो जाता है जैसे कि सूर्य (सबको प्रकाशित कर अपने तेजोजल को समेटकर स्वयं शान्त हो जाता है) ॥२०॥

चराचरलयस्थल - (९५)

लिङ्गैक्ये तु समापन्ने चरणाचरणे गते।
निर्देही स भवेद्योगी चराचरविनाशकः॥२१॥

भावार्थ : **(चराचरलयस्थल वर्णन)**— चर तथा अचर जब लिङ्ग के साथ एक हो जाते हैं तब वह योगी देहरहित होता हुआ चराचर का विनाशक हो जाता है ॥२१॥

अनाद्यविद्यामूला हि प्रतीतिर्जगतामियम्।
स्वात्मैकबोधात्तन्नाशे कुतो विश्वप्रकाशनम्॥२२॥

भावार्थ : जगत् का यह भान अनादि अविद्या के कारण है। (संसार का) अपनी आत्मा (अर्थात् शिव) के साथ ऐक्य का ज्ञान होने पर उस अविद्या का नाश होने के पश्चात् विश्व का आभासन कहाँ ॥२२॥

यथा मेघाः समुद्भूता विलीयन्ते नभस्थले।
तथात्मनि विलीयन्ते विषयाः स्वानुभाविनः।।२३।।

भावार्थ : जिस प्रकार आकाश में उत्पन्न मेघ आकाश में ही विलीन हो जाते हैं उसी प्रकार स्वस्वरूप का अनुभव करने वाले शिवयोगी की आत्मा में सारे विषय विलीन हो जाते हैं ।।२३।।

स्वप्ने दृष्टं यथा वस्तु प्रबोधे लयमश्नुते।
तथा सांसारिकं सर्वमात्मज्ञाने विनश्यति।।२४।।

भावार्थ : जिस प्रकार स्वप्न में देखी गयी वस्तु जागने पर लीन हो जाती है उसी प्रकार संसार का सब कुछ पदार्थ आत्मज्ञान होने पर लुप्त हो जाता है ।।२४।।

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभ्यः परावस्थामुपेयुषः।
किं वा प्रमाणं किं ज्ञेयं किं वा ज्ञानस्य साधनम्।।२५।।

भावार्थ : जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति से परे अर्थात् तुरीय एवं तुरीयातीत अवस्था को प्राप्त होने वाले शिवयोगी के लिये क्या प्रमाण?, क्या ज्ञेय? और क्या ज्ञान का साधन? (अर्थात् ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय यह त्रिपुटी ज्ञान नष्ट हो जाता है) ।।२५।।

तुर्यातीतपदं यत्तद् दूरं वाङ्मनसाध्वनः।
अनुप्रविश्य तद्योगी न भूयो विश्वमीक्षते।।२६।।

भावार्थ : तो तुरीयातीत अवस्था है वह वाणी एवं मन की पहुँच से परे है। उसमें प्रवेश कर योगी विश्व की ओर नहीं देखता ।।२६।।

नान्यत् पश्यति योगीन्द्रो नान्यज्जानाति किञ्चन।
नान्यच्छृणोति सन्दृष्टे चिदानन्दमये शिवे।।२७।।

भावार्थ : शिवयोगी जब चिदानन्दमय शिव का सम्यक् दर्शन (अर्थात् साक्षात्कार) कर लेता है तब वह (शिव के अतिरिक्त अथवा अपने से भिन्न) किसी अन्य को न देखता, न जानता और न सुनता है। अर्थात् मलशक्ति का क्षय हो जाने से उसे मायिक रूप रस आदि का अनुभव नहीं होता ।।२७।।

असदेव जगत्सर्वं सदिव प्रतिभासते।
ज्ञाते शिवे तदज्ञानं स्वरूपमुपपद्यते।।२८।।

भावार्थ : (शिवज्ञान के पहले) यह सम्पूर्ण असत् जगत् सत् जैसा प्रतीत होता है, शिव का ज्ञान होने पर वह अज्ञान (अर्थात् असत् को सत् समझने की बुद्धि अथवा भेदात्मकज्ञान) स्वरूप को प्राप्त हो जाती है क्योंकि स्वरूप स्वयं चित् रूप है ।।२८।।

भाण्डस्थल - (९६)

ब्रह्माण्डशतकोटीनां सर्गस्थितिलयान् प्रति।
स्थानभूतो विमर्शो यस्तद्भाण्डस्थलमुच्यते।।२९।।

भावार्थ : (भाण्डस्थल वर्णन)— सैकड़ों करोड़ ब्रह्माण्डों की सृष्टि स्थिति और प्रलय के प्रति जो स्थानभूत अर्थात् आधार स्थल विमर्श है उसको भाण्डस्थल कहा जाता है ।।२९।।

विमर्शाख्या पराशक्तिर्विश्वोद्भासनकारिणी।
साक्षिणी सर्वभूतानां समिन्धे सर्वतोमुखी।।३०।।

भावार्थ : (ईश्वर की) विमर्श नामक पराशक्ति जो कि विश्व की रचना का कारण है, समस्त भूतों की साक्षिणी बनकर सर्वतोमुखी होती हुई (अर्थात् सम्पूर्ण एवं नाना रूपों में) प्रकाशित हो रही है ।।३०।।

विश्वं यत्र लयं याति विभात्यात्मा चिदाकृतिः।
सदानन्दमयः साक्षात् सा विमर्शमयी कला।।३१।।

भावार्थ : जिसमें सम्पूर्ण विश्व लीन हो जाता है, जिसके कारण आत्मा चित् एवं आनन्दमय स्वरूप में भासित होता है वह साक्षात् विमर्शमयी कला है ।।३१।।

पराहन्तासमावेशपरिपूर्णविमर्शवान् ।
सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी सर्वकर्ता महेश्वरः।।३२।।

भावार्थ : महेश्वर पराहन्ता के समावेश से परिपूर्ण विमर्श वाला, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी साक्षी और सबका रचयिता हो जाता है ।।३२।।

विश्वाधारमहासंवित्प्रकाशपरिपूरितम् ।
पराहन्तामयं प्राहुर्विमर्शं परमात्मनः।।३३।।

भावार्थ : विश्व की आधारभूता जो महासंवित् उसके प्रकाश से परिपूर्ण विमर्श को विद्वान् लोग पराहन्तामय कहते हैं (अथवा जो विश्व की आधारभूत महासंवित् के प्रकाश से परिपूर्ण तथा पराहन्तामय है विद्वान् लोग उसे परमात्मा का विमर्श कहते हैं) ।।३३।।

विमर्श— 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते' इस मुण्डक श्रुति के अनुसार तथा 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' ऋचा के परिप्रेक्ष्य में यह चराचर समस्त प्रपञ्च माहेश्वरीय चित्क्रिया का विस्तार स्वरूप है। यह चित्क्रिया ही विमर्श के नाम से प्रसिद्ध है।

धृतकीट न्यास से यह समस्त विकार परमात्मा का ही अंशभूत है। यही पराविद्या षडध्वा की जनयित्री है।

विमर्शभाण्डविन्यस्तविश्वतत्त्वविजृम्भणः।
अनन्यमुखसम्प्रेक्षी मुक्तः स्वात्मनि तिष्ठति।।३४।।

भावार्थ : विश्व तत्त्व की विजृम्भा अर्थात् विस्तार को विमर्शरूपी भाण्ड अर्थात् पात्र में रख देने वाला, अनन्यमुखसम्प्रेक्षी (अर्थात् दूसरे की अपेक्षा न करने वाला) मुक्त शिवयोगी अपने स्वरूप में स्थित रहता है ॥३४॥

भाजनस्थल - (९७)

समस्तजगदण्डानां सर्गस्थित्यन्तकारणम्।
विमर्शो भासते यत्र तद्भाजनमिहोच्यते।।३५।।

भावार्थ : (भाजनस्थल वर्णन)— समस्त जगदण्डों अर्थात् ब्रह्माण्डों की सृष्टि स्थिति एवं संहार का कारणभूत विमर्श जिसमें भासित होता है इस संसार में उसको भाजन कहते हैं (अर्थात् कला, विद्या, राग, काल, नियति नामक पाँच कञ्चुक से आवृत चैतन्यरूप पुरुष के तीन मल जब समाप्त हो जाते हैं तब वह भाजन कहलाता है) ॥३५॥

विमर्शाख्या पराशक्तिर्विश्ववैचित्र्यकारिणी।
यस्मिन् प्रतिष्ठितं ब्रह्म तदिदं विश्वभाजनम्।।३६।।

भावार्थ : विश्व की विचित्र रचना करने वाली विमर्श नामक शक्ति जिसमें स्थिति है वह ब्रह्म विश्व का भाजन कहा जाता है ॥३६॥

अन्तःकरणरूपेण जगदङ्कुररूपतः।
यस्मिन् विभाति चिच्छक्तिर्ब्रह्मभूतः स उच्यते।।३७।।

भावार्थ : (परमशिव में समवेत) चित्शक्ति जगत् के अङ्कुर के रूप से अन्तःकरण अर्थात् मूल अहङ्कार के रूप में जिसमें भासित होता है वह (परशिव) ब्रह्म भूत कहा जाता है ॥३७॥

यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना विश्ववस्तुप्रकाशिनी।
तथा शक्तिविमर्शात्मा प्रकारे ब्रह्मणि स्थिता।।३८।।

भावार्थ : चन्द्रमा में स्थित रहने वाली किरण जिस प्रकार समस्त वस्तुओं का प्रकाश करती है उसी प्रकार ब्रह्म में स्थित विमर्शरूपा शक्ति प्रकार अर्थात् विशेषण के रूप में स्थित होकर (विश्व का प्रकाशन) करती है ॥३८॥

अकारः शिव आख्यातो हकारः शक्तिरुच्यते।
शिवशक्तिमयं ब्रह्म स्थितमेकमहंपदे।।३९।।

भावार्थ : ('अहं' पद में) अकार शिव का बोधक है, हकार शक्ति कहा जाता है। इस प्रकार 'अहम्' पद में शिवशक्तिमय एक ब्रह्म स्थित है ।।३९।।

विशेष— इससे 'यत् साक्षात् अपरोक्षाद् ब्रह्म' कहने वाले वेदान्ती का मत अपास्त हो जाता है क्योंकि बिना शक्ति के ब्रह्म की अपरोक्षानुभूति नहीं हो सकती।

अहन्तां परमां प्राप्य शिवशक्तिमयीं स्थिराम्।
ब्रह्मभूयंगतो योगी विश्वात्मा प्रतिभासते।।४०।।

भावार्थ : परम अर्थात् पूर्ण अत एव स्थिर शिव-शक्तिमयी अहन्ता को प्राप्त कर योगी ब्रह्म स्वरूप हुआ विश्व के रूप में प्रकाशित होता है ।।४०।।

वृक्षस्थं पत्रापुष्पादि वटबीजस्थितं यथा।
तथा हृदयबीजस्थं विश्वमेतत् परात्मनः।।४१।।

भावार्थ : जिस प्रकार वृक्ष में स्थित पत्र पुष्प (अपनी स्फुट सत्ता के पहले) वटबीज में प्रच्छन्न रूप में स्थित रहता है उसी प्रकार परात्मा अर्थात् भाजनस्थल सम्पन्न शिवयोगी के हृदय बीज में यह विश्व स्थित रहता है ।।४१।।

विशेष— यहाँ हृदय पद से विमर्श शक्ति को समझना चाहिये। इस विमर्श शक्ति में पृथिवी से लेकर पुरुष तक पचीस तत्त्व स्थित रहते हैं। यही नहीं उसके ऊपर रहने वाले माया आदि तथा पञ्चब्रह्म भी इसी में वर्त्तमान है। यह विमर्श शक्ति अकारादि हकारान्त अर्थात् 'अहं' रूप में स्थित है।

अङ्गालेपस्थल - (९८)

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नं चिदानन्दमयं महत्।
यस्य रूपमिदं ख्यातं सोऽङ्गालेप इहोत्यते।।४२।।

भावार्थ : **(अङ्गालेपस्थल वर्णन)**— जिसका देश काल आदि के अवच्छेद से रहित चिदानन्दमय महान् यह रूप कहा गया है वह यहाँ अङ्गालेप कहा जाता है ।।४२।।

समस्तजगदात्मापि संविद्रूपो महामतिः।
लिप्यते नैव संसारैर्यथा धूमादिभिर्नभः।।४३।।

भावार्थ : समस्त जगत्स्वरूप होता हुआ भी संविद्रूप महामतिमान् शिवयोगी सांसारिकता से उसी प्रकार प्रभावित नहीं होता जैसे कि धूम आदि से आकाश ।।४३।।

न विधिर्न निषेधश्च न विकल्पो न वासना।
केवलं चित्स्वरूपस्य गलितप्राकृतात्मनः।।४४।।

भावार्थ : प्रकृति के समस्त गुणों से रहित केवल चित्स्वरूप योगी के लिये न विधि है और न निषेध। न विकल्प है न वासना ।।४४।।

घटादिषु पृथग्भूतं यथाऽऽकाशं न भिद्यते।
तथोपाधिगतं ब्रह्म नानारूपं न भिद्यते।।४५।।

भावार्थ : जिस प्रकार घट आदि में पृथक् हुआ आकाश (घटाकाश मठाकाश आदि मूलरूप में) पृथक् नहीं होता उसी प्रकार (शरीर आदि अनेक) उपाधियों से अवच्छिन्न अत एव नाना रूप ब्रह्म भी भिन्न नहीं है (अर्थात् एक ही है) ।।४५।।

अनश्वरमनिर्देश्यं यथा व्योम प्रकाशते।
तथा ब्रह्मापि चैतन्यमत्र वैशेषिकी कला।।४६।।

भावार्थ : आकाश जिस प्रकार अनश्वर और अनिर्देश्य अर्थात् अतुलनीय होकर प्रकाशित होता है उसी प्रकार ब्रह्म भी है। चैतन्य इस ब्रह्म में विशेष कला है ।।४६।।

न देवत्वं न मानुष्यं न तिर्यक्त्वं न चान्यथा।
सर्वाकारत्वमाख्यातं जीवन्मुक्तस्य योगिनः।।४७।।

भावार्थ : जीवन्मुक्त योगी न देव होता है न मनुष्य, न पक्षी और न अन्य कुछ। वह सर्वाकार कहा गया है ।।४७।।

स्वपराज्ञस्थल - (९९)

अप्रमेये चिदाकारे ब्रह्मण्यद्वैतवैभवे।
विलीनः किं नु जानाति स्वात्मानं परमेव वा।।४८।।

भावार्थ : **(स्वपराज्ञस्थल वर्णन)**— अप्रमेय चित्स्वरूप अद्वितीय ब्रह्म में विलीन शिवयोगी न अपने को जानता है न परमात्मा शिव को ।।४८।।

यत्र नास्ति भिदायोगादहं त्वमिति विभ्रमः।
न संयोगो वियोगश्च न ज्ञेयज्ञातृकल्पना।।४९।।

न बन्धो न च मुक्तिश्च न देवाद्यभिमानिता।
न सुखं नैव दुःखं च नाज्ञानं ज्ञानमेव वा।।५०।।

नोत्कृष्टत्वं न हीनत्वं नोपरिष्टान्न चाप्यधः।
न पश्चान्नैव पुरतो न दूरे किञ्चिदन्तरे।।५१।।

सर्वाकारे चिदानन्दे सत्यरूपिणि शाश्वते।
पराकाशमये तस्मिन् परे ब्रह्मणि निर्मले।।५२।।

एकीभावमुपेतानां योगिनां परमात्मनाम्।
परापरपरिज्ञानपरिहासकथा कुत:।।५३।।

भावार्थ : जहाँ भेद के साथ योग होने से (अर्थात् जीव और ब्रह्म में भेदबुद्धि होने से) 'अहम्' ऐसा भ्रम नहीं है (अथवा योग अर्थात् जीव और ब्रह्म का ऐक्य होने से जहाँ 'अहम्' ऐसा भेद अर्थात् भ्रम नहीं है), न संयोग है न वियोग, न ज्ञेय और ज्ञाता की कल्पना है। न बन्ध, न मोक्ष है और न (अपने विषय में या अन्यत्र) देवत्व आदि का अभिमान है। न सुख है न दु:ख, न अज्ञान है न ज्ञान, न उत्कृष्टत्व और न अपकृष्टत्व है, न ऊपर न नीचे, न पीछे न आगे, न दूर और न निकट की स्थिति है। सर्वरूप चिदानन्द सत्यस्वरूप शाश्वत पर आकाश अर्थात् चिदाकाशमय उस निर्मल ब्रह्म के साथ ऐक्यभाव को प्राप्त महात्मा योगियों के विषय में पर-अपर परिज्ञान रूप परिहास की चर्चा कैसे हो सकती है? ।।४९-५३।।

देशकालानवच्छिन्नतेजोरूपसमाश्रयात् ।
स्वपरज्ञानविरहात् स्वपराज्ञस्थलं विदु:।।५४।।

भावार्थ : देश काल के अवच्छेद से परे तेजस् रूप परब्रह्म के आश्रयण अर्थात् सामरस्य तथा स्वपर ज्ञान के अभाव वाली शिवयोगी की अवस्था को विद्वज्जन स्वपराज्ञस्थल कहते है ।।५४।।

भावाभावलयस्थल - (१००)

त्वन्ताहन्ताविनिर्मुक्ते शून्यकल्पे चिदम्बरे।
एकीभूतस्य सिद्धस्य भावाभावकथा कुत:।।५५।।

भावार्थ : **(भावाभावलयस्थल वर्णन)**— 'त्वम्' और 'अहम्' भाव से रहित शून्यकल्प चिदाकाश में एकीभूत सिद्ध शिवयोगी के लिये भाव और अभाव की कथा कहाँ से हो सकती है (अर्थात् वहाँ न भाव है न अभाव) ।।५५।।

अहंभावस्य शून्यत्वादभावस्य तथात्मन:।
भावाभावविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्त: प्रकाशते।।५६।।

भावार्थ : अहम् भाव तथा आत्मा के अभाव के शून्य होने के कारण भाव और अभाव से विनिर्मुक्त जीवन्मुक्त प्रकाशित होता है ।।५६।।

सुखदुःखादिभावेषु नाभावो भाव एव वा।
विद्यते चित्स्वरूपस्य निर्लेपस्य महात्मनः।।५७।।

भावार्थ : निर्लेप अर्थात् पाप पुण्य आदि द्वन्द्वों से परे महान् आत्मा वाले चित्स्वरूप शिवयोगी के लिये सुख दुःख आदि भावों के विषय में न भाव रहता है न अभाव ।।५७।।

यस्मिन् ज्योतिषि चिद्रूपे दृश्यते नैव किञ्चन।
सद्रूपं वाप्यसद्रूपं भावाभावं विमुञ्चतः।।५८।।

भावार्थ : भाव और अभाव का त्याग करने वाले (अर्थात् इस द्वन्द्व से परे) चित्स्वरूप तेजोमय शिवयोगी को सद्रूप अथवा असद्रूप कुछ भी नहीं दिखलायी पड़ता ।।५८।।

प्रतीयमानौ विद्येते भावभावौ न कुत्रचित्।
लिङ्गैक्ये सति यत्तस्माद्भावाभावलयस्थलम्।।५९।।

भावार्थ : जिस कारण शिवलिङ्ग के साथ एकत्व (अर्थात् सामरस्य) को प्राप्त शिवयोगी के लिये प्रतीयमान भाव-अभाव कहीं नहीं विद्यमान रहते उस कारण (वह दशा) भावाभावलयस्थल कही जाती है ।।५९।।

ज्ञानशून्यस्थल - (१०१)

परापरसमापेक्षभावाभावविवेचनम् ।
ज्ञानं ब्रह्मणि तन्नास्ति ज्ञानशून्यस्थलं विदुः।।६०।।

भावार्थ : **(ज्ञानशून्यस्थल वर्णन)**— पर और अपर के अपेक्षी भाव और अभाव का विवेचन रूप ज्ञान ब्रह्म में (अर्थात् परब्रह्म स्वरूप शिवयोगी में) नहीं रहता। इस कारण यह (विद्वज्जनों के द्वारा) ज्ञानशून्यस्थल कहा गया है ।।६०।।

जले जलमिव न्यस्तं वह्नौ वह्निरिवार्पितम्।
परे ब्रह्मणि लीनात्मा विभागेन न दृश्यते।।६१।।

भावार्थ : जल में मिलाये गये जल, अग्नि में डाली गयी अग्नि के समान परब्रह्म में लीन आत्मा वाला शिवयोगी पृथक् नहीं दिखलायी पड़ता ।।६१।।

सर्वात्मनि परे तत्त्वे भेदशङ्काविवर्जिते।
ज्ञात्रादिव्यवहारोत्थं कुतो ज्ञानं विभाव्यते।।६२।।

भावार्थ : भेद की शङ्का से रहित विश्वरूप परतत्त्व में ज्ञाता ज्ञेय और ज्ञान के व्यवहार से उत्पन्न (त्रिपुटी) ज्ञान का अनुभव कहाँ से होगा? ।।६२।।

निर्विकारं निराकारं नित्यं सीमाविवर्जितम्।
व्योमवत् परमं ब्रह्म निर्विकल्पतया स्थितम्।।६३।।

न पृथ्व्यादीनि भूतानि न ग्रहा नैव तारकाः।
न देवा न मनुष्याश्च न तिर्यञ्चो न चापरे ।।६४।।

तस्मिन् केवलचिन्मात्रसत्तानन्दैकलक्षणे।
त्वन्ताहन्तादिसंरूढं विज्ञानं केन भाव्यते।।६५।।

भावार्थ : विकारों से शून्य, आकाररहित, नित्य, असीम, आकाश के समान सर्वव्यापी परम ब्रह्म निर्विकल्प रूप में वर्त्तमान है। पृथिवी आदि पञ्च महाभूत, चन्द्र सूर्य आदि (नव) ग्रह, (अश्विनी आदि) तारायें, देवता, मनुष्य, पक्षी अथवा अन्य सब ये प्रतीत नहीं होते। केवल सत् चित् आनन्द स्वरूप उस ब्रह्मरूप शिवयोगी में 'त्वम्' और 'अहम्' आदि की भावना से दृढ़ ज्ञान (अर्थात् भेद ज्ञान) किसे अनुभूत हो सकता है अर्थात् किसी को नहीं ।।६३-६५।।

ज्ञेयाभावाद्विशेषेण शून्यकल्पं विभाव्यते।
ज्ञातृज्ञेयादिभिः शून्यं शून्यं ज्ञानादिभिर्गुणैः।।६६।।

आदावन्ते च मध्ये च शून्यं सर्वत्र सर्वदा।
द्वितीयेन पदार्थेन शून्यं शून्यं विभाव्यते।।६७।।

भावार्थ : विशेष रूप से ज्ञेय का अभाव होने के कारण शून्य ज्ञान का अनुभव होता है। यह अनुभव ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय आदि से शून्य तथा ज्ञान इच्छा आदि गुणों से शून्य होता है। यह आदि मध्य और अन्त में सर्वत्र सर्वदा शून्य होता है। यह शून्य (ब्रह्म से अतिरिक्त किसी) द्वितीय पदार्थ से शून्य अनुभूत होता है ।।६६-६७।।

केवलं सच्चिदानन्दप्रकाशाद्वयलक्षणम्।
शून्यकल्पं पराकाशं परब्रह्म प्रकाशते।।६८।।

भावार्थ : केवल, सत् चित् आनन्द प्रकाश और अद्वितीय लक्षण वाला, शून्यसदृश पराकाश परब्रह्म प्रकाशित होता है ।।६८।।

शून्यज्ञानादिसङ्कल्पे शून्यसर्वार्थसाधने।
ज्योतिर्लिङ्गे चिदाकारे स्वप्रकाशे निरुत्तरे।।
एकीभावमुपेतस्य कथं ज्ञानस्य सम्भवः।।६९।।

भावार्थ : जो, ज्ञान आदि सङ्कल्प से शून्य, समस्त पुरुषार्थ साधनों से रहित निरुत्तर (अर्थात् सर्वोपरि), चित्स्वरूप, स्वप्रकाश ज्योतिर्लिंग के साथ एक हो गया उसे ज्ञान कहाँ से होगा? (क्योंकि वह तो स्वयं ज्ञान स्वरूप हो गया) ।।६९।।

यस्य कार्यदशा नास्ति कारणत्वमथापि वा।
शेषत्वं नैव शेषित्वं स मुक्तः पर उच्यते।।७०।।

भावार्थ : जिसकी न तो कार्यावस्था है न कारणावस्था। जो न शेष (अर्थात् अङ्ग) है न शेषी (अर्थात् अङ्गी) वह पर मुक्त (अर्थात् श्रेष्ठ मुक्त) है ।।७०।।

शिवैक्यस्थल

एतावदुक्त्वा परमप्रबोधमद्वैतमानन्दशिवप्रकाशम्।
देव्यै पुरा भाषितमीश्वरेण तूष्णीमभूद् ध्यानपरो गणेन्द्रः।।७१।।

भावार्थ : (उपदेशोसंहार वर्णन)— गणेश्वर रेणुकाचार्य ईश्वर (अर्थात् शिव) के द्वारा पहले देवी पार्वती को गुप्त रूप से उपदिष्ट अद्वैत शिव प्रकाश करने वाले परम प्रबोध अर्थात् उत्तम ज्ञान का इस प्रकार एवं इतना उपदेश देकर ध्यानस्थ होकर मौन हो गये ।।७१।।

एवमुक्त्वा समासीनं शिवयोगपरायणम्।
रेणुकं तं समालोक्य बभाषे प्राञ्जलिर्मुनिः।।७२।।

भावार्थ : ऐसा कहकर (आसन पर) विराजमान शिवयोगी उस रेणुकाचार्य को देखकर अगस्त्य मुनि हाथ जोड़कर बोले ।।७२।।

शिवयोगविशेषज्ञ शिवज्ञानमहोदधे।
समस्तवेदशास्त्रादिव्यवहारधुरन्धर ।।७३।।

आलोकमात्रनिर्धूतसर्वसंसारबन्धन ।
स्वच्छन्दचरितोल्लास स्वप्रकाशात्मवच्छिव।।७४।।

अवतीर्णमिदं शास्त्रमनवद्यं त्वदाननात्।
श्रुत्वा मे मोदते चित्तं ज्योतिः पश्ये शिवाभिधम्।।७५।।

भावार्थ : हे शिवयोग के विशेषज्ञ! हे शिवज्ञान के महासागर! हे समस्त वेदशास्त्र आदि व्यवहार के धुरन्धर! हे आलोकमात्र से अपवारित समस्त संसाररूप बन्धन वाले! हे स्वच्छन्दचरित से उल्लासयुक्त! हे स्वप्रकाशयुक्त शिव! आपके मुख से निःसृत इस निर्मल शास्त्र को सुनकर मेरा चित्त आनन्द से भर गया। मैं शिव नामक ज्योति का साक्षात्कार कर रहा हूँ ।।७३-७५।।

अद्य मे सफलं जन्म गतो मे चित्तविभ्रमः।
सञ्जाता पाशविच्छित्तिस्तपांसि फलितानि च।।७६।।

भावार्थ : आज मेरा जन्म सफल हो गया। मेरे मन का सन्देह दूर हो गया। पाश कट गये और मेरी तपस्यायें फलीभूत हो गयीं ।।७६।।

इदानीमेव मे जातं मुनिराजोत्तमोत्तमम्।
इतः परं मया नास्ति सदृशो भुरनत्रये।।७७।।

भावार्थ : इसी समय मुनिश्रेष्ठता आ गयी। इसके बाद तीनों भुवनों में मेरे सदृश कोई नहीं है ।।७७।।

शास्त्रं तव मुखोद्गीर्णं शिवाद्वैतपरम्परम्।
मां विना कस्य लोकेषु श्रोतुमस्ति तपः शुभम्।।७८।।

तपसां परिपाकेन शङ्करस्य प्रसादतः।
आगतस्त्वं महाभाग मां कुतार्थयितुं गिरा ।।७९।।

भावार्थ : आपके मुख से निकले हुए शिवाद्वयपरम्परा वाले शुभ शास्त्र को सुनने के लिये मेरे अतिरिक्त और किसकी तपस्या हो सकती है। हे महाभाग! मेरी तपस्या के परिपाक से शङ्कर की कृपा के कारण आप अपनी वाणी से मुझे कृतकृत्य करने के लिये आये हैं ।।७८-७९।।

इति स्तुवन्तं विनयादगस्त्यं मुनिपुङ्गवम्।
आलोक्य करुणादृष्ट्या बभाषे स गणेश्वरः।।८०।।

भावार्थ : इस प्रकार विनयपूर्वक स्तुति करते हुए मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य को कृपामयी दृष्टि से देखकर गणेश्वर रेणुकाचार्य ने कहा ।।८०।।

अगस्त्य मुनिशार्दूल तपःसिद्धमनोरथ।
त्वां विना शिवशास्त्रस्य कः श्रोतुमधिकारवान्।।८१।।

भावार्थ : हे तपस्या के द्वारा सिद्धमनोरथ वाले मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य! आपके बिना शिवशास्त्र को सुनने का अधिकारी दूसरा कौन हो सकता है ।।८१।।

पात्रं शिवप्रसादस्य भवानेको न चापरः।
इति निश्चित्य कथितं मया ते तन्त्रमीदृशम्।।८२।।

भावार्थ : 'शिव की कृपा के पात्र एक आप ही हैं दूसरा कोई नहीं'— ऐसा निश्चय कर मैंने इस प्रकार के तन्त्र का आपको उपदेश दिया ।।८२।।

स्थाप्यतां सर्वलोकेषु तन्त्रमेतत् त्वया मुने।
ईदृशं शिवबोधस्य साधनं नास्ति कुत्रचित्।।८३।।

भावार्थ : हे मुने! आप इस तन्त्र का सब लोगों में (अथवा समस्त लोकों में) प्रचार प्रसार और स्थापन कीजिये। शिवज्ञान का ऐसा साधन कहीं नहीं है ॥८३॥

रहस्यमेतत् सर्वज्ञः सर्वानुग्राहकः शिवः।
अवादीत् सर्वलोकानां सिद्धये पार्वतीपतिः॥८४॥

भावार्थ : सर्वज्ञ सर्वानुग्रहकर्त्ता पार्वतीपति शिव ने सब लोगों की सिद्धि के लिये इस रहस्य (तन्त्रोपनिषत्) को बतलाया ॥८४॥

तदिदं शिवसिद्धांन्तसाराणामुत्तमोत्तमम्।
वेदवेदान्तसर्वस्वं विद्याचारप्रवर्तकम्॥८५॥

वीरमाहेश्वरग्राह्यं शिवाद्वैतप्रकाशकम्।
परीक्षितेभ्यो दातव्यं शिष्येभ्यो नान्यथा क्वचित्॥८६॥

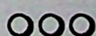
भावार्थ : अट्ठाईस शैवागमों के तत्त्वों में उत्तम, वेद एवं वेदान्त का सर्वस्व, विद्याचार का प्रवर्त्तक, वीर माहेश्वरों के द्वारा स्वीकार्य, शिवाद्वैत का प्रकाशक यह शास्त्र परीक्षित शिष्यों को ही देना चाहिये। अन्य प्रकार के लोगों को कभी नहीं ॥८५-८६॥

एतच्छ्रवणमात्रेण सर्वेषां पापसंक्षयः।
अवतीर्णं मया भूमौ शास्त्रस्यास्य प्रवृत्तये॥
प्रवर्तय शिवाद्वैतं त्वमपि ज्ञानमीदृशम्॥८७॥

भावार्थ : केवल इसके सुनने से सब लोगों के पाप का क्षय हो जाता है। इस शास्त्र के प्रवर्त्तन के लिये मैंने इस पृथिवी पर अवतार लिया। आप भी इस प्रकार के शिवाद्वैत ज्ञान का प्रचार कीजिये ॥८७॥

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ लिङ्गस्थलान्तर्गत ऐक्यस्थले स्वीकृतप्रसादिस्थलादि-नवविधस्थलप्रसङ्गो नाम विंशतितमः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के शिवैक्यस्थल-विषयनवविधलिङ्गप्रसङ्ग नामक विंश परिच्छेद की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥२०॥



एकविंश: परिच्छेद

विभीषणाभीष्टदान

इत्युक्त्वा पश्यतस्तस्य पुरस्तादेव रेणुक:।
अन्तर्दधे महादेवं चिन्तयन्नन्तरात्मना।।१।।

भावार्थ : (विभीषण को अभीष्टदान)— ऐसा कहकर रेणुकगणेश्वर अपनी अन्तरात्मा में महादेव का ध्यान करते हुए उन अगस्त्य के सामने ही अन्तर्हित हो गये ॥१॥

य इदं शिवसिद्धान्तं वीरशैवमतं परम्।
शृणोति शुद्धमनसा स याति परमां गतिम्।।२।।

भावार्थ : जो इस वीरशैवधर्मसम्मत शिवसिद्धान्त को शुद्ध मन से सुनता है वह परमगति को प्राप्त होता है ॥२॥

स्वच्छन्दाचाररसिक: स्वेच्छानिर्मितविग्रह:।
आससाद पुरीं लङ्कां रेणुको गणनायक:।।३।।

भावार्थ : स्वच्छन्द आचरण में आनन्द का अनुभव करने वाले तथा अपनी इच्छानुसार शरीर धारण करने वाले गणेश्वर रेणुक (अन्तर्निहित होने के बाद) लङ्का पहुँच गये ॥३॥

समागतं महाभागं सर्वागमविशारदम्।
विभीषण: समालोक्य गेहं प्रवेशयन्निजम्।।४।।

भावार्थ : कामिक से लेकर वातुल पर्यन्त समस्त दिव्य आगमों में विशारद उन महाभाग रेणुकाचार्य को आया हुआ देखकर विभीषण ने उनको अपने घर में प्रविष्ट कराया ॥४॥

भद्रासने निजे रम्ये निवेश्य गणनायकम्।
अर्घ्यपाद्यादिभि: सर्वैरुपचारैरपूजयत्।।५।।

भावार्थ : अपने रमणीय सिंहासन पर गणेश्वर को बैठाकर (विभीषण से)

अर्घ्यपाद्य आदि समस्त उपचारों से उनकी पूजा की ॥५॥

पूजितेन प्रसन्नेन रेणुकेन निरूपितः।
निषसाद तदभ्याशे स निजासनमाश्रितः॥६॥

भावार्थ : पूजित अत एव प्रसन्न रेणुकाचार्य के द्वारा आदेश को प्राप्त कर वे विभीषण उनके पास अपने आसन पर बैठ गये ॥६॥

आबभाषे गणेन्द्रं तं कृताञ्जलिर्विभीषणः।
मानुषाकारसम्पन्नं साक्षाच्छिवमिवापरम्॥७॥

भावार्थ : इसके बाद बनुष्य का आकार धारण किये हुए साक्षात् दूसरे शिव के समान उन गणेश्वर से विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा ॥७॥

रेणुक त्वं गणाधीश शिवज्ञानपरायण।
अवतीर्णं महीमेनामिति सम्यक् श्रुतं मया॥८॥

भावार्थ : हे शिवज्ञानपरायण गणेश्वर रेणुक! आप इस धराधाम पर अवतार लिये हैं ऐसा मैंने भलीभाँति सुना है ॥८॥

मद्भाग्यगौरवादद्य समायास्त्वं पुरीमिमाम्।
कथं भाग्यविहीनानां सुलभाः स्युर्भवादृशाः॥९॥

भावार्थ : मेरे महाभाग्य से आज आप इस नगरी (लङ्का) में आये हैं। भाग्यहीन लोगों को आप जैसे लोग कैसे सुलभ हो सकते हैं ॥९॥

मत्समो नास्ति लोकेषु भाग्यातिशयवत्तया।
यस्य गेहं स्वयं प्राप्तो भवान् साक्षान्महेश्वरः॥१०॥

भावार्थ : इस संसार में मेरे समान अतिशय भाग्यशाली कोई नहीं है। जिसके घर साक्षात् महेश्वरस्वरूप आप स्वयं पधारे हैं ॥१०॥

कृतार्था मे पुरी ह्येषा कृतार्थो राक्षसान्वयः।
जीवितं च कृतार्थं मे यस्य त्वं दृष्टिगोचरः॥११॥

भावार्थ : जिसके सामने आप दिखलायी पड़ रहे हैं वह मेरी लङ्कापुरी और यह राक्षसकुल तथा मेरा जीवन (आज) कृतकृत्य हो गया ॥११॥

इति ब्रुवाणं कल्याणं राक्षसेन्द्रं गणेश्वरः।
बभाषे सस्मितो वाणीं विश्वोल्लासकरीं शुभाम्॥१२॥

भावार्थ : ऐसा कहने वाले कल्याणयुक्त (अथवा ऐसा कल्याणयुक्त वचन कहने वाले) राक्षसेन्द्र से गणेश्वर मन्दहास के साथ विश्वोल्लासकारिणी शुभ वाणी बोले ॥१२॥

विभीषण महाभाग जाने त्वां धर्मकोविदम्।
त्वां विना कस्य लोकेषु जायते भक्तिरीदृशी।।१३।।

भावार्थ : हे महाभाग विभीषण! आपको मैं धर्मज्ञाता के रूप में जानता हूँ। इस लोक में आपके अतिरिक्त और किसमें इस प्रकार की भक्ति हो सकती है ॥१३॥

समस्तशास्त्रसारज्ञं सर्वधर्मपरायणम्।
अध्यात्मविद्यानिरतमाहुस्त्वां राक्षसेश्वर।।१४।।

भावार्थ : हे राक्षसेश्वर! (विद्वान् लोग) आपको समस्त शास्त्रों का तत्त्ववेत्ता, सर्वधर्मपरायण तथा अध्यात्म विद्या में निरत कहते हैं ॥१४॥

त्वदीयधर्मसम्पत्तिं श्रुत्वाहं विस्मिताशयः।
व्रजन् कैलासमचलं त्वदन्तिकमुपागतः।।१५।।

भावार्थ : आपकी धर्माचरणप्रवृत्ति को सुनकर विस्मितचित मैं कैलास पर्वत को जाता हुआ आपके पास आ गया ॥१५॥

प्रीतोऽस्मि तव चारित्रैः शोभनैर्लोकविश्रुतैः।
दास्यामि ते वरं साक्षात् प्रार्थयस्व यथेप्सितम्।।१६।।

भावार्थ : मैं आपके लोकविश्रुत सुन्दर चरित्रों से प्रसन्न हूँ। मैं आपको साक्षात् वर दूँगा। यथेप्सित वर माँगो ॥१६॥

इति प्रसादसुमुखे भाषमाणे गणेश्वरे।
प्रणम्य परया प्रीत्या व्याजहार विभीषणः।।१७।।

भावार्थ : प्रसन्नता से युक्त गणेश्वर के ऐसा कहने पर विभीषण परम प्रसन्नता के साथ प्रणाम कर बोले ॥१७॥

आगमानुग्रहादेव भवतः शिवयोगिनः।
दुर्लभाः सर्वलोकानां समपद्यान्त सम्पदः।।१८।।

भावार्थ : आप जैसे शिवयोगी के आगमनरूपी कृपा से ही सब लोगों को दुर्लभ सम्पत्तियाँ मिलती हैं ॥१८॥

तथापि प्रार्थनीयं मे किञ्चिदस्ति गणेश्वर।
सुकृते परिपक्वे हि स्वयं सिद्ध्यति वाञ्छितम्।।१९।।

भावार्थ : तो भी हे गणेश्वर! मेरी कुछ प्रार्थना है। पुण्य के परिपक्व होने पर अभीष्ट की सिद्धि स्वयं हो जाती है ॥१९॥

रावणो हि मम भ्राता माहेश्वरशिखामणिः।
अदृष्टशत्रुसम्बाधं शशास हि जगत्त्रयम्।।२०।।

भावार्थ : मेरे भाई रावण, जो शिवभक्तों में शिखामणि (के समान श्रेष्ठ) थे तथा जिनके पास शत्रु रूपी बाधा नहीं थी, ने तीनों लोकों पर शासन किया ॥२०॥

यस्य प्रतापमतुलं सोढुमक्षमशक्तयः।
इन्द्रादयः सुराः सर्वे राज्यलक्ष्म्या वियोजिताः।।२१।।

भावार्थ : जिसके अतुल प्रताप को सहने में असमर्थ इन्द्र आदि समस्त देवगण (जिसके द्वारा) राज्यलक्ष्मी से रहित कर दिये गये ॥२१॥

स तु कालवशेनैव स्वचरित्रविपर्ययात्।
रणे विष्ण्वतारेण रामेण निहतोऽभवत्।।२२।।

भावार्थ : वे पराक्रमी रावण काल के प्रभाववश अपने विपरीत चरित्र के कारण विष्णु के अवतारभूत राम के द्वारा युद्ध में मारे गये ॥२२॥

स तु रामशराविद्धः कण्ठस्खलितजीवितः।
अवशिष्टं समालोक्य मामवादीत् सुदुःखितः।।२३।।

भावार्थ : राम के बाँणों से पूर्णतया विद्ध अत एव कण्ठगतप्राण वाले वे रावण अवशिष्ट (अर्थात् रावणवंश में एक मात्र बचे हुए) मुझको देखकर दुःखी होकर बोले ॥२३॥

विभीषण विशेषज्ञ महाबुद्धे सुधार्मिक।
अवशिष्टोऽसि वंशस्य रक्षसां भाग्यगौरवात् ।।२४।।

भावार्थ : हे धर्माचरणशील महाबुद्धिमान् विशेषज्ञ! अर्थात् विशिष्ट ज्ञान वाले विभीषण! राक्षसों के महाभाग्य से एकमात्र आप राक्षसों के वंश में अवशिष्ट हैं ॥२४॥

वयमज्ञानसम्पन्ना महत्सु द्रोहकारिणः।
ईदृशीं तु गतिं प्राप्ता दुस्तरा हि विधिस्थितिः।।२५।।

भावार्थ : अज्ञानी, महान् लोगों के विरोध करने वाले हम इस प्रकार की गति को प्राप्त हुए। भाग्य की स्थिति अनुल्लङ्घनीय होती है ॥२५॥

नवकं लिङ्गकोटीनां प्रतिष्ठाप्यमिह स्थले।
इति सङ्कल्पितं पूर्वं मया तदवशिष्यते।।२६।।

भावार्थ : मैंने पहले यह संकल्प किया था कि इस लङ्का नगरी में नव करोड़ शिवलिङ्ग की स्थापना करूँगा। उनमें से कुछ शेष है ॥२६॥

कोटिषट्कं तु लिङ्गानां मया साधु प्रतिष्ठितम्।
कोटित्रयं तु लिङ्गानां स्थापनीयमतस्त्वया।।२७।।

भावार्थ : छह करोड़ लिङ्गों की मैंने भलीभाँति प्रतिष्ठा की। इसके बाद तीन करोड लिङ्गों की स्थाना तुम्हें करनी है ॥२७॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा दीनबुद्धेर्मरिष्यतः।
तथा साधु करोमीति प्रतिज्ञातं मया तथा।।२८।।

भावार्थ : दीनबुद्धि तथा मरणासन्न उस रावण की बात सुनकर 'मैं वैसा ही भलीभाँति करूँगा' ऐसा मैंने प्रतिज्ञा की ॥२८॥

युगपच्छिवलिङ्गानां कोटित्रयमनुत्तमम्।
प्रतिष्ठाप्यं यथाशास्त्रमिति मे निश्चयोऽभवत्।।२९।।

भावार्थ : फिर मैंने निश्चय किया कि तीन करोड़ उत्तमोत्तम शिवलिङ्गों की मैं एक साथ शास्त्रविधि से स्थापना करूँगा ॥२९॥

लिङ्गकोटित्रयस्येह युगपत् स्थापनाविधौ।
अविदन्नेकमाचार्यमहमेवमवस्थितः ।।३०।।

भावार्थ : तीन करोड़ शिवलिङ्गों की स्थापना करने में समर्थ एक आचार्य को न जानने के कारण मैं यहाँ (=लङ्का में) इसी प्रकार (अर्थात् बिना लिङ्गस्थापना के) पड़ा हुआ हूँ ॥३०॥

शिवशास्त्रविशेषज्ञ शिवज्ञाननिधिर्भवान्।
आचार्यभावमासाद्य मम पूरय वाञ्छितम्।।३१।।

भावार्थ : आप शैवशास्त्र के विशेषज्ञ तथा शिवज्ञान की निधि है। आचार्य पद को स्वीकार कर मेरी इच्छा को पूर्ण कीजिये ॥३१॥

तस्येति वचनं श्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य धीमतः।
तथेति प्रतिशुश्राव सर्वज्ञो गणनायकः।।३२।।

भावार्थ : बुद्धिमान् राक्षसेन्द्र विभीषण की इस चनावली को सुनकर सर्वज्ञ गणेश्वर ने 'वैसा ही होगा'— ऐसी प्रतिज्ञा की ।।३२।।

ततः सन्तुष्टचित्तस्य पौलस्त्यस्येष्टसिद्धये।
कोटित्रयं तु लिङ्गानां यथाशास्त्रं यथाविधि।।
त्रिकोट्याचार्यरूपेण स्थापितं तेन तत्क्षणे।।३३।।

भावार्थ : सन्तुष्टचित्त विभीषण की इष्टसिद्धि के लिये त्रिकोटि आचार्य के रूप में रेणुक ने तीन करोड़ शिवलिङ्गों की शास्त्र एवं विधिविधान के अनुसार तत्काल स्थापना कर दी ।।३३।।

तादृशं तस्य माहात्म्यं समालोक्य विभीषणः।
प्रणनाम मुहुर्भक्त्या पादयोस्तस्य विस्मितः।।३४।।

भावार्थ : विभीषण उस रेणुकाचार्य की उस प्रकार की महिमा को देखकर आश्चर्यचकित हो गये और बार-बार भक्तिपूर्वक उनके चरणों में प्रणाम करने लगे ।।३४।।

प्रणतं विनयोपेतं प्रहृष्टं राक्षसेश्वरम्।
अनुगृह्य स्वमाहात्म्याद् रेणुकोऽन्तर्हितोऽभवत्।।३५।।

भावार्थ : विनय से युक्त प्रसन्न तथा नमस्कार किये हुए राक्षसेश्वर के ऊपर अनुग्रह कर रेणुकाचार्य अपनी महिमा से अन्तर्हित हो गये ।।३५।।

विभीषणोऽपि हृष्टात्मा रेणुकस्य प्रसादतः।
शिवभक्तिरसासक्तः स्थिरराज्यमपालयत्।।३६।।

भावार्थ : रेणुकाचार्य की कृपा से विभीषण भी प्रसन्नचित्त तथा शिवभक्तिरस से आप्लावित होकर स्थिर राज्य की रक्षा में लग गये ।।३६।।

रेणुकोऽपि महातेजाः सञ्चरन् क्षितिमण्डले।
प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च परमाद्वैतभावितः।।३७।।

कांश्चिद् दृष्टिनिपातेन करुणारसवर्षिणा।
अपरानुपदेशेन शिवाद्वैताभिमर्शिना।।३८।।

अन्यांश्च सहवासेन समस्तमलहारिणा।
कृतार्थयन् जनान् सर्वान् कृतिनः पक्वकर्मिणः।।३९।।

दर्शयित्वा निजाधिक्यं शिवदर्शनलालसः।
खण्डयित्वा दुराचारान् पाषण्डान् भिन्नदर्शनान्।।४०।।

यन्त्रमन्त्रकलासिद्धान् विमतान् सिद्धमण्डलान्।
विजित्य स्वप्रभावेण स्थापयित्वा शिवागमान्।।
आजगाम निजावासं कोल्लिपाक्यभिधं पुरम्।।४१।।

भावार्थ : महातेजस्वी रेणुकाचार्य भी पृथ्वीमण्डल पर सञ्चरण करते हुए कभी प्रकट कभी तिरोहित, परमअद्वैत भाव से भावित हो कुछ को करुणापूर्ण दृष्टि से अनुगृहीत करते, कुछ को शिवाद्वैतविषयक उपदेश देते, अन्य लोगों को समस्त मलहारी सहवास से कृतकृत्य करते हुए, पक्वकर्ममलाशय वाले सुकृती जनों को अपना आधिक्य दिखाकर कृतार्थ करते हुए, भिन्न दर्शन वाले पाखण्डी दुराचारियों का खण्डन कर, यन्त्र मन्त्र कला में सिद्ध विरोधी सिद्ध मण्डलों को अपने प्रभाव से जीत कर शैवागम की स्थापना कर शिव दर्शन की इच्छा से अपने आवास कोल्लिपाक नामक नगर में आ गये ।।३७-४१।।

तत्र सम्भावितः सर्वैर्जनैः शिवपरायणैः।
सोमनाथाभिधानस्य शिवस्य प्राप मन्दिरम्।।४२।।

भावार्थ : वहाँ शिवपरायण समस्त भक्तों के द्वारा सम्मानित होकर रेणुकाचार्य सोमनाथ नामक शिव मन्दिर को गये ।।४२।।

पश्यतां तत्र सर्वेषां भक्तानां शिवयोगिनाम्।
तन्वानो विस्मयं भावैस्तुष्टाव परमेश्वरम्।।४३।।

भावार्थ : वहाँ पर द्रष्ट बने समस्त शिवयोगी भक्तों के आश्चर्य की वृद्धि करते हुए उन्होंने भावों से परमेश्वर की स्तुति की (अथवा अपने भक्तिभावों से भक्तों के विस्मय को बढ़ाते हुए स्वयं शिव की स्तुति की) ।।४३।।

देव देव जगन्नाथ जगत्कारणकारण।
ब्रह्मविष्णुसुराधीशवन्द्यमानपदाम्बुज ।।४४।।

भावार्थ : **(रेणुकाचार्यद्वारा की गयी स्तुति)**— हे देवदेव! जगन्नाथ, संसार के कारणभूत माया या प्रकृति आदि के कारण, ब्रह्मा विष्णु सुराधीश अर्थात् इन्द्र के द्वारा आपके चरण कमलों की वन्दना की जाती है ।।४४।।

संसारनाटकभ्रान्तिकलानिर्वहणप्रद ।
समस्तवेदवेदान्तपरिबोधितवैभव ।।४५।।

भावार्थ : आप संसारनाटकरूपी भ्रम की कला का निर्वहण करने वाले तथा समस्त वेद वेदान्त के द्वारा पूर्णतया बोधितवैभव वाले हैं ।।४५।।

संसारवैद्य सर्वज्ञ सर्वशक्तिनिरङ्कुश।
सच्चिदानन्द सर्वस्व परमाकाशविग्रह।।४६।।

भावार्थ : आप संसाररूपी रोग के वैद्य, सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, निरङ्कुश, सत् चित् आनन्दस्वरूप, सर्वस्व तथा पराकाशरूपी शरीर वाले हैं ।।४६।।

समस्तजगदाधारज्योतिर्लिङ्गविजृम्भण ।
सदाशिवमुखानेकदिव्यमूर्तिकलाधर ।।४७।।

भावार्थ : सम्पूर्ण संसार के आधार तथा ज्योतिर्लिंग के प्रकाशक (अथवा समस्त जगत् के आधारभूत ज्योतिर्लिंग के प्रकाशक तथा सदाशिव प्रमुख अनेक दिव्य मूर्त्तियों के कलाकार हैं) ।।४७।।

गुणत्रयपदातीत मलत्रयविनाशन।
जगत्त्रयविलासात्मन् श्रुतित्रयविलोचन।।४८।।

भावार्थ : सत्त्व आदि तीनों गुणों के स्तर के ऊपर स्थित, आणव आदि तीन मलों के विनाशक, त्रैलोक्य के रूप में चलने वाले (सृष्टि आदि) पञ्चकृत्य क्रीड़ा का आनन्द लेने वाले तथा ऋग्यजुःसाम नामक तीनों वेदरूपी त्रिनेत्र वाले हैं ।।४८।।

पाहि मां परमेशान पाहि मां पार्वतीपते।
त्वदाज्ञया मयैतावत्कालमात्रं महीतले।।
अचारि भवदुक्तानामागमानां प्रसिद्धये।।४९।।

भावार्थ : हे परमेश्वर! मेरी रक्षा कीजिये। हे पार्वतीपते! मेरा त्राण कीजिये। आपकी आज्ञा से मैंने इतने समय तक पृथ्वीतल पर आपके द्वारा कहे गये आगमों की प्रसिद्धि (अर्थात् प्रचार प्रसार) के लिये विचरण किया ।।४९।।

अतः परं स्वरूपं ते प्राप्तुकामोऽस्मि शङ्कर।
अन्तरं देहि मे किञ्चिदनुकम्पाविशेषतः।।५०।।

भावार्थ : हे शङ्कर! इसके बाद मैं आपके स्वरूप को प्राप्त करना चाहता हूँ। विशेष कृपा कर मुझे थोड़ा सा अवकाश दीजिये ।।५०।।

इत्युक्ते गणनायकेन सहसा लिङ्गात् ततः शाङ्करात्
वत्सागच्छ महानुभाव भवतो भक्त्या प्रसन्नोऽस्म्यहम्।
इत्युच्चैरगदाद् वचस्तनुभृतामाश्चर्यमासीत्तदा
दिव्यो दुन्दुभिराननाद गगने पुष्पं ववर्षुर्गणाः।।५१।।

भावार्थ : गणेश्वर के ऐसा कहने पर अकस्मात् शिवलिङ्ग से ऊँचे स्वर से वाणी निकली— 'हे वत्स! आओ। हे महानुभाव! मैं तुम्हारी (नवधा) भक्ति से प्रसन्न हूँ।' उस समय सब मनुष्य को आश्चर्य हो गया। आकाश में देवदुन्दुभि बजने लगी और देवगणों ने पुष्प वृष्टि की ।।५१।।

श्रुत्वा लिङ्गाद् वचनमुदितं शाङ्करं सानुकम्पं
संहृष्टात्मा गणपतिरथो ज्योतिषा दीप्यमानः।
जातोत्कण्ठैः परमनुचरैर्योगिभिः स्तूयमानो
ज्योतिर्लिङ्गं परमनुविशत् स्वप्रकाशं तदानीम्।।५२।।

भावार्थ : लिङ्ग से निकले हुए अनुकम्पायुक्त शाङ्कर वचन को सुनकर गणेश्वर का मन प्रसन्न हो गया। ज्योति से वे दीव्यमान हो उठे। परमउत्कण्ठायुक्त अनुचरभूत योगियों के द्वारा स्तूयमान वे उस समय परम स्वप्रकाश ज्योतिर्लिंग में प्रवेश कर गये ।।५२।।

लीने तस्मिन् शाङ्करे स्वप्रकाशे
दिव्याकारे रेणुके सिद्धनाथे।
सर्वो लोको विस्मिताभूत्तदानीं
शैवी भक्तिः सप्रमाणा बभूव।।५३।।

भावार्थ : दिव्य आकार वाले सिद्धनाथ रेणुकाचार्य के उस स्वप्रकाश शाङ्कर लिङ्ग में लीन हो जाने पर उस समय सब लोग आश्चर्यचकित हो गये तथा शैवी भक्ति प्रमाणित हो गयी ।।५३।।

श्रीवेदागमवीरशैवसरणिं श्रीषट्स्थलोद्यन्मणिं
श्रीजीवेश्वरयोगपद्मतरणिं श्रीगोप्यचिन्तामणिम्।
श्रीसिद्धान्तशिखामणिं लिखयिता यस्तं लिखित्वा परान्
श्रुत्वा श्रावयिता स याति विमलां भुक्तिं च मुक्तिं पराम्।।५४।।

भावार्थ : (फलश्रुति वर्णन)— श्रीवेदागम वीरशैव के सिद्धान्त का अनुसरण करने वाली, मङ्गलकारी छह स्थलों की उगती (अर्थात् चमकती) हुई मणि, जीव और

ईश्वर के योगरूपी कमल की सूर्य, गोप्यचिन्तामणि रूप श्रीसिद्धान्तशिखामणि को लिखने वाला जो मनुष्य इनको लिखेगा या लिखवायेगा या लिखकर सुनायेगा या स्वयं सुनेगा वह निर्मल भोग एवं पर मोक्ष को प्राप्त करेगा ॥५४॥

ॐ तत्सत् इति श्रीशिवगीतेषु सिद्धान्तागमेषु शिवाद्वैतविद्यायां
शिवयोगशास्त्रे श्रीरेणुकागस्त्यसंवादे वीरशैवधर्मनिर्णये
श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचिते श्रीसिद्धान्तशिखामणौ
विभीषणाभीष्टवरप्रदानप्रसङ्गो नाम
एकविंशतितमः परिच्छेदः।

इस प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि के रेणुकविभीषणसम्वाद
तथा रेणुकशिवलिङ्गैक्यप्रसङ्ग नामक एकविंश परिच्छेद
की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती'
हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।२१।।

।। श्रीसिद्धान्तशिखामणी ग्रंथ समाप्त ।।

OOO







श्रीसिद्धान्तशिखामणि सनातन वीरशैव धर्म का धर्मग्रन्थ है। इसका कन्नड अनुवाद श्री काशी जगद्गुरु महास्वामी जी ने किया। इसके राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं में विविध विद्वानों ने अनुवाद किया है जैसे-डॉ. के. प्रताप (तेगुलु), श्रीमती अंबिका अप्पू कुट्टन् (मलयालम्), डॉ. टी. गणेशन् (तमिल), डॉ. एस. डी. पसारकर (मराठी पद्यानुवाद), डॉ. चंद्रशेखर कपाळे (मराठी गद्य), डॉ. राधेश्याम चतुर्वेदी (हिन्दी), डॉ. एम. शिवकुमार स्वामी (अंग्रेजी और संस्कृत व्याख्या), पं. राजशेखरय्या (संस्कृत व्याख्या), डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी (अवधि दोहा-चौपाई), डॉ. प्रमोदिनी पंडा (उडिया), श्रीमती करुणा त्रिवेदी (गुजराती), डॉ. प्रवीण कुमार द्विवेदी (भोजपुरी), सुश्री युलिया-गौरी (रशियन), डॉ. हरि प्रसाद अधिकारी (नेपाली) आदि भाषाओं में प्रकाशित हुए हैं और कुछ प्रकाशनाधीन हैं। श्रीसिद्धान्तशिखामणि इंटरनेट पर सभी को पढने के लिए भी उपलब्ध किया गया है। काशी जगद्गुरुजी की यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

शैव भारती शोध प्रतिष्ठान

डी.३५/७७, जंगमवाडीमठ, वाराणसी - २२१००१

ISBN : 978-93-82639-11-4 Rs. 450